पूर्ण योग

(योग पञ्चदशी)

स्वामी शान्तिधर्मानन्द सरस्वती

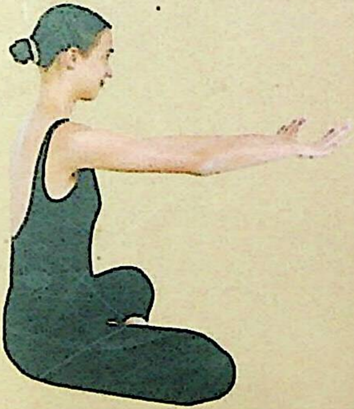

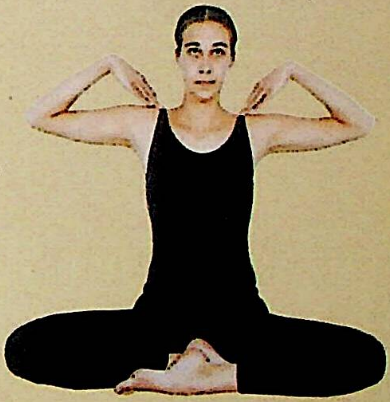

पूर्ण योग

[योग पञ्चदशी]

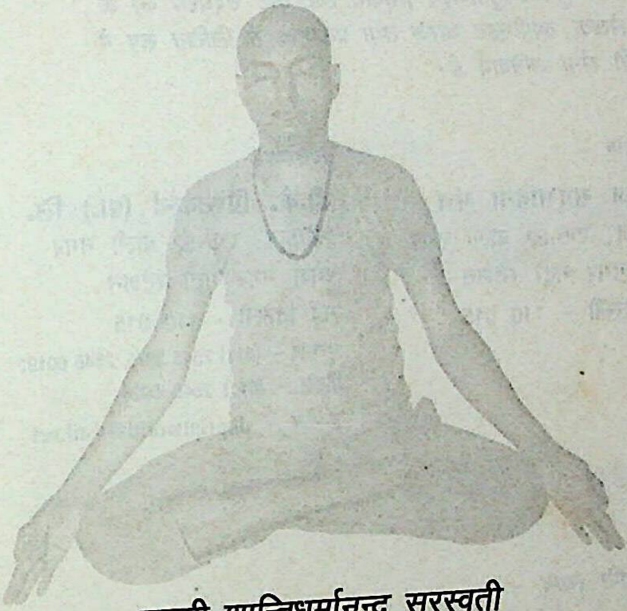

स्वामी शान्तिधर्मानन्द सरस्वती

श्रीकुंज सद्भावना मंच

नई दिल्ली

प्रथम संस्करण, 2000
द्वितीय संस्करण, 2005
© मोतीलाल भीमराज चैरीटेबल ट्रस्ट, नई दिल्ली
ISBN 81-8265-009-7
मूल्य – 125.00 रूपये

इस पुस्तक का, या इसके किसी भी भाग का अनुवाद, या किसी भी रूप में पुनः प्रस्तुतीकरण (सिवाय छोटे-छोटे उद्धरण के) के लिए लेखक, कापीराइट धारक तथा प्रकाशक से लिखित रूप में अनुमति लेना अनिवार्य है।

प्रकाशक –

श्रीकुंज सद्भावना मंच
'श्रीकुंज', एफ-52 बाली नगर
रमेश नगर मेट्रो स्टेशन
नई दिल्ली – 110 015

वितरक –

डी॰के॰ प्रिण्टवर्ल्ड (प्रा॰) लि॰
'श्रीकुंज', एफ-52 बाली नगर
रमेश नगर मेट्रो स्टेशन
नई दिल्ली - 110 015
दूरभाष – (011) 2545 3975, 2546 6019;
फैक्स – (011) 2546 5926
ई-मेल – dkprintworld@vsnl.net

अन्य प्राप्ति स्थान –

1. सत्य दर्शन आश्रम
   294, शीशम झाडी,
   ऋषिकेश – 249201 (उत्तरांचल)
   दूरभाष – (0135) 243 6291

2. भरत झुनझुनवाला
   A-732, मार्डन सोसायटी,
   सेक्टर-15, रोहिणी, नई दिल्ली – 110 085
   दूरभाष – (011) 2722 8589, 2789 3673

मुद्रण प्रबन्ध – डी.के. प्रिण्टवर्ल्ड (प्रा.) लि., नई दिल्ली

हमारे परम गुरु

परमहंस स्वामी शिवानन्द सरस्वतीजी महाराज

दिव्यजीवन संघ, ऋषिकेश, (उ॰प्र॰)

एवं

पूज्य गुरुदेव

परमहंस स्वामी सत्यानन्द सरस्वतीजी महाराज

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, (बिहार)

के श्रीचरणों में सादर समर्पित।

[illegible]

[illegible]

प्रकाशक –

[illegible]

नई दिल्ली – 110 016

[illegible]

आभार

मैं इस ग्रन्थ के प्रकाशन एवं लेखन कार्य में प्रोत्साहन और सहयोग प्रदान करने के लिये आत्मीय श्री स्वामी रामराज्यम् सरस्वती, स्वामी अनिमेषानन्द सरस्वती, स्वामी आत्मतत्त्वानन्द सरस्वती, स्वामी सर्वेशानन्द सरस्वती आदि गुरुभाइयों को सह्रदय धन्यवाद देता हूँ।

विशेषतः प्रूफ रीडिंग में सहयोग के लिये स्वामी सर्वेशानन्द सरस्वती तथा स्वामी अनिमेषानन्द सरस्वतीजी को; छायाचित्र प्रदान करनेवाले स्वामी आत्मतत्त्वानन्द सरस्वती, स्वामी विश्वज्योति सरस्वती, स्टेरिन क्लारिस्सी (फ्रांस), लिजा (आस्ट्रेलिया) और सोंजा ऐगेनब्रोड (जर्मनी) को; प्रकाशन करने में हार्दिक सहयोग देनेवाले श्री भरत झुनझुनवाला तथा मुद्रण कार्य को तेजी से करके शीघ्र जनसेवा में लानेवाले श्री सुशील कुमार मित्तल को मैं अपना धन्यवाद के साथ अत्यन्त आभार प्रकट करता हूँ।

गुरुपूर्णिमा, सं॰ २०५७
दिनांकः १६ जुलाई २०००

सबका आत्मा
स्वामी शान्तिधर्मानन्द सरस्वती
सत्य दर्शन आश्रम,
२६४, शीशम झाड़ी,
ऋषिकेश – २४६ २०१ (उ॰प्र॰)
दूरभाष् – (०१३५) ४३ ६२६१

प्रस्तावना

ॐ श्री पतञ्जलये नमः ।।

ॐ श्री सरस्वत्यै नमः ।।

भारत-वर्ष का एक अत्यन्त प्राचीन विषय है योग। योग भारतीयों के जीवन का एक अभिन्न अंग रहा है। लेकिन अब यह संपूर्ण विश्व का विषय एवं मानव मात्र के जीवन का अंग बन रहा है। इसका वेद-मन्त्रों एवं उपनिषदों में पूर्ण विवेचन किया गया है। परन्तु अत्यन्त गूढ़ होने के कारण समझना अति कठिन है। अतः अनेकों ऋषि-मुनियों ने अनेकों ग्रन्थ लिखकर इसे सुगम करने की चेष्टा की है। इनमें से कुछ प्रामाणिक ग्रन्थ हैं – *पातञ्जल योगसूत्र, योगी याज्ञवल्क्य- संहिता, घेरंड- संहिता, शिव- संहिता, बृहद्- योग- सोपान, हठयोग प्रदीपिका* इत्यादि। इनमें भिन्न-भिन्न प्रकार के योगों का साधक भेद से वर्णन किया गया है।

योग का परम लक्ष्य "जीवात्मा और परमात्मा की एकता की अनुभूति है"। माया के आवरण के कारण जीव अपने आपको भूल गया है, योगाग्नि में तपकर वह अपने मल एवं विक्षेपों का परित्याग कर अपनी आत्मा के स्वरूप की अनुभूति कर सकता है।

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्
(यो. सू. १/२)।

यह जीव नाना प्रकार के संस्कार रूपी रंगों से रंगे हुए इस शरीर में रहता है, लेकिन योगाभ्यास द्वारा तपाया गया शरीर रोग, मृत्यु, बुढ़ापा आदि से रहित होकर स्वरूपानुभूति के योग्य होता है –

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः, प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरं।

यहाँ मृत्यु शब्द का अर्थ मरण नहीं अपितु महाभारत में जैसे कहा है –

मृत्युरत्यन्तविस्मृतिः।

अत्यन्त विस्मृति का नाम मृत्यु है अर्थात् जीवन का कारण स्वरूपविस्मृति मृत्यु है। इसलिए अर्जुन *गीता* का उपदेश सुनने के पश्चात् कहता है –

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा ।
(गी. १८ ।७३)।

सोकर उठने के बराबर पूर्व-जन्म से मरकर पुनर्जन्म लेने पर भी स्मृति रहना ही 'न मृत्यु' शब्द से कहा है। इसी को *सुश्रुत-संहिता* में कहते हैं –

भाविनः पूर्वदेहेषु संततं शास्त्रबुद्धयः।
भवन्ति सत्त्वभूयिष्ठाः पूर्वजातिस्मरा नराः।।

अतः अपने संचित कर्मों एवं पूर्वजन्मों में किए गये साधनों को जानकर योगी वर्तमान जन्म में उसी मार्ग से आगे बढ़कर पूर्णत्व को प्राप्त करता है। इस सन्दर्भ में –

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकं ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ।।
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः
(गी. ६/४३-४४)

इन बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि योग केवल व्यायामादि के समान शरीर को नीरोग एवं पुष्ट रखने का साधन ही नहीं बल्कि भवरोग से मुक्ति प्राप्त करने का भी साधन है। लेकिन यह प्रसिद्ध उक्ति है –

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।

इसके अनुसार नीरोग एवं दृढ़ता से युक्त पुष्ट शरीर के विना मुक्ति-साधना सम्भव नहीं। इसलिए योग को इस प्रकार गूंथ दिया गया है कि शरीर की सुडौलता के साथ-साथ आध्यात्मिक प्रगति भी हो। शरीर की सुदृढ़ता के लिए आसन एवं दीर्घायु के लिए प्राणायाम को वैज्ञानिक ढंग से ऋषियों ने अनुभव के आधार पर दिया है। इससे व्यक्ति एक महान् संकल्प लेकर उसे कार्यान्वित कर सकता है। अतः योग इस जीवन में सुख और शांति देता है और साथ-साथ मुक्ति के मार्ग को प्रशस्त करता है। योग केवल सुन्दर एवं व्यवस्थित रूप से जीवन-यापन करना ही नहीं सिखाता अपितु व्यक्तित्व को निखारने की कला को भी सिखाता है।

हठयोग का प्रयोजन हड्डियों में लचक, माँसपेशियों का सन्तुलन, रक्त का सुचारु रूप से संचार तथा ग्रन्थियों से उचित स्राव के द्वारा शरीर की समस्त प्रणालियों का कार्य समुचित ढंग से सम्पन्न कराना है। प्राणायामादि द्वारा व्यक्ति का मन भी स्वस्थ रहता है। अर्थात् तनावरहित होकर ध्यानपूर्वक सकल कार्य करने की क्षमता प्राप्त

होती है। इसलिए यदि आपका लक्ष्य — शरीर को स्वस्थ एवं सुडौल बनाना, विपत्तियों में संतुलित रहने की क्षमता पाना; एक निष्पक्ष सरल कर्मठ बनना; जीवन को सुखी, प्रसन्नपूर्ण व सन्तोषमय बनाना; विषमताओं में समता के साथ उत्कृष्ट नैतिक जीवन व्यतीत करना; मन, बुद्धि एवं चित्त की स्वस्थता से युक्त निष्काम सेवामय आदर्श जीवन और समस्त ब्रह्माण्ड के रहस्यमय ज्ञान से लेकर आत्मबोध पर्यन्त की अनुभूति करनी है तो आप अवश्य योग के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर किसी गुरु के निर्देशन में योगाभ्यास शुरू करें।

इस संसार में कर्म में प्रवृत्त परायण लोग शारीरिक शक्ति प्रधान होते हैं, कुछ लोग भक्ति परायण होकर भावनात्मक शक्ति प्रधान होते हैं, कुछ अन्य लोग ध्यान परायण होकर मानस शक्ति प्रधान होते हैं तो कुछ लोग विचार परायण होकर बौद्धिक शक्ति प्रधान होते हैं। इस प्रकार साधक भेद के अनुसार कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग एवं ज्ञानयोग — क्रमशः ये चार मार्ग वेदादियों में प्रसिद्ध हैं। यद्यपि वर्तमान ग्रन्थ राजयोग के अनेकों प्रभेदों में से एक अष्टांग योग के दो अंग — आसन एवं प्राणायाम पर विशेष विचार के लिए है। तथापि इस ग्रन्थ को मुख्य रूप से १५ अध्यायों में विभक्त तीन प्रकरणों (प्रथम, द्वितीय, तृतीय) में लिखा गया है — शरीर-शुद्धि प्रकरण, चित्त-शुद्धि प्रकरण और तत्त्वविज्ञान प्रकरण। गौण रूप से आरम्भ में एक अध्याय "अष्टांग योग — एक संक्षिप्त परिचय" तथा अन्त में आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से एक प्रकरण (चतुर्थ) "योग द्वारा रोगोपचार" नाम से अधिक रखा गया है। समाप्त करते हुए 'उपसंहार' को एक प्रकरण (पञ्चम) के रूप में प्रस्तुत किया है। अतः इस ग्रन्थ को **"योग-पञ्चदशी"** भी कह सकते हैं।

ग्रंथ परिचय

ग्रन्थ को 'उपक्रम' नामक अध्याय से आरम्भ किया गया है। इसमें पतञ्जली एवं याज्ञवल्क्य महर्षियों के दृष्टि से अष्टांग योग पर संक्षिप्त विचार सर्व-साधारण को योग का परिचय कराने हेतु प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात् **"शरीर-शुद्धि प्रकरण"** में स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर की शुद्धि के बारे में विचार किया गया है। अतः शारीरिक विज्ञान के अध्याय एवं शोधन विज्ञान के अध्याय में स्थूल-शरीर संबंधी परिचय एवं शुद्धि पर जोर दिया गया है। आसन एवं प्राणायाम इन अध्यायों के साथ मुद्रा एवं बन्धों को जोड़कर सूक्ष्म-शरीर सम्बन्धी शुद्धि पर विचार किया गया है।

सूक्ष्म तथा कारण शरीर के अवयव अज्ञान, बुद्धि, अहंकार एवं मन की शुद्धि के लिए **"चित्त-शुद्धि प्रकरण"** आरम्भ किया है। इसमें निष्काम कर्मयोग, युक्ताहार, प्रत्याहार, धारणा एवं ध्यान पर विचार प्रकट किया गया है। लेकिन इन दोनों प्रकरणों में कहे गये साधनों का सही प्रयोग तत्त्वविज्ञान के बिना सम्भव नहीं। इसलिए तीसरे

प्रकरण "तत्त्वविज्ञान प्रकरण" में योग के आधारभूत तीन तत्त्व – नाड़ी, चक्र एवं कुण्डलिनी पर प्रकाश डाला गया है। अन्त में प्रत्येक व्यक्ति को योग के योग्य बनाने हेतु "योग द्वारा रोगोपचार" प्रकरण रखा गया है। इसमें अनेकों वैज्ञानिकों के अर्थात् योगोपजिह्वी डॉक्टरों तथा मेरे गुरुजी परमहंस स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, बिहार योग विद्यालय के प्रायोगिक अनुभवों के आधार पर विभिन्न रोगों को नियंत्रण में रखने के लिए आवश्यक योगाभ्यास के बारे में बताया गया है।

आशा करता हूँ इस ग्रन्थ से मानवमात्र को लाभ होगा और साधकों को विशेष रूप से लाभ हो सकेगा। सभी की मंगलकामना करते हुए सबकी शारीरिक एवं आध्यात्मिक अभिवृद्धि के लिये नारायणस्वरूप समस्त मानव समाज को सादर समर्पण करता हूँ।

सर्वेषामात्मा

गुरु पूर्णिमा, सं २०५७
दिनांकः १६ जुलाई २०००

स्वामी शान्तिधर्मानन्द सरस्वती
सत्य दर्शन आश्रम
२६४, शीशम झाड़ी, ऋषिकेश, (उ॰प्र॰)
दूरभाषः (०१३५) ४३ ६२६१

विषय-सूची

प्रभाग	अध्याय संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
I		प्रस्तावना	vii
II		अष्टांगयोग परिचय (उपक्रम)	१
III		प्रथम प्रकरण — शरीर-शुद्धि-प्रकरण	६
	१.	शारीरिक विज्ञान	११
	२.	शोधन विज्ञान	३३
	३.	आसन विज्ञान	५१
	४.	प्राणायाम विज्ञान	१२७
	५.	मुद्रा एवं बन्ध विज्ञान	१४५
IV		द्वितीय प्रकरण — चित्त-शुद्धि-प्रकरण	१६१
	६.	निष्काम कर्मयोग विज्ञान	१६३
	७.	युक्ताहार विज्ञान	१६७
	८.	योगनिद्रा विज्ञान	१७१
	९.	प्रत्याहार विज्ञान	१७३
	१०.	त्राटक विज्ञान	१७६
	११.	धारणा विज्ञान	१८१
	१२.	ध्यान विज्ञान	१८५

V		**तृतीय प्रकरण — तत्त्वविज्ञान प्रकरण**	१६६
	१३.	नाड़ी विज्ञान	२०१
	१४.	चक्र विज्ञान	२०६
	१५.	कुण्डलिनी विज्ञान	२२५
VI		**चतुर्थ प्रकरण — योग द्वारा रोगोपचार**	२३१
VII		**पंचम प्रकरण — उपसंहार**	२३७
		अनुक्रमणिका	२३६

उपक्रम

अष्टांग योग

एक संक्षिप्त परिचय

अनेक उपनिषदों में, *योगी याज्ञवल्क्य-संहिता* आदि स्मृतियों में तथा महर्षि पतञ्जलि कृत *योग सूत्र* में अष्टांग योग की चर्चा बहुत विस्तार से की गई है। वे आठ अंग हैं — यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

इनमें से प्रथम चार को बहिरंग़ साधन एवं अन्तिम चार को अन्तरंग साधन के रूप में माना गया है। अन्य लोगों ने इनके इस प्रकार भाग किए हैं — यम और नियम से नैतिक शिक्षा, आसन और प्राणायाम से शारीरिक शिक्षा, प्रत्याहार और धारणा से मानस शिक्षा, ध्यान से आध्यात्मिक शिक्षा और समाधि से आत्मानुभूति।

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार यम का पालन करने से व्यक्ति अपने को निषिद्ध पाप-कर्मों से बचाकर सामाजिक स्वस्थता में आदर्श द्वारा सहयोग दे सकता है। नियम के पालन द्वारा विहित पुण्य-कर्मों से नैतिक जीवन व्यतीत कर सकता है। आसन के अभ्यास से शरीर को स्वस्थ एवं सुडौल बनाए रख सकता है। प्राणायाम द्वारा मन के विकारों को शान्त कर मन की शक्तियों का सही प्रकार से उपयोग कर सकता है। प्रत्याहार के अभ्यास से इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाकर वांछित विषयों चिन्तन-मनन यथेष्ट काल तक करने की क्षमता प्राप्त कर सकता है। धारणा के अभ्यास द्वारा एक निश्चित लक्ष्य के प्रति एकाग्रता को बढ़ाकर उसके तत्त्व को जानने का सामर्थ्य प्राप्त कर सकता है। ध्यान द्वारा चित्त को शुद्ध कर इष्ट पदार्थ को प्राप्त करने व प्रयोग करने की क्षमता प्राप्त कर सकता है। समाधि से व्यक्ति अपने कार्य में समग्र चेतना को तल्लीन करके भी सजग रहने की क्षमता से आरम्भ कर आनन्दानुभूति पर्यन्त बढ़ने की क्षमता प्राप्त करता है। इस प्रकार.अष्टांग योग व्यक्ति के सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन को सुन्दर बनाकर शरीर, इन्द्रिय, मन एवं चित्त को शुद्ध करके मोक्ष को प्रदान करता है।

(१) यमः

महर्षि पतञ्जलि

अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रहाः यमः।
(२/३०)

इस सूत्र द्वारा यम को पांच प्रकार का कहते हैं। योगी याज्ञवल्क्य ने *योगी याज्ञवल्क्य-संहिता* में कहा है —

यमश्च नियमश्चैव दशधा सुप्रकीर्तिताः ।
(१/४७)

इस श्लोक में यम और नियम को दस प्रकार का मानते हैं। वे दस इस प्रकार हैं —

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयाऽऽर्जवम्।
क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं त्वेते यमा दश।
(१/५०)

१. काया, वाचा, मनसा सदा सब प्राणियों में कष्ट न पहुंचाने के भाव को **अहिंसा** कहते हैं।

२. केवल यथार्थ कथन (अर्थात् जैसा देखा, सुना अथवा घटी घटना को वैसा ही कहना) सत्य नहीं है किन्तु समस्त प्राणियों के हित में कहने को **सत्य** कहते हैं। इसलिए धर्म की रक्षा, बड़ों के मान-सम्मान की रक्षा आदि के लिए झूठ (सांसारिक दृष्टि से) कहना भी सत्य है (शास्त्र दृष्टि से) और इसके विपरीत धर्म एवं बड़ों की हानि हो ऐसा सत्य (सांसारिक दृष्टि से) कहना भी महान् झूठ है (शास्त्रदृष्टि से)।

३. काया, वाचा, मनसा दूसरों के धन की इच्छा आदि न करना **अस्तेय** है।

४. सभी अवस्थाओं में काया, वाचा, मनसा सर्वत्र मैथुन की इच्छादि के त्याग को **ब्रह्मचर्य** कहते हैं।

५. सर्वत्र सब प्राणियों पर कृपा-दृष्टि रखना **दया** है।

६. विहित और निषिद्ध सकल कार्यों में काया, वाचा, मनसा प्रवृत्ति और निवृत्ति के प्रति सदा एक भाव रखना **आर्जव** है।

७. समस्त प्रिय और अप्रिय विषयों में समत्व बुद्धि **क्षमा** है।

८. हानि एवं लाभ में सर्वत्र तथा सर्वदा चित्त की स्थिरता धृति है।

९. अल्पभोजन को **मिताहार** कहते हैं। इस विषय में शास्त्रों का यह निर्णय है — तपःस्वाध्यायादि परायण संन्यासी, मुनि, ब्रह्मचारी आदि को ८ ग्रास, अरण्यवासी तप आदि परायण वानप्रस्थी को १६ ग्रास, गृहस्थ को ३२ ग्रास तथा सेवा कार्य में निरत ब्रह्मचारी को यथेष्ट भोजन ही अल्प भोजन समझना चाहिए।

१०. शुद्धि का नाम **शौच** है। वह दो प्रकार की है — बाह्य एवं अन्तः। स्नान आदि द्वारा बाह्य शुद्धि करने को बाह्य शौच कहते हैं। पिता, माता, मामा, ससुर एवं आचार्य — इन पाँच गुरुओं से धर्म एवं अध्यात्म-विद्या प्राप्त कर मन आदि अन्तःकरण को शुद्ध करने को अन्तः शौच कहते हैं।

महर्षि पतञ्जलि द्वारा कथित अपरिग्रह नाम के यम का अर्थ है — वर्तमान एवं निकट भविष्य के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करना अपरिग्रह है। अनावश्यक तथा आवश्यकता से अधिक संग्रह करना परिग्रह है।

(२) नियमः

महर्षि पतञ्जलि ने कहा है —

शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।
(२/३२)

इस सूत्र द्वारा नियम के पांच भेद कहे हैं। योगी याज्ञवल्क्य ने *योगी याज्ञवल्क्य- संहिता* में कहा है कि —

तपः सन्तोषमास्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम् ।
सिद्धान्तश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो व्रतम् ।।
(२/६)

इस श्लोक में दस भेद से नियम का वर्णन किया है।

१. शास्त्र में कहे चान्द्रायण, पञ्चाग्नि आदि द्वारा शरीर का शोषण करने को **तप** कहते हैं।

२. बिना इच्छा किए जो नित्य प्राप्त हो जाए उसी से मन को पवित्र एवं प्रसन्न रखने वाली बुद्धि को **सन्तोष** कहा है। यही परम सुख है।

३. धर्म एवं अधर्म में विश्वास रखना **आस्तिक्य** है।

४. शास्त्रों में कहे गये ढंग से न्यायोचित धनोपार्जन करके, उसमें से श्रद्धापूर्वक धनार्थी के लिए कुछ धन का त्याग करना दान है।

५. जो प्रसन्न भाव से भक्ति के साथ श्रद्धायुक्त होकर संपूर्ण समर्पण भाव से यथाशक्ति गुरु एवं इष्ट देव की अर्चना आदि करता है उसे **ईश्वर पूजन** कहते हैं। यही ईश्वर प्रणिधान है।

६. ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों द्वारा वेदान्त के श्रवण को **सिद्धान्त-श्रवण** कहते हैं। स्वधर्म आचरण और पुराणों का श्रवण करना स्त्री एवं शूद्रों के लिये **सिद्धान्त-श्रवण** कहा गया है।

७. वैदिक और लौकिक मार्ग में कहे निन्दित कर्मों से लज्जित होकर घृणापूर्वक निवृत्त होना **ही** है।

८. विहित कर्मों में अटूट श्रद्धा रखना **मति** है।

९. वेदों से निषिद्ध आचरण को त्यागकर शास्त्रोक्त रीति से गुरु द्वारा उपदेश दिया हुआ व वेदोक्त मन्त्र का अभ्यास **जप** है। वह अनेक प्रकार से किया जाता है। लिखित, मानस, उपांशु और वैखरी चार प्रकार का जप प्रसिद्ध है। ऋषि, छन्दः, देवता का सम्यक् प्रकार से ध्यान करके बीज, शक्ति, कीलक और विनियोग से युक्त करके मन्त्र का जप करना चाहिए।

१०. किसी नियम का सख्ती से पालन करना **व्रत** है। यह काम्य, नैमित्तिक और नित्य भेद से तीन प्रकार का है। तिथि, वार, नक्षत्र, त्यौहार, ग्रहणादि निमित्तों को लेकर नैमित्तिक व्रत किया जाता है। कामना की पूर्ति के लिये काम्यव्रत करते हैं। सन्ध्या-वन्दन, देव-पूजा इत्यादि फलाकांक्षा रहित होकर नित्य करना नित्यव्रत है। व्रतों के बारे में *चतुर्वर्ग-चिन्तामणि* आदि ग्रन्थों में विस्तार से विधि-विधान का वर्णन किया गया है।

योगी याज्ञवल्क्य ने महर्षि पतञ्जलि द्वारा कहे गये शौच को यम में लिया है तथा ईश्वर-प्रणिधान को ईश्वर पूजन नाम से कहा है। महर्षि पतञ्जलि द्वारा कथित स्वाध्याय को व्यास-कृत भाष्य के अनुसार लें तो सिद्धान्त-श्रवण एवं जप के रूप में कहा गया है।

(३) आसनम्

महर्षि पतञ्जलि ने कहा है —

स्थिरसुखमासनम्।

(२/२६)

इस सूत्र में आसन के लक्षण बताए हैं। यह आसन ८४ लाख योनियों के अनुरूप ८४ लाख हैं। इनमें से ८४ मात्र को प्रमुख माना है ऋषियों ने। लेकिन योगी याज्ञवल्क्य निम्न आठ आसनों को मनुष्य के लिए आवश्यक मानते हैं—

स्वस्तिकं गोमुखं पद्मं वीरं सिंहासनं तथा ।
भद्रं मुक्तासनं चैव मयूरासनमेव च।।
(३/१२)

आसनों का फल शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वस्थता है। *गोरक्ष- संहिता, घेरंड- संहिता, हठयोग-प्रदीपिका* आदि अनेकों ग्रन्थों में तथा उपनिषदों में थोड़े आसनों के बारे में विचार है। इनकी विस्तृत चर्चा बाद में करेंगे। यहां आठ अंगों का परिचय मात्र दिया जा रहा है।

(४) प्राणायामः

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार —

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।
(२/४६)

अर्थात् श्वास = पूरक, प्रश्वास = रेचक, इन दोनों के गतिविच्छेद = कुम्भक, इनके संयोग से प्राणायाम होता है। इस सूत्र का आशय है प्राण = शरीर की ऊर्जा शक्ति का आयाम = सम्यक् अभ्यासपूर्वक पूरक, कुंभक, रेचक क्रम को करना। यही प्रक्रिया योगी याज्ञवल्क्य-संहिता आदि सभी ग्रन्थों में कही गयी है। इसकी विस्तृत चर्चा बाद में करेंगे।

(५) प्रत्याहारः

महर्षि पतञ्जलि के योग सूत्र के अनुसार —

स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।
(२/५४)

अर्थात् इन्द्रियों का अपने विषय शब्दादियों की ओर न जाकर चित्त के स्वरूप के अनुरूप वृत्ति बनाए रखना ही प्रत्याहार है। लेकिन यह सहज नहीं हो सकता इसलिए योगी याज्ञवल्क्य कहते हैं —

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः ।
बलादाहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते।।
(७/२)

अर्थात् स्वभाव से बहिर्मुख इन्द्रियों को बलपूर्वक अन्तर्मुख करना ही प्रत्याहार है। यानी जो कुछ बाहर अनुभव करते हैं और कर्म करते हैं उन सबको भीतर हृदय देश में करना ही प्रत्याहार है। उपनिषदादि में चर्चित उपासना का दूसरा रूप प्रत्याहार है। देवताओं के चिकित्सक अश्विनी कुमारों ने कहा है २८ मर्म स्थानों में वायु को धारण कर क्रमशः प्रत्येक स्थान से उसको खींचकर हृदय में विलीन करना प्रत्याहार है। वे मर्म स्थान हैं — पैर के अंगूठे, एड़ी, एड़ी और पिण्डली के मध्यभाग, पिण्डली, घुटने, जाँघ, गुदा, मूलाधार-चक्र का स्थान, लिंग, नाभि, हृदय, कण्ठ, तालु, नासिका, चक्षु, भ्रूमध्य, ललाट और मूर्धा (मस्तिष्क)। इनकी विस्तृत चर्चा चित्त-शुद्धि प्रकरण में करेंगे।

(६) धारणा

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार धारणा का लक्षण इस प्रकार है —

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ।

(३/१)

शरीर के भीतर या बाहर किसी स्थान विशेष में चित्त का बन्धना धारणा है। किन्तु योगी याज्ञवल्क्य के अनुसार अष्टांगों के क्रम से जब सकल इन्द्रियों को अन्तर्मुख कर लिया गया है, तो धारणा शरीर के भीतर ही होनी चाहिए। इसलिए वे कहते हैं —

अस्मिन्ब्रह्मपुरे गार्गि यदिदं हृदयाम्बुजम् ।
तस्मिन्नेवान्तराकाशे यद्बाह्याकाशधारणम् ।।

(८/३)

अर्थात् देह के मध्य में स्थित हृदय कमल के अन्तराकाश में बाह्य आकाश को धारण करना ही धारणा है। इसी प्रकार से *छान्दोग्योपनिषद्* एवं *बृहदारण्यकोपनिषद्* में भी कहा गया है। यह धारणा पञ्च तत्त्वों के पांच देवताओं को शरीर के विभिन्न भागों में क्रमशः धारण करके उपरोक्त को अन्त में अभ्यास करना है, अतः धारणा पांच प्रकार की मानी गई है। विशेष विचार चित्त-शुद्धि प्रकरण में देखें।

(७) ध्यान

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार —

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।

(३/२)

अर्थात् जिस देश में चित्त बन्धा है उसी देश में स्थिर रहकर एक (ध्येय) विषयक ज्ञानाकार वृत्ति को निरन्तर तैलधारावत् बनाए रखना ध्यान है। परन्तु योगी याज्ञवल्क्य कहते हैं –

ध्यानमात्मस्वरूपस्य वेदनं मनसः खलु ।
सगुणं निर्गुणं तच्च, सगुणं बहुशः स्मृतम् ।।
(९/२)

अर्थात् मन से आत्मस्वरूप की वृत्ति द्वारा आत्मा को (जानना) अनुभव करना ध्यान है। इसके लिए क्रम बताए हैं – प्रथम सगुण ध्यान करें जो कि अनेक प्रकार का है। अन्त में लक्ष्य प्राप्ति के लिए निर्गुण ध्यान का अभ्यास करें। शेष विचार चित्त-शुद्धि प्रकरण में देखें।

(८) समाधि

महर्षि पतञ्जलि ने कहा है –

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूप-शून्यमिव समाधिः ।
(३/३)

अर्थात् ध्यान-ध्येय-ध्याता इस त्रिपुटी का न होकर केवल ध्येयाकार वृत्तिमात्र रहने का नाम समाधि है। लेकिन योगी याज्ञवल्क्य कहते हैं –

समाधिः समतावस्था जीवस्य परमात्मनोः ।
ब्रह्मण्येव स्थितिर्या सा समाधिः प्रत्यगात्मनः ।।
(१०/२)

अर्थात् समाधि उस सम अवस्था का नाम है जिसमें जीवात्मा और परमात्मा की अभेद अनुभूति हो। तात्पर्य यह है कि जीवात्मा का ब्रह्म में अद्वैतभाव की स्थिति को समाधि कहते हैं।

यद्यपि योगी याज्ञवल्क्य के अनुसार वेदान्त में कहे मोक्ष एवं समाधि में कोई अन्तर नहीं है तथापि वह स्थिति क्या पतञ्जलि आदि के अनुसार यौगिक क्रियाजन्य अथवा विवेक-ख्यातिजन्य अथवा ब्रह्मविद्याजन्य है अथवा मायामय जगत् में सत्यत्व निवृत्तिपूर्वक मिथ्यात्व का निश्चय मात्र से है इत्यादि विकल्पों के कारण सैद्धान्तिक भेद हैं। उपनिषदादि ग्रन्थों के परिशीलन द्वारा पाठक स्वयं अनुभव कर लें तो अत्युत्तम होगा।

यह अष्टांग योग जो कि राजयोग का एक प्रभेद है, का संक्षिप्त परिचय है।

प्रथम प्रकरण

शरीर-शुद्धि प्रकरण

जैसा कि भूमिका में कहा गया है –

शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्

और *भगवद्गीता* में भगवान् की उक्ति है –

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते

(१३/१)

अर्थात् शरीर खेती के समान है, जिसमें यह जीव मेहनत कर इष्ट फल को उपजा सकता है। इन उक्तियों के अनुसार उपजाऊ भूमि के समान शरीर को लौकिक एवं आध्यात्मिक सकल कार्यो को अनुष्ठान के योग्य बनाए रखना है। इसके लिए शरीर को शुद्ध एवं पवित्र रखना है ताकि हम योगाभ्यास द्वारा इष्ट फल को प्राप्त कर सकें। इस प्रकरण के पांच अध्यायों में – शरीर की संरचना के बोध के लिये **शारीरिक विज्ञान;** स्थूल शरीर की शुद्धि के लिए **शोधन विज्ञान;** स्थूल शरीर को सुदृढ़, सुडौल एवं लचीला बनाए रखने के लिए **आसन विज्ञान,** स्थूल शरीर में स्फूर्ति, मजबूत प्राणशक्ति, आयु की अभिवृद्धि तथा सूक्ष्म शरीर के चक्रों के जागरण हेतु **प्राणायाम विज्ञान** एवं अन्त में इनके सहयोगी **मुद्रा एवं बन्धविज्ञान** पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

अध्याय १

शारीरिक विज्ञान

प्रस्तावना

शरीर की संरचना के ज्ञान के बिना इस पर नियन्त्रण करना संभव नहीं, इसलिए इस शरीर की संरचना का संक्षिप्त परिचय इस अध्याय में है। प्रत्येक प्राणी के शरीर के तीन भाग हैं। स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर।

स्थूल शरीर सात धातुओं के संघटित स्वरूप का नाम है। वे हैं – अन्नरस, खून, मांस, चर्बी, हड्डी, मज्जा और वीर्य। यह सब कोशिकाओं के विभिन्न रूप हैं।

कोशिका जीवित पदार्थ की वह छोटी इकाई है जो शरीर के निर्माण का मूलभूत आधार है। सभी कोशिकाएं यद्यपि अलग-अलग एवं स्वतन्त्र हैं तथापि वे काफी समानता रखती हैं और मिलकर कार्य करती हैं। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यह शरीर ६०० खरब कोशिकाओं से निर्मित है। ये छोटे-छोटे संघटन करके अलग-अलग कार्य करती हैं। प्रतिपल विभिन्न क्रिया-कलापों को करते हुए कितनी ही नष्ट होती हैं और कितनी नई बनती हैं, यह कहना असम्भव है। इनका कार्य है कच्चे माल को लाना, अन्नरसादि तैयार माल बनाना, अनुपयोगी अंश का विसर्जन करना इत्यादि।

कोशिकाओं के समूह को **ऊतक** कहते हैं। विभिन्न प्रकार के कार्य करने वाले सब ऊतक एकजुट होकर शरीर का एक ऐसा भाग बनाते हैं जो कि विशेष आकार तथा गुणों के कारण अन्य भागों से अलग पहचाना जा सके। उसे *अंग* कहते हैं। कई अंग जब परस्पर मिलकर एक प्रकार का कार्य करते हैं तो इसे **प्रणाली/तन्त्र/संस्थान** कहते हैं। हमारे इस मानव शरीर में मुख्य रूप से छः प्रणालियाँ मानी गई हैं। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं –

(क) – स्नायु प्रणाली

(ख) – ग्रन्थि प्रणाली

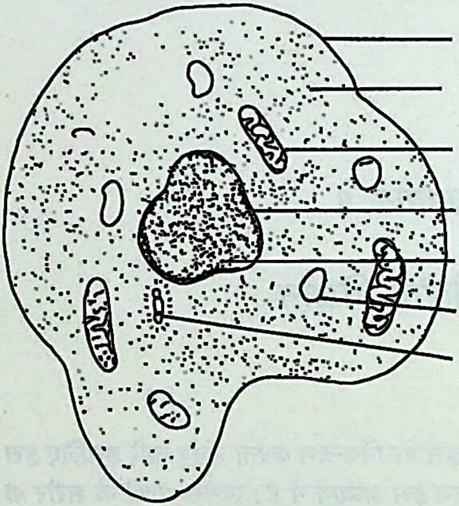

कोशिका का रेखा चित्र

कोशिकाओं के भेद-

(१) माइट्रो कोंड्रिया (Mitrochondrion)
(२) नाभकीय झिल्ली (Nuclear Membrane)
(३) नाभकीय द्रव्य (Nucleoplasm)
(४) रिक्तिका (Vacuole)
(५) सैन्ट्रोसोम (Centrosome)

(ग) – श्वसन प्रणाली

(घ) – रक्त–संचार प्रणाली

(ङ) – पाचन प्रणाली

(च) – विसर्जन प्रणाली

क - स्नायु प्रणाली

हमारे शरीर की स्नायु प्रणाली को मस्तिष्क, रीढ़, मन और स्वयंचालित नाड़ी संस्थान के नाम से चार भागों में विभक्त कर समझा जा सकता है।

(क-१) मस्तिष्क – अखरोट के आकार वाला, लगभग १.४ किलोग्राम वजन वाला, सफेद एवं स्लेटी रंग के असंख्य (करीब एक करोड़) नाड़ी पेशियों अर्थात् ऊतकों से बना हुआ, खोपड़ी के अन्दर स्थित, अंग विशेष को **मस्तिष्क** कहते हैं। यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है क्योंकि यह सभी प्रणालियों के नियन्त्रण के साथ इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त संदेशों को ग्रहण करके आकलन करना, स्मृति बनाना, आदेश देना, प्रतिक्रियाएँ आदि सकल व्यवहार का नियन्त्रण करता है। याद करना व भूलना इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। हृदय और फेफड़ों की भाँति इसके क्रिया-कलाप दिन-रात चलते रहते हैं। सिर की आकृति या परिमाण द्वारा उसकी शक्ति-सामर्थ्य का निर्णय करना संभव नहीं। यद्यपि यह शरीर का पांचवां भाग है (१/५) तथापि हृदय से प्रवाहित कुल रक्त के पांचवें भाग से ज्यादा रक्त की आवश्यकता पड़ती है। यदि इसे दो सैकेण्ड से अधिक देर तक रक्त न मिले तो यह कार्य करना बन्द कर देगा। पांच मिनट रक्त न मिले तो इसकी मृत्यु हो जाती है।

मस्तिष्क के तीन प्रमुख भाग हैं – उच्च, मध्यम तथा निम्न अथवा अग्र,

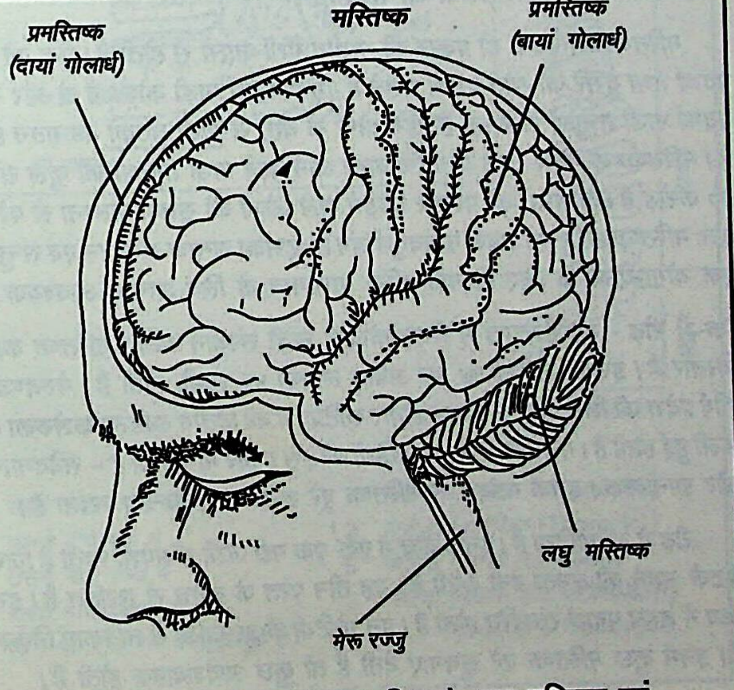

मस्तिष्क में प्रमस्तिष्क (बृहद मस्तिष्क), लघु मस्तिष्क एवं मेरुरज्जु के स्थान।

मध्य और लघु। निम्न अथवा लघु मस्तिष्क के दो भाग हैं – दायां और बायां।

लघु मस्तिष्क का दायां भाग शरीर के बाएं भाग को तथा बायां भाग शरीर के दाहिने भाग को नियन्त्रित करता है। यह शरीर के स्वाभाविक कार्यों को नियन्त्रित करता है जैसे कि हृदय की गति, श्वास की दर एवं गहराई, शारीरिक ताप, अंगों का परस्पर सामंजस्य, इत्यादि जिन पर विशेष ध्यान देने की जरूरत नहीं। उच्च और मध्यम अथवा अग्र और मध्य मिलकर बृहद् मस्तिष्क अथवा प्रमस्तिष्क कहा जाता है। **मध्यम मस्तिष्क** एक गूढ़-नियंत्रक पट्ट (sensitive switch board) के समान कार्य करता है। यह समस्त शरीर एवं इन्द्रियों से संदेश ग्रहण करता है, उन्हें क्रम से अलग करके, छांटकर मात्र आवश्यक संदेशों को उच्च मस्तिष्क को भेजता है। **उच्च मस्तिष्क** प्राप्त संदेशों को ग्रहण कर आवश्यकता के अनुसार कार्य करता है। इस प्रकार प्रमस्तिष्क अर्थात् बृहद मस्तिष्क हमें चेतना, भाव, विचार, उद्‌गार, चिन्तन एवं तर्क आदि द्वारा उचित निर्णय करने की क्षमता प्रदान करता है। अतः योगाभ्यास द्वारा मस्तिष्क को पूर्ण सजग रखने की प्रक्रिया जानकर प्रयोग करने से व्यक्तित्व का पूर्ण विकास किया जा सकता है।

मस्तिष्क की रचना दो प्रकार की नाड़ीय पेशी जालों से होती है। एक को भूरा पदार्थ तथा दूसरे को श्वेत पदार्थ कहते हैं। भूरा पदार्थ नाड़ी कोशाओं से और श्वेत पदार्थ नाड़ी तन्तुओं से बनता है। इन दोनों के योग से नाड़ी घटकों का गठन होता है। मस्तिष्क के भीतर जाने वाले एवं बाहर आने वाले नाड़ी तन्तुओं की कुल संख्या २० करोड़ है। कोशाओं को परस्पर जोड़ने वाले जोड़ों की संख्या कल्पना से परे है। अतः मस्तिष्क शरीर का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। इसका सम्यक् संचालन एवं सन्तुलन एक योगाभ्यासी के लिए ही नहीं बल्कि प्राणीमात्र के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

(क-२) रीढ़ - यह मेरुदण्ड में स्थित केन्द्रीय नाड़ी संस्थान अर्थात् मस्तिष्क का ही विस्तार है। इसकी लम्बाई १७ इंच अर्थात् लगभग ४५ से.मी. होती है। मेरुदण्ड के शीर्ष प्रदेश की शिराऽस्थि से आरम्भ होकर कटिप्रदेश की द्वितीय कटिस्थ कशेरुका तक फैली हुई होती है। मेरुदण्ड में स्थित नाड़ियों को इस प्रकार माना गया है – संवेदनात्मक और ज्ञानात्मक। इनके माध्यम से मस्तिष्क पूरे शरीर पर नियन्त्रण रखता है।

रीढ़ में ३३ गोटियां हैं। इनके बीच में एक-एक गद्दी जैसी माँसपेशी रहती है जिससे झटके सहने की क्षमता बनी रहती है। यह तीन परत के कवच से सुरक्षित है। इसके मध्य में तरल पदार्थ संचारित होता है। इन गोटियों के ३६ जोड़ों से तंत्रिकाएं निकलती हैं। इनमें कुछ मस्तिष्क को सूचनाएं देती हैं तो कुछ आदेशवाहक होती हैं।

चिकित्सा विज्ञान में सुविधा के अनुसार एवं कार्यानुसार इन गोटियों को इस तरह विभाजित किया गया है ।

रीढ़ (Spine)

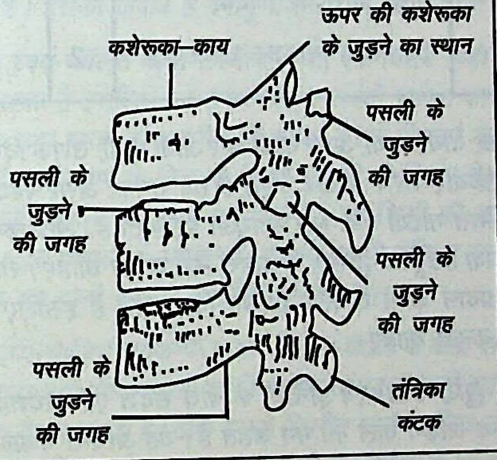

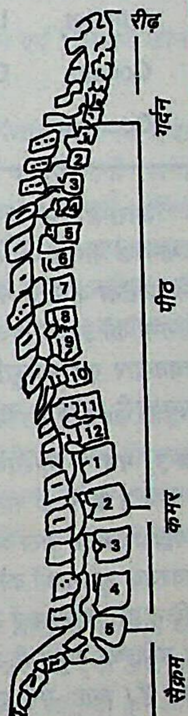

- सबसे ऊपर गर्दन की — 7 गोटियाँ {सर्वाइकल (Cervical)}
- उससे नीचे पीठ में — 12 गोटियाँ {थोरेसिक (Thoracic)}
- उससे नीचे कमर में — 5 गोटियाँ {लम्बर (Lumber)}
- सबसे नीचे बस्ति गुहा में (5+4) ये आपस में जुड़ी हुई हैं। — 2 गोटियाँ {सैक्रल और कोक्सिजिअल} (Sacral & Coccygel)

शरीर के विभिन्न भागों में रीढ़ की एक-एक गोटी की कार्य-क्षमता निम्नलिखित तालिका से सुस्पष्ट है। –

Cervical	C =	गर्दन की गोटियाँ	7	
Thoracic	T =	पीठ की गोटियाँ	12	
Lumber	L =	कमर की गोटियाँ	5	=26
Coccyx	O =	बस्ति प्रदेश की गोटियाँ		
Coccygel		5 तथा 4 मिलकर 1 + 1 = 2	2	

आसनों से आगे, पीछे, दायीं, बायीं, आधी दायीं और आधी बायीं, उसके विपरीत, कमान के समान आदि क्रियाएं शरीर में जब करते हैं तब उनका असर सीधे रीढ़ की गोटियां के बीच में स्थित गद्दियों तथा मूल स्नायुओं पर होता है। अतः कभी भी आसनों को झटके से अथवा हठपूर्वक (क्षमता से बाहर) नहीं करना चाहिए। रीढ़ को लचकदार एवं मजबूती प्रदान करने के लिए आसन किए जाते हैं इसलिए सही जानकारी के बिना नहीं करना चाहिए।

(क-३) मन – मस्तिष्क (बुद्धि-तत्त्व) एवं इन्द्रियों के बीच संदेश एवं आदेशवाहक के रूप में दोनों के सम्बन्ध जोड़ने वाले को मन कहते हैं। यह अत्यन्त चंचल होने से सब प्रकार के दुःख का कारण होता है। यह जितना स्थिर होगा उतना ही विवेकपूर्वक आवश्यक सूचनाओं को मात्र बुद्धि को देने लगेगा तो अवश्य शान्ति एवं सुख मिलेगा। लेकिन इसे शान्त करें कैसे? इसके लिए पहले मन की सामान्य जानकारी आवश्यक है। मस्तिष्क स्थूल है और शरीर भी स्थूल है। इन दोनों के बीच मन एवं इन्द्रियाँ सूक्ष्म हैं। अतः मन एवं इन्द्रियों की शल्य चिकित्सा असंभव है। विचारों का आदान-प्रदान तथा संकल्प-विकल्प जहाँ है वहीं मन और इन्द्रियाँ हैं। शरीर, बुद्धि एवं मन के बीच प्राण है, जो तीनों को प्रभावित करता है। अतः प्राण का संयम से अर्थात् प्राणायाम से मन को शान्त किया जा सकता है क्योंकि संवेदनाओं को अनुभव करके उनको शरीर के विभिन्न भागों में नाड़ियों के द्वारा भेजना इसका काम है, इसलिए मस्तिष्क, शरीरादि सो जाते हैं किन्तु मन नहीं।

योग के अनुसार मन के तीन भाग स्वीकार किए जाते हैं – चेतन, अचेतन और अवचेतन। इनकी थोड़ी-सी शक्ति को ही हम काम में लेते हैं। योगाभ्यास से चेतना का स्तर बढ़ाकर अधिक सजगता द्वारा अधिक शक्ति का उपयोग कर सकते हैं। मन इतना सूक्ष्म है कि इसे आज तक कोई नाप नहीं सका है। कुछ दार्शनिक इसे परमाणु

के समान मानते हैं। लगता है यह सूक्ष्म तरंगों से बना हुआ पदार्थ है। इसलिए छोटे-से-छोटे, बड़े-से-बड़े एवं इन्द्रियों से अदृश्य वस्तुओं को भी यह ग्रहण कर लेता है। शरीर के भीतर एवं बाहर भी जाने का सामर्थ्य रखता है। इच्छा, विचार और क्रिया – ये मन की तीन प्रक्रियाएं हैं। जाग्रत काल में बाह्य वस्तुओं में आसक्त रहता है तो स्वप्न काल में अपने आप ही संसार रच लेता है, किन्तु सुषुप्ति में इसका कोई अस्तित्व नहीं रहता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि सुषुप्ति में प्राणादि का संचालन एवं नियन्त्रण कौन करता है। इसका जवाब है स्नायु प्रणाली का चौथा भाग –

(क-४) स्वयं-चालित नाड़ी-संस्थान – यह एक विशेष नाड़ी संस्थान है जो कि सदा चेतन रहता है इसलिए यह हमारे जीवन-संबंधी सकल कार्यो पर निगरानी रखता है और सदा ख़तरे से हमारी रक्षा करता है। ये क्रियाएं अधिकांशतः स्वयं-चालित होती हैं। एक क्षण के लिए भी किसी माध्यम से विचार भेजे बिना ही यह संस्थान हमारे लिए अपने आप कार्य कर देता है। यह किसी की अपेक्षा अथवा प्रतीक्षा नहीं करता। इस प्रणाली में अनुकम्पी एवं परानुकम्पी तंत्रिका नामक दो तन्त्र कार्य करते हैं और यह दोनों परस्पर विपरीत शक्तियां हैं।

स्वयं-चालित अनुकम्पी नाड़ी-संस्थान व्यक्ति के बाह्य वातावरण से संबंध जोड़ने वाले बाह्य अंगों एवं स्नायुओं को क्रियाशीलता प्रदान करते हुए शरीर को बाह्य क्रियाओं के लिए तैयार करता है। ठीक इसके विपरीत स्वयं-चालित परानुकम्पी नाड़ी-संस्थान शरीर में संचित शक्ति का उपयोग करते हुए शरीर के आन्तरिक अंगों एवं स्नायुओं को क्रियाशीलता प्रदान करता है।

इस प्रकार स्नायु प्रणाली की क्षमता को देख उसे असीम शक्ति वाला कहा जा सकता है। मनुष्य अपने जीवन में अपनी इस असीम शक्ति के मात्र एक अंश का ही उपयोग कर पाता है। योगाभ्यास के द्वारा मस्तिष्क की विभिन्न शक्तियों को कार्य करने के लिये उत्प्रेरित किया जाए तो कई नवीन नाड़ी वाहिनियाँ खुल जाती हैं, जिससे भौतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण से मनुष्य अपना चहुँमुखी विकास पूर्णरूपेण कर सकता है। अतः योग को नाड़ी-शक्ति प्रदायक, उद्दीपक एवं वर्धक कह सकते हैं।

ख - ग्रन्थि प्रणाली

योगाभ्यासी को स्नायु प्रणाली की जानकारी के समान शरीर की दूसरी महत्त्वपूर्ण प्रणाली, ग्रन्थि प्रणाली, की भी जानकारी होनी चाहिए। क्योंकि जहाँ चक्रों की स्थिति है उसी के पास ग्रंथियाँ स्थित होने से इनका परस्पर प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। शरीर के

अंग-विशेष को ग्रन्थि कहते हैं जो कि रस (रासायनिक द्रव) उत्पन्न करते हैं जिससे स्वस्थ शरीर का निर्माण होता है। ये दो प्रकार की हैं – बहिःस्रावी अर्थात् वाहिनीयुक्त एवं अन्तःस्रावी अर्थात् वाहिनीरहित।

बहिःस्रावी ग्रन्थियाँ ऐसे स्राव निकालती हैं जो कि वाहिनियों की सहायता से शरीर के स्वास्थ्य के निर्माण में उपयोगी होते हैं। अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ जो स्राव निकालती हैं वह ग्रन्थि में आवागमन कर रहे खून में मिलकर शरीर के निर्माण एवं नियन्त्रण में उपयोगी होता है।

•प्रथम प्रकरण (शरीर-शुद्धि प्रकरण) के प्रथम अध्याय (शारीरिक विज्ञान) के इस ग्रन्थि प्रणाली नामक द्वितीय खण्ड में हम प्रमुख अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का परिचय देंगे, शेष आवश्यक कुछ अन्तःस्रावी एवं बहिःस्रावी ग्रन्थियों का परिचय पाचन प्रणाली नामक पञ्चम 'ङ' खण्ड में प्रस्तुत करेंगे।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ जिन स्रावों अर्थात् रसों (रासायनिक द्रवों) को उत्पन्न करती हैं; उन्हें हार्मोन कहते हैं। प्रत्येक ग्रन्थि के दो उपविभाग होते हैं – ऊपर के कोणीय आवरण को कॉर्टेक्स एवं शेष भाग को मेड्यूला कहते हैं। कॉर्टेक्स से शक्तिशाली रसों की उत्पत्ति होती है, जिन्हें स्टेराइड्स कहते हैं। अभी तक विभिन्न गुणों से सम्पन्न ३० से भी अधिक स्टेरॉइड्स का पता लगा है। समस्त शारीरिक एवं मानसिक कार्यों पर इनका गहरा प्रभाव पड़ता है। छः प्रमुख अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का चक्रों के साथ सम्बन्ध इस प्रकार है –

पीयूष (पिच्यूटरी) और पीनियल आज्ञाचक्र से सम्बन्धित हैं,

चुल्लिका और उपचुल्लिका विशुद्धि चक्र से सम्बन्धित हैं तथा

थाईमस और अधिवृक्क अनाहत चक्र से सम्बन्धित हैं। इनकी उत्पति कोलेस्ट्राल (चर्बी का एक स्वरूप) नामक रासायनिक तत्त्व से होती है। सभी अन्तःस्रावी ग्रन्थियां दो-दो हैं। अतः एक दोषयुक्त या निष्क्रिय हो जाए तो भी दूसरी कार्य करती रहती है। परिणामतः शारीरिक आवश्यकताओं की आपूर्ति होती है। इन समस्त ग्रन्थियों का परस्पर सम्बन्ध है, कोई स्वतन्त्र नहीं, इसलिए एक में अव्यवस्था हुई तो इसकी प्रतिक्रिया अन्य सब पर होती है।

ख-१ – पीयूष (शीर्षस्थ अथवा पिच्यूटरी) ग्रन्थि

मस्तिष्क के आधार में खोपड़ी के अन्दर स्थित यह मटर के बराबर छोटी ग्रन्थि है। इसका वजन मात्र आधा ग्राम होता है। यद्यपि यह आकृति में छोटी है तथापि समस्त शारीरिक ग्रन्थियों की नियन्त्रक होने के कारण प्रधान एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थि है। जब

शरीर रहस्य

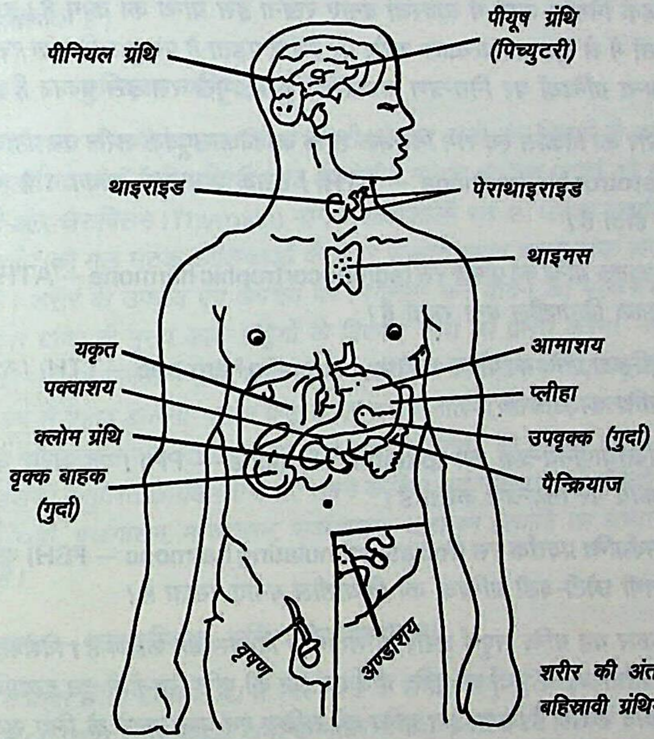

शरीर की अंतःस्रावी एवं बहिस्रावी ग्रंथियाँ

चक्रों की जहाँ स्थिति है, उसी के पास ही ये ग्रंथियाँ स्थित हैं। जैसे–

१. आज्ञाचक्र के पास	पीनियल व पिच्युटरी ग्रन्थि
२. विशुद्धि चक्र के पास	थायराइड–पैराथायराइड ग्रन्थि
३. अनाहत चक्र के पास	थायमस ग्रंथि
४. मणिपुर चक्र के पास	एड्रीनल, लीवर, तिल्ली, पैनक्रियाज (अग्नाशय), गुर्दे।
५. स्वाधिष्ठान चक्र के पास	शुक्र ग्रंथि, डिम्बग्रन्थि।

दूसरी ग्रन्थियाँ काम करना बन्द करने लगती हैं तब यह सक्रिय हो जाती है। जब अन्य कम स्राव देती हैं तो यह अधिक देने लगती है। अतः यह ग्रन्थि अनेकों रसों का निर्माण करती है। सभी अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से शक्तिशाली रसों की उत्पत्ति होती है। उन सबके निर्माण-कार्य में व्यवस्था बनाए रखना इस ग्रन्थि का काम है। इस ग्रन्थि के रसों में से कुछ का प्रत्यक्षतः शरीर पर प्रभाव पड़ता है परन्तु अधिकांश रसों का कार्य अन्य ग्रन्थियों पर नियन्त्रण करना है। कुछ प्रमुख रस इस प्रकार हैं –

(i) शरीर का विकास एवं रोग निरोधक शक्ति का विकासपूर्वक शरीर का पोषक रस (somatotrophic harmone – STH)। इसके अभाव में हल्का दोष भी मृत्युकारक होता है।

(ii) उपवृक्क ग्रन्थि का पोषक रस (adrenocortrophic harmone – ATH) इससे उपवृक्क क्रियाशील बना रहता है।

(iii) चुल्लिका ग्रन्थि का पोषक रस (thyrotrophin harmone – TTH)। यह चुल्लिका ग्रन्थि का उत्प्रेरक है।

(iv) रक्तचापनियन्त्रक रस (pituitrin harmone – PH)। यह शरीर के रक्तसंचार कार्य पर नियन्त्रण करता है।

(v) सर्वग्रन्थि प्रवर्त्तक रस (folliate stimulating harmone – FSH) यह शरीर की सभी छोटी-बड़ी ग्रन्थियों को क्रियाशील बनाए रखता है।

इस प्रकार यह ग्रन्थि संपूर्ण शरीर के सर्वांगीण विकास का कारण है। विशेषतः – कद का घटना-बढ़ना, गुर्दों की पुष्टि, वीर्य एवं रज की पुष्टि, स्तनों में दूध इत्यादि महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। अतः इस ग्रन्थि को सक्रिय एवं पुष्ट करने के लिए सूर्य नमस्कार का दूसरा तथा ग्यारहवां आसन, प्रणामासन, शीर्षासन, सर्वांगासन एवं ध्यान का अभ्यास आवश्यक है।

ख-२ – पीनियल ग्रन्थि

इस ग्रन्थि को अभी तक वैज्ञानिक नहीं समझ पाए हैं। यद्यपि उसके अस्तित्व को स्वीकार करते हैं तथापि इसकी निश्चित क्रियाओं का पता नहीं लगा सके हैं।

योग के अनुसार यह स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर के मध्य की कड़ी है। यह मस्तिष्क के मध्य भाग में पीयूष ग्रन्थि के ऊपर गुफा के आकार वाले छोटे-से छिद्र में स्थित है। इसे सर्वनियन्त्रक ग्रन्थि भी कहते हैं। इससे शरीर की वृद्धि एवं काम ग्रन्थि पर नियन्त्रण होता है। स्वयं-चालित नाड़ी-संस्थान की नियन्त्रक एवं प्रेरक है। मस्तिष्क

में होने वाली विकृतियों से बचाकर सन्तुलित करना इसका मुख्य कार्य है। इसके पोषण एवं सम्यक् कार्य करने हेतु सूर्य नमस्कार की पहली एवं बारहवीं स्थिति, शशांकासन, योगमुद्रा, उष्ट्रासन, शीर्षासन, सर्वांगासन, त्राटक एवं ध्यान का अभ्यास आवश्यक है।

ख-३ – चुल्लिका ग्रन्थि (थाईरॉइड)

स्वर-तन्त्र के समीप श्वास नली के ऊपरी छोर पर दोनों ओर तितली के समान आकार वाली यह छोटी–सी ग्रन्थि है। यह आयोडीन नामक मौलिक पदार्थ को ग्रहण करती है और थैराक्सिन (Thyroxin) नामक शक्तिशाली रस को उत्पन्न करती है, जो कि शरीर की मूल घटक कोशिकाओं के ऊपर साक्षात् प्रभाव व्यावहारिक रूप से डालती है। शरीर के उपचय एवं अपचय पर नियन्त्रण कर यौवन को बरकरार रखती है। इस ग्रन्थि के मुख्य कार्य हड्डियों के विकास कार्य को प्रेरित करना, नाड़ी-संस्थान की संवेदनशीलता में वृद्धि, शरीर के कुछ अंगों पर सक्रिय रूप से एवं कुछ पर निष्क्रिय रूप से प्रभाव डालना, पाचन प्रणाली पर प्रभाव डालना, ऊर्जा के उत्पादन एवं संचार में सहायता करना, नाड़ियों तथा मस्तिष्क के ऊतकों का निर्माण करना इत्यादि हैं। इसकी संतुलित कार्यक्षमता बनाए रखने के लिए सूर्य नमस्कार की पाँचवीं तथा आठवीं स्थिति, भुजंगासन, मत्स्यासन, सर्वांगासन, चक्रासन इत्यादि का अभ्यास आवश्यक है।

ख-४ – उपचुल्लिका ग्रन्थि (पैराथाईरॉइड)

ये बहुत छोटी ग्रन्थियाँ हैं। ये स्वर-तन्त्र के समीप वायु नलिका के दोनों तरफ स्थित हैं। ये पूर्णतः चुल्लिका ग्रन्थियों के भीतर अर्थात् उनसे ढकी होती हैं। रचना एवं कार्य में ये उनसे भिन्न हैं। ये अस्थि के विकास कार्य को प्रेरित करती हैं तथा शरीर में कैल्शियम तथा फॉस्फोरस के वितरण कार्य एवं मात्रा को नियन्त्रित करती हैं। पेशियों एवं स्नायुओं को सक्रिय बनाए रखने में इनका बड़ा हाथ है। इन ग्रन्थियों को संतुलित एवं कार्यशील बनाए रखने के लिए सूर्य नमस्कार की तीसरी, चौथी, नौवीं और दसवीं स्थिति लाभदायक है और हलासन, सर्वांगासन, जालन्धर-बन्ध आदि उपयोगी हैं।

ख-५ – थाईमस ग्रन्थि

इसकी स्थिति हृदय के ऊपर, छाती के बीच में, छाती की हड्डी और गर्दन के मिलने के स्थान के पीछे है। इसमें दो पिण्ड होते हैं। यह शिशुओं में बड़ी होती है। यह स्पष्ट नहीं कि इसे अन्तःस्रावी क्यों मानते हैं। यह शारीरिक विकास कार्य का नियन्त्रण करती है और रोगों से बचाती है। व्यक्ति के बड़े होने के साथ-साथ क्रमशः इसकी

आकृति छोटी होती जाती है। १४ वर्ष तक यह काम-ग्रन्थियों को सक्रिय होने नहीं देती। यह मस्तिष्क के उचित विकास में सहायक है। यह लसिका कोशिकाओं का निर्माण तथा विजातीय द्रव्यों को बाहर करने में सहयोग देती है। सूर्य नमस्कार की छठी स्थिति, शलभासन, उष्ट्रासन उज्जयी प्राणायाम इत्यादि इसको सक्रिय बनाए रखने में लाभदायक हैं।

ख-६ – अधिवृक्क ग्रन्थि (एड्रिनल)

दो छोटी त्रिभुजाकार ग्रन्थियां गुर्दे के ऊपर तथा डायफ्राम से लगी हुई होती हैं। यह सबसे अधिक स्राव छोड़ती हैं। इनका स्राव जीवन रक्षा के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके बिना जीवन संभव नहीं। इसका कॉर्टिसोन नामक हार्मोन सौ से अधिक बीमारियों को ठीक करता है। जैसे कि गठिया से लेकर रक्तविकार तक, कैंसर से लेकर दमा तक को ठीक करने में सहयोगी है। चयापचय (मेटाबोलिज्म) को बढ़ाती है। त्वचा एवं आन्तरिक अंगों की धमनियों को संकुचित करती है। पेशियों तथा हृदय की धमनियों को विकसित करती है। आपातकालीन अवस्था में शरीर को सचेत करके सुरक्षा शक्ति को जाग्रत कर परिस्थिति से निबटने के लिए तैयार करती है। भावों में परिवर्तन लाने में सहयोगी है। इस ग्रन्थि को स्वस्थ एवं क्रियाशील बनाने में सूर्य नमस्कार की सातवीं स्थिति, जानु-शीर्षासन, पश्चिमोत्तानासन, मयूरासन, धनुरासन, सूर्यभेदी और कपालभाती प्राणायाम, अग्निसार क्रिया इत्यादि उपयोगी हैं।

ग – श्वसन प्रणाली

भोजन, पानी और वायु के बिना पृथ्वी के सजीव प्राणियों का उत्तरोत्तर क्रमशः बहुत कम समय तक जीवन चलता है। अतः वायु अर्थात् प्राण जीवन का आधार है। श्वास-प्रश्वास अर्थात् वायु को शरीर के अन्दर लेने और छोड़ने की प्रक्रिया द्वारा जन्म से लेकर मरणपर्यन्त हम सब ग्रहण करते हैं। वायु के सभी अंगों में से "ओषजन" (oxygen) को श्वसन प्रक्रिया के द्वारा प्राप्त कर कोशिकाएं जीवित रहती हैं तथा प्रश्वसन प्रक्रिया से कार्बन-द्वि-ओषिद (Carbon-di-oxide) को बाहर निकालती है। बाह्य वायु की ओषजन का पूर्ण उपयोग धमनियों एवं कोशिकाओं द्वारा होता है। अतः इस क्रिया को ओषदीकरण अथवा जीवन-ज्वाला कहते हैं। इसलिए वायु को नियमित रूप से भीतर खींचने एवं बाहर भेजने के लिए विशेष-संयंत्र रचना आवश्यक है, उसे श्वसन प्रणाली कहते हैं। इस प्रणाली में छः अंग हैं –

१ – नासिका

२ – ग्रसनी } फेफड़ों तक जाते हैं।
३ – स्वर–यंत्र

४ – श्वास नली
५ – श्वास नलिकायें } फेफड़ों में होते हैं।

६ – फेफड़े – (क) बोकिओल्स
(ख) एल्विओलरस

श्वसन प्रणाली

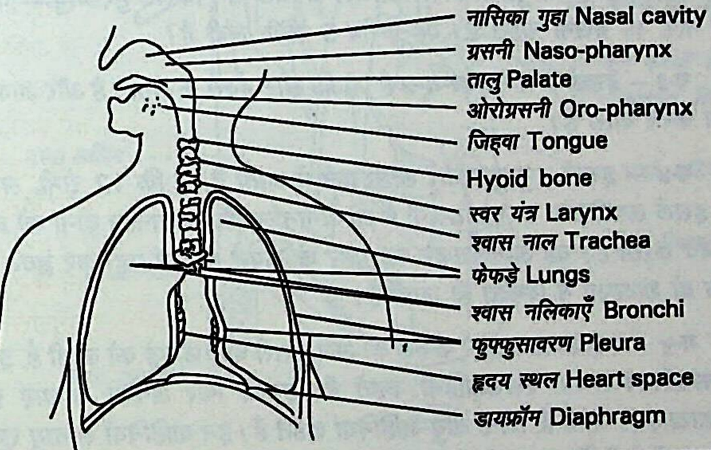

वायु अधिकतर शुष्क, शीतल एवं धूल, धुआं, कीटाणु आदि से युक्त होती है। अतः फेफड़ों में पहुँचने से पूर्व इसे नम या गरम तथा शुद्ध करना आवश्यक है। इसके लिए शरीर में एक नियमबद्ध वायु-शुद्धिकरण प्रणाली है।

ग-१ – सर्वप्रथम वायु का प्रवेशद्वार नासिका है। इसमें छोटे–छोटे केश हैं जिनका रुख बाहर की ओर है। ये वायु को छानकर धूल कणों को भीतर जाने से रोकते हैं। नासिका में एक हड्डी है जिस पर एक मोटे स्पंज के समान नरम लचीली श्लेष्मिक मांसमयी झिल्ली का आवरण है, जिसमें रक्त-संचार की मात्रा अत्यधिक है। यह वायु को नमी अथवा गरमी प्रदान करके शरीर के योग्य तापमान प्रदान करती है।

कुछ शुद्धि से युक्त वायु आगे बढ़कर ग्रसनी द्वारा स्वर-यंत्र, श्वासनाल एवं श्वास-नलिकाओं को पार करते हुए फेफड़ों में प्रवेश करती है। इस मार्ग में श्लेष्मिक

झिल्ली तथा केश के समान रचना होती है जिसे **सिलिया** कहते हैं। इसके अलावा अनेक श्लेष्मिक ग्रन्थियाँ होती हैं जिनसे पतली एवं चिकनी श्लेष्मा तैयार होती है। उनमें सूक्ष्म धूलकण, धुआं एवं कीटाणु चिपक जाते हैं। ये सिलिया प्रति सैकेण्ड १३ से १४ बार आगे एवं पीछे की ओर गति करते हैं। इस क्रिया से श्लेष्मा गले में पहुंचती है और व्यक्ति उसे निगलकर जठर में भेजता है। वहाँ उपस्थित हाईड्रोक्लोरिक एसिड एवं अन्य पाचक रसों के कारण समस्त कीटाणु मर जाते हैं तथा अनावश्यक पदार्थ विसर्जन प्रणाली से बाहर हो जाते हैं।

ग-२ — नाक या मुँह से होकर टॉंसिल के पीछे से निकलते हुए वायु के जाने की नली को **ग्रसनी** कहते हैं। यह करीब 5 सेमी॰ लंबी है।

ग-३ — इसके अन्त में **स्वर-यन्त्र** है जो कि छोटे बक्से के समान है और आवाज पैदा करने वाला है।

ग-४ — इससे वायु गुजरकर **श्वासनाल** में जाती है जो कि 12 सेमी॰ लम्बी है। इसके ऊपरी छोर पर एक ढकनी है जो अन्ननाल और श्वासनाल दोनों को क्रम से बंद करती है। यह आगे जाकर वक्ष गुहर के ऊपरी भाग में पहुंचकर हृदय के पास दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है।

ग-५ — एक शाखा दाहिने फेफड़े को और दूसरी बायें फेफड़े को जाती है, इन्हें **श्वासनलिका** अथवा **श्वासवाहिनी** कहते हैं। इनकी फिर अनेकों शाखाएं एवं उपशाखाएं हो जाती हैं, जिन्हें **वायु-वाहिनियां** कहते हैं। इन वाहिनियों से वायु सूक्ष्म नलिकाओं से निर्मित **वायु-कोशों** में प्रवेश करती है। वायु-कोशों की आकृति मधुमक्खी के छत्ते की भाँति होती है। प्रत्येक वायु-कोश **केशवाहिनियों** से ढका होता है जो कि इस शरीर में स्थित सबसे छोटी रक्त नलिकाएं हैं। इनके माध्यम से ही ओषजन रक्त-संस्थान की रक्त कोशाओं में पहुंचती है। साथ-साथ जहरीली गैसें प्रश्वास द्वारा फेफड़ों से बाहर निकल-कर शरीर के बाहर हो जाती हैं।

ग-६ — **फेफड़े** साधारणतः तीन लीटर वायु रखने में समर्थ होते हैं जबकि हम एक मिनट में १५ श्वास लेते हैं और प्रत्येक श्वास में लगभग आधा लीटर वायु ग्रहण करते हैं। फेफड़ों को फुफ्फुस भी कहते हैं। फेफड़ों की आकृति **वक्षस्थल** की भाँति होती है जो कि शंखाकार अर्थात् नीचे चौड़ी एवं ऊपर संकरी होती है। वक्षस्थल का आरम्भ **श्वासपटल** से होता है, जो गुम्बज की आकृति की स्नायविक रचना है। दोनों फेफड़े हृदय द्वारा अलग किए जाते हैं। प्रत्येक फेफड़ा अपना कार्य करने में स्वतंत्र है। दाहिना फेफड़ा तीन भागों में विभक्त है जबकि बायां फेफड़ा दो भागों में विभक्त है। दोनों फेफड़ों की आन्तरिक सतह पर नरम तथा चिकनी झिल्ली का आवरण होता है, जिसे **फुफ्फुसावरण** कहते हैं। इसी के कारण फेफड़ों के विस्तार तथा हृदय और

श्वसन प्रणाली

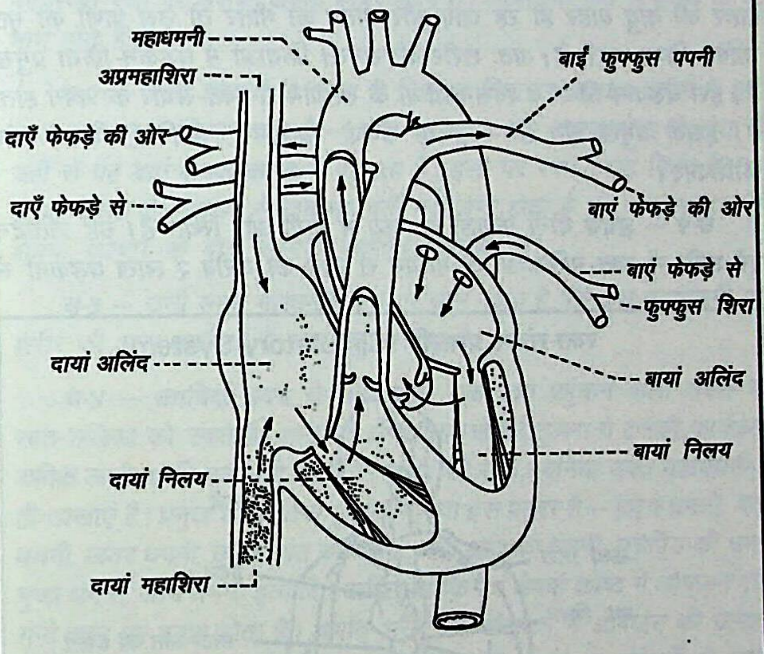

उसके संकुचन की क्रिया होती है। पसलियों के पिंजरे या हृदय गुहा एवं उदर के अधिकतम आकुंचन से दीर्घ प्रश्वास क्रिया की जाती है। इससे अतिरिक्त मात्रा में वायु का निकास होता है जिसे रेचक कहते हैं। दीर्घ श्वास लेकर हृदय गुहा और उदर के अधिकतम विकास से वायु भरने को पूरक कहते हैं। इस रेचक-पूरक क्रियाओं को श्वसन-क्रिया कहा जाता है। इसे दो विधियों से किया जाता है – प्रथम केवल पसलियों का बाहर व ऊपर की ओर विस्तार और दूसरे उदर की ऊपरी दीवार का बाहर की ओर विकास द्वारा। इन दोनों विधियों में हृदय गुहा का विस्तार होता है।

इस तरह हम श्वसन-प्रश्वसन प्रक्रिया से ओषजन प्राप्त कर तथा कार्बन-दि-ओषद को बाहर फेंककर जीवित रहते हैं। इस प्रक्रिया एवं प्रणाली को स्वकार्यक्षम तथा संतुलित रखने के लिए प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है।

घ - रक्त-संचार प्रणाली

यद्यपि जीवन का आधार प्राण है तथापि हृदय की गति अर्थात धड़कन रुक जाए, बाहर की वायु बाहर ही रह जाए और भीतर की भीतर तो उस प्राणी को मृत घोषित किया जाता है। अतः शरीर की समस्त क्रियाओं में धड़कन-क्रिया प्रमुख है। इस धड़कन-क्रिया व श्वसन-क्रिया के सहयोग से रक्त-संचार का कार्य होता है। इसके प्रमुख अंग हैं – हृदय, फेफड़े, महाधमनी, धमनियां, शिराएं और कोशिकाएं।

घ-१ – हृदय दोनों फेफड़ों के मध्य में बायीं ओर स्थित है। यह प्रतिदिन पूरे शरीर में रक्त-नलिकाओं के माध्यम से रक्त को करीब २ लाख धड़कनों से

रक्त-संचार प्रणाली (Circulatory System)

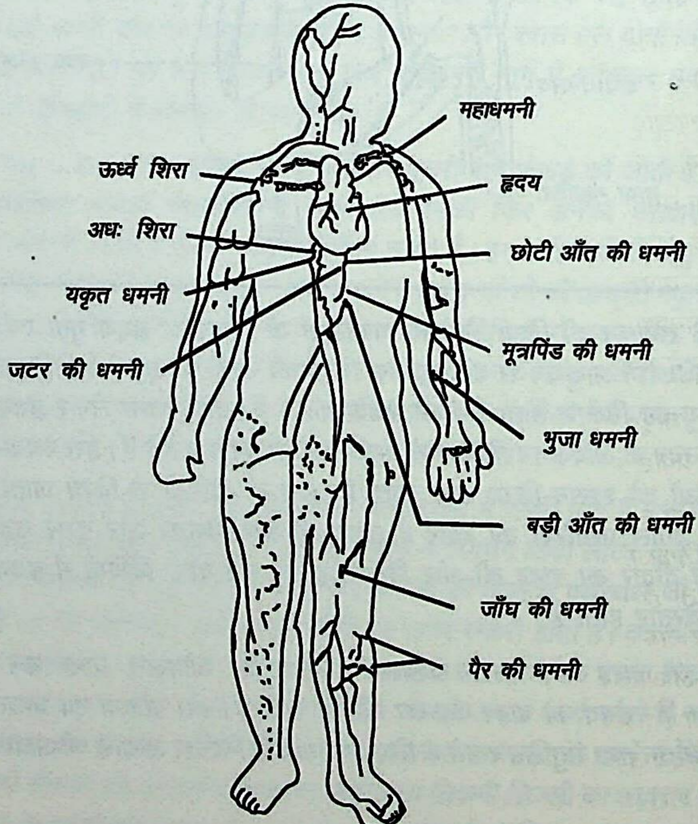

प्रवाहित करता है। यह एक अत्यन्त विलक्षण सूक्ष्म स्नायविक पिचकारी है जो जन्म से मरण-पर्यन्त निरन्तर धड़कन क्रिया करती रहती है। इसकी स्नायविक दीवारों पर स्थित रेशों पर उसकी क्षमता निर्भर होती है। आन्तरिक रूप से हृदय के चार भाग होते हैं।

घ-२ – रक्त फेफड़ों से आता है जिसका विभाजन समस्त शरीर में हृदय द्वारा इस प्रकार किया जाता है – रक्त का प्रवेश **बाएं ग्राहककोष्ठ** में होता है। यहाँ से वह **बाएं क्षेपक कोष्ठ** में पहुँचता है। इसी पर रक्त प्रवाह निर्भर है। बाएं क्षेपक कोष्ठ के संकुचन से जब मध्यवर्ती पर्दा बन्द होता है तब बाएं ग्राहक एवं क्षेपक कोष्ठों के बीच सम्पर्क स्थापित होता है।

घ-३ – उसी समय महाधमनी का द्वार खुल जाता है और इस **महाधमनी** द्वारा शरीर की अन्य धमनियों में रक्त पहुंच जाता है।

घ-४ – **धमनियां** हृदय से कोशिकाओं तक रक्त पहुंचाने वाली सबसे बड़ी रक्त-नलिका को कहते हैं। शरीर के अन्य स्नायुओं की तुलना में इसकी कार्यक्षमता अधिक लम्बी अवधि तक बनी रहती है। शरीर की सभी धमनियां उक्त महाधमनी की ही शाखाएं हैं। प्रमुख शाखाओं में मुख्य धमनियां इस प्रकार हैं – हृद्य धमनी, यकृत धमनी, जठर धमनी, छोटी आंत की धमनी, बड़ी आंत की धमनी, मूत्रपिंड की धमनी, भुजा धमनी, जांघ धमनी इत्यादि। **दाहिने ग्राहक एवं क्षेपक कोष्ठ** में ओषजन रहित गन्दे खून का प्रवाह होता है। अर्थात् शरीर की कोशाओं में ओषजन को जमाकर रक्त वापस हृदय के दाहिने भाग में पहुंचता है। यहां से फेफड़ों में जाकर श्वसनप्रणाली-खण्ड में उक्त प्रक्रिया से वायु के दूषित तत्त्वों के निष्कासन के साथ रक्त में विद्यमान दोषों को भी दूर किया जाता है।

घ-५ – जिस प्रकार शुद्ध रक्त प्रवाहिका **धमनियां** हैं, उसी प्रकार अशुद्ध रक्त को प्रवाह करने वाली नलियों को **शिरा** कहते हैं।

घ-६ – **कोशिकाएं** सूक्ष्म होती हैं। ये ऊतकों के भीतर व्याप्त होकर शरीर की कोशिकाओं को शुद्ध रक्त प्रदान करती हैं। रक्त में विद्यमान लाल कणिकाएं दो काम करती हैं – हृदय से कोशिकाओं तक आते वक्त ओषजन वहन कर ले जाती हैं और जब लौटती हैं तब वे कोशिकाओं में निकास के योग्य कार्बन-द्वि-ओषद आदि को ले आती हैं। अतः रक्त संचार का उक्त पूर्ण कार्य दो तन्त्रों में विभक्त होकर संपन्न होता है। प्रथम फेफड़ों में रक्त संचारण अर्थात् हृदय से फेफड़ों तक और फेफड़ों से हृदय तक। दूसरा सर्वांगीण रक्त-संचार – अर्थात् धमनियों एवं शिराओं के द्वारा पूरे शरीर में रक्त का आवागमन। संपूर्ण रक्त-संचार क्रिया आधारभूत हृदय-गति की दर विशेष पेशीजालों से बनी एक छोटी रचना द्वारा नियन्त्रित रहती है। इस संयंत्र

से प्रसारित संदेश से संपूर्ण स्नायविक तंतुओं के द्वारा समस्त शरीर एवं शरीर के अंग विशेषों की आवश्यकताओं पर शासन किया जाता है।

इस रक्त-संचार प्रक्रिया के निरन्तर चलते रहने के कारण धमनियों एवं नाड़ियों में तनाव बना रहता है जिसका निवारण प्राणायाम एवं शिथिलीकरण प्रक्रियाओं से किया जाता है।

ङ़ – पाचन प्रणाली

उक्त चारों प्रणाली का स्वास्थ्य एवं शक्तिशालिता पाचन प्रणाली पर निर्भर है। प्रत्यक्ष रूप से स्थूल पदार्थों एवं तरल पदार्थों का जो हम लोग भोजन करते हैं वह तुरन्त मांसादि रूप में परिवर्तित नहीं होता। एक विशेष प्रक्रिया द्वारा यह कई पदार्थों में परिवर्तित होता है, जिनका शोषण रक्त प्रवाह से होकर संपूर्ण शरीर में वितरण होता है। इस प्रक्रिया को **पाचन** कहते हैं। इसके लिए प्रयुक्त आहारनाल जो कि मुख से गुदा तक कुल नौ मीटर लम्बा है उसी को ही पाचन प्रणाली अथवा पाचन-संस्थान कहते हैं। इसके प्रमुख अंग इस प्रकार हैं – मुख, लारीय ग्रन्थियां, ग्रसनी, ग्रासनाल, आमाशय, पक्वाशय, यकृत, अग्नाशय, पित्ताशय, छोटी आंत, अंधान्त्र, उपान्त्र, बड़ी आंत, मलाशय और मलद्वार।

मुँह में भोजन के पहुंचते ही पाचन आरम्भ होता है। पाचन की प्रथम क्रिया है चबाना अर्थात् अन्न के छोटे-छोटे टुकडे बनाना। इसी समय मुँह में विद्यमान १२ छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ अपने स्राव को छोड़कर अन्न में मिलती हैं। वे हैं – ६ **लारोत्पादक ग्रन्थियाँ** (salivary), २ कान के नीचे व आगे **पैरोटिड**, २ जबड़े के नीचे **सबमैन्डीब्यूलर** और २ जीभ के नीचे **सबलिंगवल**। यह सब टायलिन नामक विशेष पाचक रस का स्राव करती हैं। अब चूर्णित अन्न लार रसों के साथ **ग्रसनी** में जीभ द्वारा धकेला जाता है। तत्पश्चात् **ग्रासनली** से अन्नपिण्ड आमाशय में पहुंचता है। **आमाशय** को ही जठर भी कहते हैं जो कि एक लम्बी व पोली स्नायविक थैली है जिसमें उचित मात्रा में अन्न धारण करने की शक्ति है। यह एक साधारण अवरोधक (ढकनी) द्वारा ढका रहता है। इसमें जठर रस (गैस्टिक रस) नामक पाचक रस द्वारा अन्न को मथ दिया जाता है। जठर रसों में पेप्सिन, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल तथा रेगिन प्रमुख हैं। इनमें से प्रथम दो जीवन-सत्त्व को विभाजित करते हैं और अन्त वाला तरल पदार्थों को ठोस रूप देता है जैसे दूध को दही का रूप देना।

जल एवं कुछ अन्य तरल पदार्थ ऐसे हैं जो कि आमाशय में कुछ क्षण मात्र रहकर सीधे **पक्वाशय** (छोटी आंत का प्रथम भाग) में पहुंच जाते हैं। जठर में रहे ठोस पदार्थ को रस स्वरूप में परिवर्तित कर पक्वाशय में पहुंचाने के लिए सबसे शक्तिशाली क्रिया

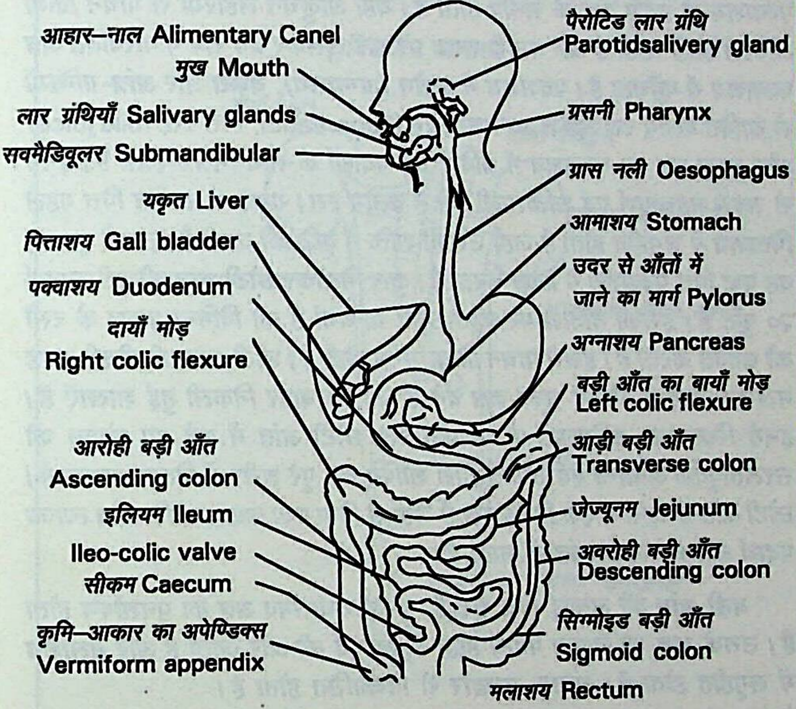

पाचन तंत्र का आरेखी चित्रण

(1) लार ग्रन्थियाँ (Salivary glands)
(2) ग्रसनी (Pharynx)
(3) ग्रास नली (Oesophagus)
(4) आमाशय (Stomach)
(5) पक्वाशय (Duodenum)
(6) यकृत (Liver)
(7) अग्नाशय (Pancreas)
(8) पित्ताशय (Gall Bladder)
(9) छोटी आँत (Small Intestine)
(10) अंधान्त्र (Caecum)
(11) उपान्त्र (Appendix)
(12) बड़ी आँत (Large Intestine)
(13) मलाशय (Ractum)
(14) मलद्वार (Anus)

पाचक रस छोड़ने वाली ग्रंथियाँ –

6 मुँह में – सैलीवरी ग्रंथियाँ (Salivary Glands)
2 कान के नीचे व आगे – पैरोटिड (Parotid Glands)
2 जबड़े के नीचे – सबमैडिब्यूलर (Submandibular)
2 जीभ के नीचे – सबलिंगवल (Sublingval)

पक्वाशय के प्रवेश द्वार के समीप होती है। यहाँ आकुंचन लहरियों से पाचन क्रिया अविरल होती रहती है और समय-समय पर द्वार खुलकर द्रव रूप में परिवर्तित अन्न पक्वाशय में पहुँचता है। पक्वाशय में **क्लोम (अग्नाशय)**, **यकृत** और **आंत्र**-ग्रन्थियों से स्रावित क्लोम रस अथवा अग्नाशयी रस (Pancreatic), पित्त रस, (bile juice) और आन्त्र रस का पक्वाशय में प्रविष्ट द्रव पदार्थों के साथ मिश्रण होता है। इनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण एवं शक्तिशाली रस है क्लोम रस। यकृत से स्रावित पित्त पहले **पित्ताशय** में संगृहीत होता है जहाँ उसकी शक्ति में वृद्धि की जाती है। उसके पश्चात् वह पुष्ट पित्त पक्वाशय में प्रवेश करता है। कुल मिलाकर **छोटी आंत** की पूरी लम्बाई २० फुट है। इसकी दीवारों पर बहुत छोटी ग्रन्थियां हैं जो विभिन्न प्रकार के रसों को स्रावित करती हैं। इससे पाचन क्रिया सुगम होती है। छोटी आंत की भीतरी सतह मखमल जैसी है जिसमें सूक्ष्म कक्ष बने हैं, जो कि बाहर निकली हुई शाखाएं हैं। इनमें स्थित रक्त-नलिकाओं में प्रवाहित रक्त छोटी आंत में पचे हुए भोजन को सरलतापूर्वक अन्धान्त्र एवं उपान्त्र द्वारा शोषित कर पूरे शरीर में वितरण करता है। छोटी आंत के अन्त में एक विशेष द्वार है जहाँ से बिना पचा तथा अशोषित शेष त्याज्य पदार्थ धीरे-धीरे बड़ी आंत में जाता है।

बड़ी आंत की लम्बाई पांच फुट है। इसमें यथासंभव अन्न का पुनर्शोषण होता है। उसके बाद जो त्याज्य पदार्थ होता है बह गुर्दे की ओर जाता है और **मलाशय** में संगृहीत होता है। अन्ततः **मलद्वार** से निष्कासित होता है।

भोजन की इस लम्बी यात्रा को सुचारु रूप से चलाए रखने के लिए षट्कर्म, आसन, प्राणायामादि का अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। यह प्रणाली स्वस्थ है तो पूरा शरीर स्वस्थ रहेगा।

भोजन की संपूर्ण क्रिया लगभग १७-१८ घंटों में पूरी होती है। उस दौरान भोजन का निम्न चार भागों में मुख्य रूप से विभाजन कर शरीर में वितरण किया जाता है। वे हैं – कार्बोज एवं चर्बी, जीवन सत्त्व, खनिज लवण और विटामिन।

च - विसर्जन प्रणाली

शरीर के पोषण में पाचन प्रणाली जितनी महत्त्वपूर्ण है उससे भी अधिक विसर्जन प्रणाली महत्त्वपूर्ण है। भोजन को पचाने के लिए जो विभिन्न प्रकार के अम्लादि मिलते हैं उनका अपना कार्य भोजन को पचाने के बाद उनका बाहर निकलना अति आवश्यक है, अन्यथा वे शरीर के लिए नाशक होंगे। निकास का यह महान् कार्य गुर्दों से होता है।

च-१ – गुर्दे डायफ्रॉम के नीचे कटिरेखा के ठीक ऊपर व पीछे की ओर शरीर

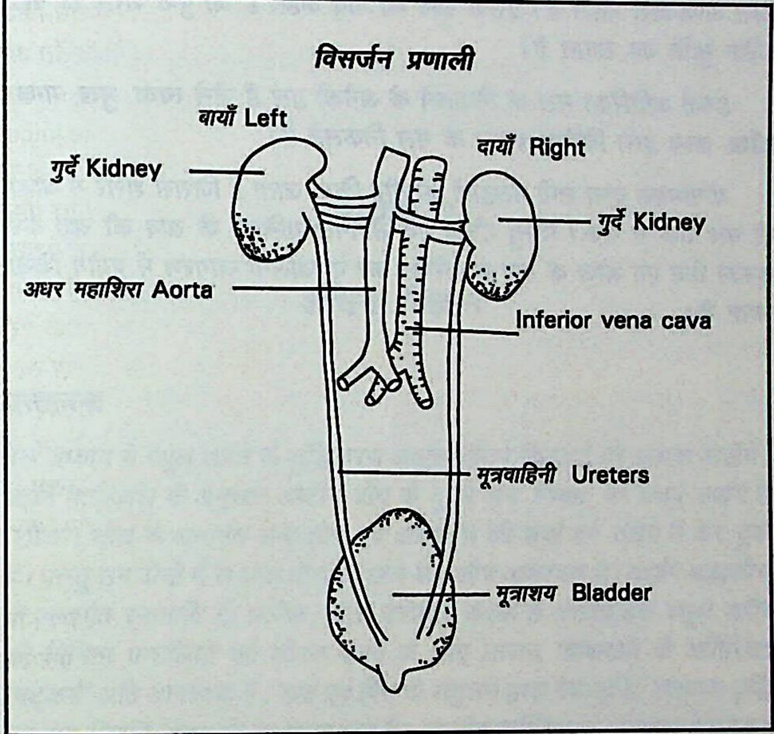

की मध्य रेखा के दोनों ओर होते हैं। दिन भर में दो बार शरीर के पूरे रक्त को ये छानते हैं। ये केवल रक्त में विद्यमान मल – यूरिक एसिड के रूप में यूरिया इत्यादि को पेशाब के रास्ते से बाहर निकालते हैं और रक्त में विद्यमान पोषक पदार्थ जैसे प्रोटीन, विटामिन, एमिनो एसिड, लाल कण, ग्लूकोज एवं हार्मोन्स को वापस रक्त के साथ शरीर को लौटाते हैं। गुर्दे रक्त को न ज्यादा अम्लीय न ज्यादा क्षारीय होने देते हैं। लाल कणों के निर्माण में सहयोग देना तथा पानी की मात्रा का सन्तुलन बनाए रखना इनका अतिरिक्त कार्य है। अपने कार्य को करने में गुर्दे मूत्रवाहिनी, मूत्राशय एवं मूत्रमार्ग (लिंग व योनि) का सहयोग लेते हैं।

च-२ – पौरुष ग्रन्थि (prostate glands) मूत्राशय के नीचे है जिसके बीच से मूत्रमार्ग निकलता है। यह ग्रन्थि ऊतक एवं अनैच्छिक पेशियों से निर्मित है। इसका स्राव शुक्राणुओं के लिए चिकनाई पैदा करता है। यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थि है। इसके असंतुलन से शरीर धीरे-धीरे कमजोर एवं नपुंसक होने लगता है।

च-३ – सेमिनल ग्रन्थि – यह मूत्राशय के पीछे दो थैली जैसी आकृति में है

जिसे अण्डकोश कहते हैं। इसके स्राव को वीर्य कहते हैं जो पुष्ट शरीर ही नही बल्कि मुक्ति का साधन है।

इनके अतिरिक्त मल के निकलने के अनेकों द्वार हैं जैसे त्वचा, मुख, नाक, आँख, कान द्वारा विभिन्न प्रकार के मल निकलते हैं।

योगाभ्यास द्वारा सभी मलद्वारों को तीव्र किया जाता है जिससे शरीर में थोड़ा भी मल रुक न सके। किन्तु पौरुष एवं सेमिनल ग्रन्थियों के स्राव की रक्षा कर उनको तेज एवं ओज के रूप में परिणत कर कुण्डलिनी जागरण में प्रयोग किया जाता है।

अध्याय २

शोधन विज्ञान

प्रस्तावना

इस अध्याय में स्थूल शरीर के शुद्धिकरण अर्थात् शोधन क्रियाओं पर प्रकाश डालेंगे। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार अष्टांग योग के दूसरे अंग *'नियम'* का प्रथम उपांग है *"शौच"*। शौच के अन्तर्गत अन्तःशौच एवं बाह्यशौच की चर्चा हम संक्षेप में कर चुके हैं। परन्तु उन दोनों में से अन्तःशौच से पहले बाह्यशौच आवश्यक है। यद्यपि बाह्यशौच के अन्तर्गत स्नानादि तो प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन करता है तथापि इस स्थूल शरीर की विभिन्न प्रणालियों का शोधन करने के लिए आसन, प्राणायाम के अतिरिक्त *"षट्कर्म"* अति आवश्यक है। कफ एवं पित्त के संतुलन द्वारा देह-शुद्धि, स्वास्थ्य-वृद्धि एवं रोग-निवृत्ति "षट्कर्म" का मुख्य फल है। *हठयोग प्रदीपिका* के अनुसार वे षट्कर्म हैं —

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट् कर्माणि प्रचक्षते ।।
(२२)

अर्थात् नेति, धौति, नौलि, बस्ति (यौगिक एनिमा), कपालभाति और त्राटक।

हठ शब्द 'हं' सूर्यबीज और 'ठं' चन्द्रबीज से उत्पन्न है। ये सृष्टि के धनात्मक एवं ऋणात्मक दो धाराओं के प्रतीक हैं जिनका इस शरीर में मानसिक शक्ति प्रधान इड़ा नाड़ी एवं प्राणशक्ति प्रधान पिंगला नाड़ी, क्रमशः बाईं और दाहिनी नासिका छिद्र में प्रवाहित प्राणवायु से लक्षित है। इन दोनों में संतुलन लाना ही हठयोग है। इस संतुलन के परिणामस्वरूप प्राण का प्रवाह सुषुम्ना नाड़ी में होने लगता है। यहीं से मानव-चेतना का विकास आरम्भ होता है। योग की समस्त शाखाओं का उद्देश्य यही है।

इस अध्याय में षट्कर्मों को क्रम से छः खण्डों में विचार करेंगे। (क) नेति, (ख) धौति, (ग) नौलि, (घ) बस्ति, (ङ) कपालभाति और (च) त्राटक।

नेति

नेति नासिका प्रदेश के शुद्धिकरण की विधि है। इसे अनेक प्रकार से किया जाता है। जैसे जलनेति, सूत्रनेति, रबरनेति, तेल/घृतनेति, दूधनेति, अमरोलिनेति इत्यादि।

(१) सूत्रनेति

तैयारी – सूत्र का अर्थ है सूत, डोरी या धागा। परम्परा यह है कि आधे हाथ लम्बे एक सूती धागे को मोम से कड़ा करके प्रयोग किया जाता है। किन्तु आजकल बनी-बनाई विशेषरूप से तैयार की गई डोरी अथवा रबर की पतली नलिका (कैथेटर) जो कि बाजार में उपलब्ध है, का प्रयोग किया जाता है।

विधि – सूत्रनेति को पहले शुद्ध जल में भिगोकर रखें व अच्छी तरह धो लें। उकडूं बैठ जाएं। सूत्रनेति के पतले छोर को दाहिने हाथ के अंगूठे एवं तर्जनी अंगुली से पकड़ें। अब जिस नासा-छिद्र से श्वास आ-जा रहा हो उसकी दीवार के सहारे सूत्रनेति से नासा-छिद्र अर्थात् नथुने में डालकर मुँह से निकालकर एक हाथ से एक छोर को और दूसरे हाथ से दूसरे छोर को खींचकर आगे-पीछे आराम से करें। इसी तरह दूसरे नासा-छिद्र से भी करें। प्रत्येक नासा-छिद्र में ३०-५० बार आगे-पीछे करना चाहिए। नासिका में डालने एवं निकालने की क्रिया को सावधानी के साथ धीरे-धीरे करें। जबरदस्ती अथवा जल्दबाजी न करें।

सूत्रनेति

लाभ – इस नेति से कण्ठ से लेकर मस्तिष्क तक की सभी नसें शुद्ध होती हैं। आँख, नाक एवं कान के सभी दोष दूर होते हैं। क्योंकि प्रदूषणादि अनेकों कारणों से जो मैल (धूल, धूआँ, विषैली गैसों का मल, कफ, मांसाधिक्य इत्यादि) नासा-छिद्र में जमा हुआ रहता है उसे नेति क्रिया से बाहर निकाला जाता है। अनेकों रोग जैसे बहरापन, टांसिल, साइनस, डिप्थीरिया, खांसी, दमा, कण्ठमाला, नाक बहना, कफावरोध, सिरदर्द, मोतियाबिन्द आदि ठीक हो जाते हैं और नेत्र ज्योति बढ़ती है। नासा-छिद्रों के स्वच्छ होने से श्वसन-क्रिया

संतुलित रहती है फलस्वरूप शरीर की सभी प्रणालियां ठीक रहती हैं।

(२) जल नेति

सूत्रनेति से मल उखड़ने के पश्चात् उसको धोकर बाहर निकालने का कार्य जलनेति करती है।

तैयारी — जलनेति की प्रमुख आवश्यक सामग्री है एक विशेष प्रकार का लोटा जिसे नेति लोटा कहते हैं जो कि तांबा, पीतल, स्टील अथवा प्लास्टिक (आजकल प्रचलित) का होता है। गर्मियों में ताजा पानी एवं सर्दियों में कुनकुना (कोसा) पानी जो कि रक्त-ताप के समान हो एवं नासिका से प्रवाहित होने लायक हो। एक चाय चम्मच नमक प्रति आधा लीटर पानी में घोलकर छान लें।

विधि — लोटे में पानी भरकर उकड़ूं बैठें। जिस नासा-छिद्र में श्वास वेग से चल रहा हो उसमें लोटे की टोंटी को डालें। अब उसी ओर का घुटना खड़ा करें और उस घुटने पर जिस हाथ की हथेली में लोटा है उस हाथ की कोहनी को रखें। सिर को धीरे-धीरे दूसरी ओर झुकाते हुए दूसरे पैर के घुटने को जमीन की ओर झुकाएं, आराम एवं संतुलित स्थिति में दूसरे हाथ की कोहनी को नीचे वाले घुटने पर रखकर उस हाथ की हथेली से कनपटी को थाम लें। अब मुँह खोलकर श्वास-क्रिया शुरू करें, साथ-साथ नासिका से पानी को बहने दें। पानी का प्रवाह एक छिद्र से होकर दूसरे से स्वतः निकलेगा, आपको इसके लिए कुछ नहीं करना पड़ेगा। यही क्रिया दूसरे नासा-छिद्र से भी करें।

सावधानी — भूल से भी इस दौरान श्वास को नाक से न लें, केवल मुँह से लेते रहें।

दोनों नासिका से जल नेति कर लेने के बाद धीरे-धीरे मुँह से श्वास लेकर पेट भर लें फिर मुँह बन्द कर नाक से श्वास छोड़ें। इस प्रकार पांच-छः बार करें। इस प्रक्रिया को आवश्यकता के अनुसार दो-तीन बार कर सकते हैं।

नाक में पानी का अंश न रह जाए इसके लिए दोनों पैरों को परस्पर समीप (सटाकर

जल नेति

नहीं अपितु थोड़ी दूर) रखते हुए खड़े हो जाएं और दोनों हाथ पीछे बांध लें। अब हाथ को पीछे उठाते हुए कमर से सामने की ओर झुकिए किन्तु सर को उठाए रखिए। आधा मिनट इस स्थिति में रहकर पांच-छः बार धौंकनी के समान मुँह से श्वास लेकर नाक से छोड़ें। पुनः सीधे खड़े हो जाएं। इस प्रकार ५-६ बार करें। तत्पश्चात् सीधे खड़े होकर एक नाक को बन्द कर दूसरे से १५-२० बार तीव्र गति से श्वसन क्रिया करें। यही क्रिया दूसरी नाक से भी करें। पुनः दोनों नासिका से एक साथ करें।

लाभ — सूत्रनेति में कहे सभी लाभ के अतिरिक्त इससे क्रोध पर नियन्त्रण होता है, सुस्ती दूर हो कर ताजगी आती है, आज्ञा-चक्र के जागरण में सहायक है और दृष्टि-दोष को दूर करती है।

(३) दूधनेति

दूध को नाक से पीने की प्रक्रिया को दूधनेति (दुग्ध-नेति) कहते हैं। इसे सूत्रनेति के बाद करें।

विधि — टोंटीदार नेति लोटे से पूर्ववत् कोसा दूध को एक नाक से लेकर पीना है। ध्यान रखें ऊपर की नसों में न चढ़े, अतः थोड़ा पीछे झुककर पिएं। इसी प्रकार से दूसरी नासिका से भी पिएं।

लाभ — रक्तचाप, हृदयरोग, टी.बी., सफेद बाल का रोग इत्यादि में लाभकारी है।

सावधानी — वात प्रकृति वाले सोंठ डालकर दूध को पकाकर ठंडा करके प्रयोग करें।

(४) अन्य नेति [*तेल, घृत, बादामरोगन व शिवाम्बु (पेशाब) नेति*]

इन नेतियों के प्रयोग से मस्तिष्क, बालों एवं श्वसन प्रणाली सम्बन्धी अनेकों रोग दूर होते हैं।

इनमें से तेल (सरसों का अथवा अन्य), गोघृत और बादाम रोगन की नेति करने की प्रक्रिया अत्यन्त सरल है। किसी शुद्ध ड्रापर से इनकी कुछ बूंदों को दोनों नासिका छिद्र में डालकर जोर से श्वास खींच लें। इसे प्रातः जलनेति के बाद अथवा रात्रि को सोते वक्त किया जा सकता है।

शिवाम्बु नेति करने की विधि जलनेति के समान ही है।

ध्यान रहे इन नेतियों का प्रयोग बिना किसी योग्य गुरु व चिकित्सक की देखरेख के न करें।

धौति

मुँह से गुदाद्वार तक की संपूर्ण अन्न-नलिका के शुद्धिकरण की प्रक्रिया को धौति कहते हैं। इसमें नेत्र, कर्ण, दाँत, जिह्वा एवं खोपड़ी की सफाई की सरल विधियां शामिल हैं। धौति शब्द का अर्थ ही है धोना, इसलिए शरीर के शुद्धिकरण की सामान्य क्रिया को धौति कह सकते हैं। यह कार्य १२ प्रकार की क्रियाओं से पूरा किया जाता है। वे हैं —

१. दन्त-धौति	७. वस्त्र-धौति
२. नेत्र-धौति	८. वमन-धौति
३. जिह्वामूल-धौति	९. वारिसार-धौति अथवा शङ्खप्रक्षालन
४. कर्ण-धौति	१०. मूल-धौति
५. कपाल-धौति	११. वातसार-धौति
६. हृदय-धौति	१२. वह्निसार-धौति

(१) दन्त धौति

दाँतों के स्वास्थ्य एवं पाचन की वृद्धि के लिए यह उपयोगी है। दाँतों की सफाई के लिए नीम या कीकर का दातुन श्रेष्ठ साधन है। पहले दातुन को चबाकर ब्रश जैसे बनाकर दाँतों के आगे-पीछे ऊपर-नीचे खूब घुमाकर सफाई करनी चाहिए। कत्थे का चूर्ण या अन्य कोई आयुर्वेद शास्त्रानुसार तैयार चूर्ण का प्रयोग किया जा सकता है। स्वयं यह सस्ता मंजन बना लें — फिटकरी को पीसकर तवे पर रखकर मंद आँच पर भून लें। छः चम्मच पिसे हुए लाहौरी नमक में एक चम्मच फिटकरी चूर्ण, थोड़ा-सा सरसों का तेल मिलाकर रख लें। इस मंजन से रोज दाँतों को साफ करें।

ध्यान रखें कि मंजन करने के बाद अंगुलियों से मसूढ़ों की मालिश अवश्य करें।

(२) नेत्र-धौति

मुँह में पानी भरकर आँखों में जल से छीटें लगाएं। आईकप से आँख खोलकर कम से कम तीन बार धोएं। सादा ताजे पानी (सर्दियों में कोसा पानी) अथवा त्रिफला के पानी को कपड़े में छानकर भी इस क्रिया के लिए प्रयोग किया जा सकता है। इससे आँखों के कई रोग दूर होते हैं।

(३) जिह्वामूल-धौति

दातुन की छाल को निकालकर दातुन को फाड़कर उससे जीभ को साफ करें। आजकल बाजार में उपलब्ध (टंगक्लीनर) से साफ किया जा सकता है। अन्त में तर्जनी, मध्यमा एवं अनामिका अंगुलियों को गले में डालकर जीभ की जड़ तक को साफ करना चाहिए। ध्यान रखें अंगुलियों के नाखून कटे हुए एवं साफ होने चाहिए। इससे कफादि मैल भी साफ होगा।

(४) कर्ण-धौति

सदा अंगुलियों के नाखून काटकर रखें। क्रमशः तर्जनी, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों से कर्णछिद्र को साफ करना चाहिए अथवा बाजार में उपलब्ध तांबे या चाँदी के कर्ण-शोधिनी का प्रयोग किया जा सकता है अथवा दोनों छोर में रूई लगी हुई कड़ियों (ईयर स्टिक्स) का उपयोग करें। इससे बहरापन आदि दोष नहीं होंगे।

(५) कपाल-धौति

यह स्नान के वक्त करने की क्रिया है। खोपड़ी के मध्य भाग को हाथ के अंगूठे, अंगुलियों एवं हथेली से क्रमशः रगडें। इससे पूरे शरीर पर नियन्त्रण होता है और कफ-दोष शान्त होता है। दमे के रोग एवं टी.बी. में अत्यन्त उपयोगी है।

(६) हृदय-धौति

यह क्रिया हृदय देश में स्थित अंगों विशेषतः श्वास-नली एवं अन्न-नलिका के शुद्धिकरण की है। इसे दो प्रकार से किया जाता है — दण्ड से अथवा वस्त्र से।

दंड-धौति क्रिया के लिए विशेष रूप से तैयार किए गए बेंत के दण्ड अथवा केले के पौधे के मध्य भाग में स्थित पतले नरम दण्ड का प्रयोग किया जाता है। इसका व्यास आधा इंच और लम्बाई दो फुट होनी चाहिए। जितना लचीला हो उतना ही अच्छा है। धीरे-धीरे (बिना झटके के) गले में से होते हुए दण्ड को जठर तक पहुँचाना चाहिए। तत्पश्चात् उसे बाहर निकालें। इस अभ्यास से श्लेष्मा, कफ, अम्लता तथा श्वास-नलिका के सामान्य दोष दूर होते हैं। इस क्रिया को वमन-क्रिया के पश्चात् करना अच्छा माना गया है।

(७) वस्त्र-धौति

इस क्रिया के लिए मलमल जैसे महीन वस्त्र की चार अंगुल चौड़ी (लगभग २ इंच) एवं १६ हाथ लम्बी (लगभग २५ फुट) पैप के आकार में लपेटी हुई पट्टी को विशेष

रूप से तैयार किया जाता है। इसे स्वच्छ पानी अथवा कोसे नमकीन पानी में भिगोकर रखें।

विधि — अब उकड़ूं बैठकर धीरे-धीरे उक्त पट्टी के एक सिरे को मुँह में डालकर अन्न की भांति लार मिश्रित करते हुए सावधानीपूर्वक निगलते जाएं । आरम्भ में २ या ३ इंच निगलकर निकाल दें। यदि निगलने में कष्ट या हिचकी आए तो दूध

वस्त्र-धौति

या शहद को पानी में मिलाकर अभ्यास करें। जब तक दूसरा सिरा थोड़ा मुँह के बाहर रहे तब तक निगलें। २० मिनट तक वस्त्र को भीतर ही रहने दें। धीरे-धीरे वस्त्र को बाहर निकालें। निकालने में रुकावट हो तो नमक का पानी पीकर उल्टी करें। फिर धीरे-धीरे बाहर निकाल लें। अब वस्त्र को साबुन घुले गरम पानी में अच्छी तरह से साफ करके सुखा लें।

सावधानी — ध्यान रखें कि वस्त्र आंतों में न पहुंचे। इस क्रिया को प्रातः खाली पेट ही करें। इसके करने से पेट की दीवारों में चिपके आँव व कफ एवं सड़ा पित्त निकल जाता है और अन्न नाल में उत्पन्न छोटे फोड़े नष्ट हो जाते हैं। इस क्रिया से दमा, खाँसी, दीर्घकालीन बलगम, कास, तिल्ली बढ़ना, ज्वर, अपच, कुष्ठादि विकार ठीक होते हैं। नेत्र-ज्योति भी बढ़ती है।

(८) वमन धौति

स्वेच्छापूर्वक उल्टी करके जठर को साफ करने की क्रिया को वमन-धौति कहते हैं। यह दो प्रकार की है — कुंजल-क्रिया (अथवा गजकरनी) और व्याघ्र-क्रिया।

८-१ – कुंजल क्रिया – जिस प्रकार हाथी सूँड से जल पीकर सूँड से बाहर फेंकता है उसी प्रकार पानी पीकर वापस उल्टी करने को गजकरनी अथवा कुंजल-क्रिया कहते हैं।

विधि – कम से कम दस गिलास नमकीन गुनगुना पानी तैयार कर लें। अब उकड़ूं बैठकर अथवा खड़े होकर जितनी जल्दी हो सके झटपट कम से कम छः-सात गिलास पी लें। जब और अधिक पी न सकें अर्थात् कण्ठ तक भर जाए तब आगे की ओर पूरा ६०° में झुककर खड़े रहें। बाएं हाथ को पेट पर रखकर दबाते हुए दाहिने हाथ की तर्जनी एवं मध्यमा अंगुलियों को मुँह में डालकर जिह्वामूल को दबाते जाएं। पानी फुहारा सा बनकर बाहर निकलेगा अर्थात् उल्टी होगी। जब तक पूरा जल न निकल जाए तब तक जिह्वामूल को दबाते रहिए।

सावधानी – यह क्रिया प्रतिदिन खाली पेट करें। शंख-प्रक्षालन के पश्चात् करें तो अच्छा रहेगा। रोगी रोगों के अनुसार बिना शंख-प्रक्षालन के भी इसे कर सकते हैं। अधिक से अधिक एक महीने तक लगातार कर सकते हैं। इस अभ्यास के बाद गले में खुश्की अर्थात् सूखापन महसूस हो तो १५ से २० मिनट बाद फलों का रस ले सकते हैं। ठोस भोजन एक घण्टे के बाद लें। सारा पानी बाहर न आए तो घबराना नहीं क्योंकि अवशिष्ट जल पेशाब द्वारा बाहर हो जाएगा; इसलिए ज्यादा नमक डालना हानिकारक है। हृदय-रोगी आरम्भ में कुंजल-क्रिया न करें, आसनादि योगाभ्यास द्वारा मजबूती पाने के बाद कर सकते हैं। उच्च रक्तचाप के रोगी बिना नमक के कोसा जल से करें।

लाभ – पेट की वायु और अम्लीयता को रोकते हुए संतुलित रखता है। अन्न-नलिका में एकत्रित बलगम को निकालता है। कास, दमा आदि श्वसन प्रणाली सम्बन्धी रोगों को दूर करता है। पाचन प्रणाली को स्वस्थ एवं संतुलित करता है।

८-२ – व्याघ्र-क्रिया – बाघ की यह विशेषता है कि वह शिकार से पेट को बहुत अधिक भर लेता है फिर तीन-चार घंटे के बाद अपूर्ण रूप से पचे हुए भोजन को उल्टी द्वारा बाहर करता है। उसी प्रकार मानव भी अपने शरीर में अपचे पदार्थ को निकाल सकता है। इसे व्याघ्र-क्रिया कहते हैं। यह स्वाभाविक रूप से अशुद्ध या अर्द्ध पचे भोजन की उल्टी नहीं है बल्कि यह ऐच्छिक क्रिया है।

विधि – इसके अभ्यास को भरे पेट में किया जाता है। इस क्रिया को करने के लिए पहले पूरा पेट भर भोजन करें। तीन-चार घंटे के बाद जैसे भारीपन या तकलीफ महसूस हो ठीक कुंजल-क्रिया की स्थिति में खड़े होकर उसी प्रकार उल्टी करें। परम्परा यह है कि इस क्रिया के आधे घंटे बाद चावल की खीर खाना अच्छा है किन्तु अनिवार्य नहीं। दूध (पतला अर्थात् पानी मिलाकर) अथवा फल का रस भी पी सकते

हैं। उल्टी करते समय यदि नाक से भी भोजन बाहर आए तो जलनेति अवश्य करें।

सावधानी — यह क्रिया हृदय-रोगी, पेट के नासूर (अल्सर), हर्निया एवं उच्च रक्तचाप के रोगी न करें।

लाभ — इस क्रिया से अधिक भोजन अथवा अनुपयुक्त भोजन के कारण होने वाले विकार दूर होते हैं। शरीर के विषाक्त तत्त्व निकल जाते हैं और अम्ल-पित्त में संतुलन होता है।

(६) वारिसार-धौति (शंख-प्रक्षालन)

वारि=जल, सार=गति, धौति=धोना अर्थात् जल पीकर आसनों से उसे विशेष गति प्रदान करके शरीर को साफ करना। लेकिन शंख=शंखाकर के समान आकृति वाला हमारे शरीर का अवयव=आंत, उसका प्रक्षालन=सफाई करना, इसलिए इस क्रिया को शंख-प्रक्षालन कहते हैं। यद्यपि यह क्रिया कण्ठ से गुदा तक पूरे शरीर को शुद्ध करती है तथापि इस क्रिया की उपयोगिता विशेषतः आंतों की शुद्धि के लिए ही है क्योंकि कण्ठ से जठर तक के भाग को पूर्वोक्त क्रियाओं से और गुदक्षेत्र को मूल-धौति से किया जा सकता है। इसके दो भेद हैं — लघु शंख-प्रक्षालन और पूर्ण शंख-प्रक्षालन।

पूर्ण-शंख प्रक्षालन

तैयारी — जिस दिन शंख-प्रक्षालन करना है, उसके पूर्व दिन-रात को हल्का भोजन करें। शंख-प्रक्षालन करने के दिन क्रिया के पूर्व चाय, कॉफी या कोई भी भोज्यादि पदार्थ ग्रहण न करें अर्थात् खाली पेट आरम्भ करें। एक साफ बाल्टी अथवा किसी भी साफ बड़े बर्तन में २५ से ३० गिलास अच्छी तरह से उबले हुए पानी को कपड़े से छान लें। छानने का तरीका इस प्रकार हो — साफ बाल्टी व साफ़ बड़े बर्तन पर कपड़े की छलनी को रखें, उस पर नमक आवश्यकतानुसार डालें। अब उस पर उबला पानी छोड़कर नमक को घोलते हुए छान लें। पानी चखकर देख लें नमक न ज्यादा हो न बहुत कम। आसन करने के लिए खुला कुर्त्ता-पैजामा पहन लें। तनाव व प्रदूषण रहित वातावरण एवं सुखद व खुली हवादार जगह में अभ्यास करें। दो-चार लोग सामूहिक रूप से करें तो अच्छा है ताकि घबराहट व मानसिक तनाव न हो एवं सरलतापूर्वक साहस के साथ कर सकें।

विधि — क्षमतानुसार शीघ्रता से दो गिलास उक्त प्रकार से तैयार किया गया नमकीन पानी पीजिए। तत्पश्चात् निम्नलिखित पांच आसनों का अभ्यास करें। प्रत्येक आसन की आठ आवृत्तियां कीजिए। पानी उकडूं बैठकर अथवा खड़े होकर भी पी सकते हैं। वे आसन इस प्रकार हैं —

(१) *ताड़ासन* – आसन विज्ञान अध्याय के पृष्ठ संख्या ६७ में देखें।

(२) *तिर्यक् ताडासन* – आसन विज्ञान अध्याय के पृष्ठ संख्या ६८ में देखें।

(३) *कटि चक्रासन* – आसन विज्ञान अध्याय के पृष्ठ संख्या ६७ में देखें।

(४) *तिर्यक् भुजंगासन* – आसन विज्ञान अध्याय के पृष्ठ संख्या ११० में देखें।

(५) *उदराकर्षणासन* – आसन विज्ञान अध्याय के पृष्ठ संख्या ७४ में देखें।

आसन विज्ञान अध्याय में वर्णित विधि के अनुसार ही इनका अभ्यास करें। अन्न-नलिका में जठर एवं गुदाद्वार के बीच अनेक द्वार हैं जो इस नियंत्रित प्रदेश को केवल पाचन-क्रिया के समय खोलते एवं बन्द करते हैं, अतः शंख-प्रक्षालन क्रिया के समय उन्हें खोलने के लिए आसनों के अभ्यास से उनके स्नायु को शिथिल किया जाता है ताकि नमकीन जल आसानी से मार्ग को साफ करता हुआ गुदाद्वार की ओर जा सके।

प्रत्येक आसन की आठ आवृत्ति के साथ पांचों आसनों को करने के पश्चात् दो गिलास पानी पीकर पुनः उसी प्रकार से आसन करें। एक बार और ऐसे ही करें। अर्थात् तीन बार में इस प्रकार जब आप छः गिलास पानी पीकर आसनों को कर लें तब हाजत हो या न हो तो भी आप शौच के लिए जाएं। लेकिन वहां ज्यादा न बैठें, एक पिचकारी लगाने का प्रयास करके वापस लौट आएं। कब्ज को तोड़ने के लिए अन्य आसन जैसे – कौवाचाल, भुजंगासन, सर्पासन, पादोतानासन, पवनमुक्तासन, मकरासन आदि भी कर सकते हैं। आसनों को श्वास सहित भी किया जा सकता है। अब लगातार आप दो-दो गिलास पानी पीते जाइए और हर दो गिलास नमकीन पानी पीने के बाद उक्त प्रकार से आसनों का अभ्यास करें। शौच करने के लिए बल प्रयोग न करें और शौच लग जाए तो आसनों की आवृत्तियाँ पूरी होने तक न रुकिए। दूसरों के साथ अपनी तुलना न करें क्योंकि शरीर की मजबूती आदि प्रत्येक की अलग होती है। यह प्रक्रिया आप गुदा से साफ जल बाहर निकलने तक करें। सामान्यतः १६ से २५ गिलास तक पानी पीना पड़ेगा। अपवाद के रूप में देखा गया है कि किसी को तो ४० गिलास तक पानी पीना पड़ता है। ऐसी स्थिति में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।

सावधानी – ध्यान रखें यद्यपि आप थके रहेंगे तो भी शंख-प्रक्षालन के पश्चात् आप अवश्य कुंजल-क्रिया एवं जलनेति कर लें। कम-से-कम ४५ मिनट मौन रहकर लेटकर अथवा बैठे हुए आराम करें या योगनिद्रा का अभ्यास करें किन्तु निद्रा न करें। ४५ मिनट से १ घण्टे के बाद चावल और मूँग की दाल की अच्छी तरह से पकी हुई पतली खिचड़ी, जिसमें कम से कम ७५-१०० ग्राम घी पड़ा हो, का सेवन करें।

यह इसलिए आवश्यक है कि इस क्रिया से केवल मल-मूत्र बाहर नहीं हुए हैं अपितु प्राकृतिक आवश्यक एवं रक्षा करने वाली अन्न-नलिका की दीवार की कुछ तहों को भी हटा दिया गया है, घी रक्षाकवच का काम करता है जबकि चावल कार्बोज एवं दाल प्रोटीन प्रदान कर शक्ति देते हैं और सुपाच्य भी हैं। खिचड़ी खाने के पश्चात् तीन घंटे तक न सोएं। संध्या का भोजन भी घी युक्त चावल-मूँग दाल की खिचड़ी ही हो किन्तु पतली होनी आवश्यक नहीं। ध्यान रखें कम से कम एक हफ्ते तक संयमित भोजन करें और तीन दिन तक दूध-दही और उनसे बनी चीजें, मिर्च-मसाले, अचार, गरिष्ठ भोजन आदि का प्रयोग न करें। चाय, कॉफी, शराब, सिगरेट, पान-सुपारी, तम्बाकू आदि नशीले पदार्थ तथा रासायनिक विधि से तैयार भोजन-सामग्री, अंडा, मीट, माँस, मछली, अम्लीय अन्न, धरती में होने वाले आलू, अरबी आदि का सेवन एक सप्ताह तक अत्यन्त वर्जित है। अतः सरल, सुपाच्य, शुद्ध प्राकृतिक आहार लेना उचित है। कहने का तात्पर्य यह है कि पाचन प्रणाली में अधिक देर तक रुककर पचने वाले अन्न को ग्रहण न करें। एक सप्ताह तक कोई जबरदस्त शारीरिक परिश्रम न करें। कमजोर आंतों वाला व्यक्ति अथवा जिसकी आंतों में सूजन हो वह शंख-प्रक्षालन न करें।

लाभ — अनेक बीमारियों का कारण आंत में एकत्रित विषैले पदार्थ होते हैं जो खून को खराब कर देते हैं। इसका असर पूरे शरीर पर पड़ता है। शंख-प्रक्षालन द्वारा उन विषैले पदार्थों का निष्कासन होने से रक्त-शुद्धि द्वारा स्वास्थ्य में विलक्षण सुधार होता है। विशेषतः पाचन-संस्थान सम्बन्धी अनेकों रोग जैसे मधुमेह, उच्च अम्लीय अवस्था, दीर्घकालीन पेचिश, अजीर्ण, विषाक्त रक्त इत्यादि में उपयोगी है। स्वस्थ व्यक्ति भी इससे लाभ उठा सकता है क्योंकि इससे शरीर के हल्केपन, शुद्ध निर्मल मन, प्रसन्नता एवं प्रफुल्लता के साथ पूर्ण स्फूर्ति मिलती है। आध्यात्मिक साधकों के लिए यह अति आवश्यक है। क्रियायोग, कुण्डलिनी योग, जपानुष्ठान इत्यादि उच्च साधना में लाभप्रद है।

अवधि — हर छः महीने में एक बार करना उचित होगा। मार्च-अप्रैल एवं सितम्बर—अक्टूबर में करना अति उत्तम है। योग्य योग शिक्षक के निर्देशन में करें तो अच्छा होगा।

लघु शंख-प्रक्षालन

पूर्ण शंख-प्रक्षालन में वर्णित विधि से केवल छः गिलास नमकीन जल तैयार कीजिए। प्रातःकाल बिना कुछ खाए करना चाहिए। पूर्वोक्त विधि के अनुसार ही दो-दो गिलास पानी तीन बार क्रम से पिएं। प्रत्येक बार उक्त पांचों आसनों का अभ्यास करें। प्रत्येक आसन की आठ-आठ आवृत्तियां करें।

रोगी इसे उचित निर्देशन में प्रतिदिन कर सकता है अन्यथा सप्ताह में एक या दो बार करना पर्याप्त होगा। भोजन एवं अन्य कार्यों में पूर्वोक्त नियन्त्रण व सावधानी की जरूरत नहीं है किन्तु क्रिया की समाप्ति के कम से कम एक घंटे बाद ही खाना-पीना चाहिए। निर्देशक के अभाव में स्वस्थ व्यक्ति इस क्रिया को सप्ताह में एक बार करते रहें तो उक्त लाभ प्राप्त कर सकता है।

जठर या आमाशय में घाव रहने वाले अर्थात् अल्सर के रोगी इसे न करें। उच्च रक्तचाप के रोगी बिना नमक डाले सादे हल्के गरम पानी से कर सकते हैं।

पूर्ण शंख-प्रक्षालन में कहे लाभों के अतिरिक्त वृक्क के स्पर्श-दोष एवं पथरी में लाभदायक है। मूत्र अर्थात् विसर्जन प्रणाली के लिये अत्यन्त उपकारी है।

(१०) मूल-धौति

यह क्रिया अन्न-नलिका के अन्तिम छोर गुदा क्षेत्र के शोधन के लिए है। इस क्रिया में हल्दी की नर्म जड़ को गुदाद्वार में धीरे-धीरे भीतर किया जाता है, धीरे से दो-तीन बार भीतर घुमाकर निकाला जाता है। जड़ की अनुपलब्धता पर मध्यमा या तर्जनी अंगुली का प्रयोग किया जाता है। सुविधा के लिए जड़ व अंगुली में सरसों का तेल लगाया जा सकता है।

गुदा क्षेत्र की सफाई के साथ स्पर्श-दोष का निवारण, कड़े मल के सहज निष्कासन द्वारा रक्त शुद्धि तथा अपान वायु ठीक कार्य करने लगती है। बवासीर और भगन्दर जैसे रोग कभी नहीं होते।

(११) वातसार धौति

मुँह से वायु पीकर जठर को नवजीवन प्रदान करने की विधि को वातसार-धौति कहते हैं। भुजंगिनी मुद्रा में भी यही क्रिया की जाती है। इस क्रिया में मुँह पूरा खोलकर मुँह से वायु पीकर, पेट में कुछ देर तक हवा को घुमाया जाता है, उसके बाद धीरे-धीरे जम्हाई लेते हुए वायु का निकास किया जाता है। इस अभ्यास से अनेकों उदर रोग दूर होते हैं।

(१२) वह्निसार धौति या अग्निसार क्रिया

यह क्रिया जठराग्नि को उद्दीप्त करने के लिए है। इस क्रिया को करने के लिए वज्रासन में बैठ जाएं। नेत्रों को हल्का अथवा पूरा बन्द रखें ताकि पलकों पर दबाव न पड़े। दोनों हाथों को घुटनों के सहारे रखकर सामने की ओर पीठ सीधा रखते हुए झुकिए। मुँह खोलिए और जिह्वा को पूर्णरूपेण बाहर कीजिए (हाथ सीधे रखें)।

अब उदर का विस्तार एवं संकुचन करते हुए तीव्र गति से श्वास-प्रश्वास क्रिया कीजिए (कुत्ते के समान)। श्वसन क्रिया की गति समकालीन होनी चाहिए। कम से कम २०-२५ बार श्वसन-क्रिया करें। कुछ देर विश्राम लेकर फिर करें (इस प्रकार तीन आवृत्ति करें)। खाली पेट, खाने के आधा घण्टा पूर्व अथवा भोजन के चार घंटे बाद इस क्रिया का अभ्यास कर सकते हैं। मूलबन्ध के साथ करें तो अधिक लाभ होगा। उच्च रक्तचाप, हृदय तथा अल्सर के रोगी इस क्रिया को न करें। यकृत की न्यून कार्य-क्षमता, वायु, अजीर्ण, मन्दाग्नि एवं अन्य उदर तथा जठर रोगों के लिए यह रामबाण है।

नौलि

उदरस्थ अंगों की मालिश तथा उन्हें बल प्रदान करने की यह शक्तिशाली विधि है। इससे पेट के सभी अंगों का सुचारु रूप से संचालन होगा। फलस्वरूप नीरोगता और शरीर की सर्वतो अभिवृद्धि सम्यक् प्रकार से होगी।

सावधानी — तीनों बन्ध (जालंधर, उड्डियान और मूल) का अभ्यास परिपक्व होने पर विशेषतः बाह्य कुंभक में कुछ देर तक ठहरने का अभ्यास होने पर ही इस क्रिया को करना चाहिए। इसके प्रारम्भिक अभ्यास के पहले अग्निसार और उड्डियान बन्ध का अभ्यास पूर्ण-रूप से कर लें। योग शिक्षक के निर्देशन में सीखना व करना अच्छा होगा। भोजन के तीन या चार घंटे के बाद करना उचित होगा।

विधि — नौलि के तीन भेद हैं — मध्य, वाम और दक्षिण। इसका अभ्यास पांच चरणों में किया जाता है।

प्रथम चरण — पद्मासन, वज्रासन अथवा खड़े होकर अग्निसार क्रिया एवं उड्डियान बन्ध का अभ्यास करें।

द्वितीय चरण — आरम्भिक अभ्यासी को खड़े होकर करना सरल होगा। पैरों में डेढ़ फुट का अन्तर रखकर खड़े होकर दोनों हाथों को जंघाओं पर रखें, श्वास को बाहर निकालकर उड्डियान तथा जालन्धर बन्ध लगाएं। हथेलियों से दबाव डालते हुए जंघा के साथ ऊपर से नीचे की ओर खिसकाते हुए घुटनों तक ले जाएं। पेट को ढीला छोड़ते हुए (श्वास न लें) गुदा के समीपस्थ उदर स्नायुओं को संकुचित कर अर्थात् मूलबन्ध का अभ्यास धीरे से करें, क्रमशः

नौलि - प्रथम चरण

उदर केन्द्र तक ले आइए। इस प्रकार उदर स्नायुओं को संकुचित कर मध्य भाग में एकत्रित करना ही **मध्य अथवा मध्यम-नौलि** कहा जाता है। इसमें दक्ष होने के पश्चात् अगले चरण का अभ्यास करें।

नौलि - द्वितीय चरण

तृतीय चरण — द्वितीय चरण का अभ्यास कर, उसी स्थिति में रहकर अब आप बाएं हाथ को घुटने पर रहने दें और दाएं हाथ को जांघ के साथ खिसकाते हुए ऊपर लाइए। आपका शरीर अपने आप थोड़ा बांयी ओर झुकेगा। ऐसी स्थिति में थोड़ा प्रयास कर उदर स्नायुओं को बायीं ओर ले आइए। यद्यपि अपने आप कुछ बायीं ओर झुकाव की स्थिति में स्नायु जाएंगी ही तथापि मन से विशेष प्रयास करने पर पूर्णरूपेण बाईं ओर जाएंगी। यही **वाम-नौलि** है।

चतुर्थ चरण — तृतीय चरण करने के पश्चात् पुनः आप द्वितीय चरण की अवस्था में लौटिए। अब आप दायां हाथ घुटने पर रहने दें और बाएं हाथ को जांघ के साथ खिसकाते हुए ऊपर लाइए। आपका शरीर अपने आप दाईं ओर झुकेगा। इस स्थिति में थोड़ा प्रयास कर उदर स्नायुओं को दाईं ओर ले आइए। यद्यपि अपने आप स्नायु दाईं ओर झुकाव की स्थिति में जाएंगी तथापि मन से विशेष प्रयास करने पर पूर्णरूपेण जाएंगी। यही **दक्षिण-नौलि** है।

नौलि - तृतीय चरण

पंचम चरण — इस चरण में उक्त तीनों क्रियाओं अर्थात् मध्यम, वाम और दक्षिण नौलियों को क्रम से किया जाता है। मध्यम नौलि की अवस्था से वाम-नौलि, वाम-नौलि से मध्य-नौलि, मध्य-नौलि से दक्षिण-नौलि और वापस मध्य-नौलि। इसके अभ्यास के बाद सीधे मध्यम-नौलि, वाम और दक्षिण-नौलि करें। इसके लिए हाथों को लगातार ऊपर-नीचे खिसकाएं।

अन्तिम अवस्था में हाथ ऊपर-नीचे खिसकाएं। मध्य-नौलि की अवस्था में ही एक समान धीमी गति में स्नायुओं को घुमाना शुरू करें बाएं, दाएं और मध्य की ओर। धीरे-धीरे गति को तीव्र करें।

प्रत्येक चरण को प्रत्येक आवृत्ति के अभ्यास के अन्त में स्नायुओं को पूर्णरूपेण शिथिल करके पूरक कीजिए एवं कुछ क्षण तक श्वसन-क्रिया का अभ्यास स्वाभाविक रूप से होने दें। प्रत्येक चरण की तीन आवृत्ति क्षमतानुसार करें।

उदर के समस्त रोगों को दूर करता है और प्रजनन शक्ति को बढ़ाता है। आध्यात्मिक दृष्टि से मणिपूर चक्र के जागरण में सहयोग देता है। इस क्रिया को उच्च रक्तचाप, अल्सर, हर्निया या अन्य पाचन-संस्थान सम्बन्धी गंभीर रोग वाले को नहीं करना चाहिए। इस क्रिया की विशेषता यह है कि यह वात-पित्त-कफ की विषमता अर्थात् त्रिदोष को दूर करती है। आंतों में चिपका हुआ मल उखड़ता है और कब्ज़ टूटता है। समान एवं अपान वायु को संतुलित करता है। इससे अनेकों पाचन-संस्थान सम्बन्धी, विसर्जन प्रणाली सम्बन्धी तथा श्वसन प्रणाली सम्बन्धी रोग भी दूर होते हैं।

बस्ति

यह क्रिया बड़ी आंत की सफाई एवं उसमें शक्ति-वृद्धि के लिए है। इस क्रिया को दो प्रकार से किया जाता है — (१) जल-बस्ति (२) स्थल-बस्ति। जल-बस्ति को भी दो प्रकार से किया जाता है — (क) स्वाभाविक और (ख) ऐनेमिक अर्थात् एनिमा की सहायता से।

(१) जलबस्ति

(क) स्वाभाविक — नाभि तक पानी में खड़े हो जाइए। इसके लिए नदी अच्छा स्थान है। सामने झुककर घुटनों पर हाथ रखिए। गुदाद्वार के संकोचक स्नायुओं का विकास कीजिए साथ ही उड्डियान बन्ध लगाकर नौलि-क्रिया इस प्रकार करें ताकि पानी ऊपर को चढ़े। अब मूल-बन्ध लगाकर आंत में कुछ समय तक पानी को रोकिए, तत्पश्चात् गुदा से पानी को बाहर निकालें। इस क्रिया के दौरान अश्विनी मुद्रा का अभ्यास करें।

जो इस प्रकार न कर सकें वे एक छः इन्च लम्बी नली जिसका एक छोर चौड़ा हो और दूसरा पतला, अर्थात् एक छोर अनामिका घुमाने लायक और दूसरा कनिष्ठा अंगुली को घुमाने लायक। इस नली को तीन-चार इन्च गुदा से भीतर प्रवेश कराएं। शेष क्रिया पूर्ववत् करें।

(ख) ऐनेमिक — जो उक्त दोनों प्रकार से बस्ति न कर पाएं वे एनिमा का प्रयोग कर सकते हैं। यह एक आधुनिक सरल उपाय है। इसके लिए एक विशेष पात्र होता है जिसमें आप करीब आधा लीटर ताजा पानी भर लें और ऊँचाई पर रख दें। उस पात्र से निकली नली की नोजल को आप पीठ के बल लेटकर गुदा में लगा लें, पानी खोल दें। पूरा पानी अन्दर जाने के बाद नोजल बाहर निकालकर, मूलबंध लगा लें। दोनों हाथों से पेट की मालिश करें। तत्पश्चात् दाईं ओर करवट लेकर पेट को पिचकाएं। इस प्रकार क्रिया करते हुए पानी को दो-तीन मिनट भीतर रखने के बाद शौच जाएं और पानी को निकालें।

(२) स्थल-बस्ति

पूर्ण पश्चिमोत्तानासन की स्थिति में गुदाद्वार से आंतों में पच्चीस बार वायु खींचते हुए अश्विनी मुद्रा कीजिए। कुछ देर वायु को रोकिए। पुनः गुदाद्वार से उसको छोड़ें।

योग शिक्षक के निर्देशन में ही बस्ति-क्रिया का अभ्यास करें। प्रातः शौच जाने के पश्चात् करना उचित है। किसी प्रकार की कठिनाई हो तो नली, नोजल व गुदाद्वार में सरसों का तेल लगा सकते हैं।

लाभ — इस क्रिया से अन्तड़ियों का शोधन, अपान वायु की शुद्धि, गुदा क्षेत्र में उत्पन्न गर्मी से होने वाले अनेकों रोगों की निवृत्ति, फलतः रक्तशुद्धि होकर मन्दाग्नि दूर होती है। पेट का मोटापा घटता है। पित्त का निकास होता है, शारीरिक ताप में संतुलन होता है।

कपालभाति

मस्तिष्क के अग्र भाग की शुद्धि के लिए तीन क्रियाओं की सरल पद्धति को कपालभाति कहते हैं। वे हैं शीतक्रम, व्युत्क्रम और वातक्रम।

(१) शीतक्रम कपालभाति

इसमें मुँह से जल पीकर नासिका से जल को निष्कासित किया जाता है।

(२) व्युत्क्रम कपालभाति

इसमें नासिका से जल को भीतर खींचकर उसे मुँह से निकाला जाता है।

उक्त दोनों प्रकार की कपालभाति से जलनेति के करने पर होने वाले समस्त लाभ अधिक प्रभावशाली ढंग से प्राप्त किए जा सकते हैं।

(३) वातक्रम कपालभाति

इसका विचार विस्तृत रूप से इसी प्रथम प्रकरण के चौथे अध्याय प्राणायाम विज्ञान में किया जाएगा।

त्राटक

किसी वस्तु पर गहन एकाग्रता की क्रिया त्राटक है। इससे बुद्धि विकसित होती है और नेत्रों को भी शक्ति प्रदान होती है। त्राटक-क्रिया में व्यक्ति में निहित सुषुप्त आत्मिक शक्तियों का विकास होता है। इस क्रिया की अनेक विधियां हैं जिनकी चर्चा हम चित्त-शुद्धि प्रकरण के चौथे अध्याय त्राटक-विज्ञान में करेंगे।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अध्याय ३

आसन विज्ञान

प्रस्तावना

पातञ्जल योगसूत्र में महर्षि पतञ्जलि —

स्थिरं सुखं आसनं।

(२/४६)

इस सूत्र में आसन के लक्षण बताए हैं। अर्थात् स्थिरता एवं सुखानुभूति आसन है। तात्पर्य है समस्त अंगों को एक विशेष आकार में स्थित करना जिससे विभिन्न संस्थानों (पाचनादि) को लाभ पहुंचाते हुए सुख की अनुभूति हो।

इस संसार में ८४ लाख योनि हैं। उनके आराम करने की स्थिति का अनुकरण करने पर मनुष्य ८४ लाख आसनों को कर सकता है। लेकिन उनमें से प्रमुख ८४ आसन हैं। योगी याज्ञवल्क्य केवल आठ आसनों को मनुष्य की आध्यात्मिक प्रगति के लिए पर्याप्त मानते हैं। वे हैं — स्वस्तिक, गोमुख, पद्म, वीर, सिंह, भद्र, मुक्त और मयूर।

स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर का परस्पर समन्वय करना ही आसनों का मुख्य उद्देश्य है। अतः आसन का प्रथम रूप स्थिरता स्थूल शरीर से सम्बद्ध है और तन-मन का तालमेलपूर्वक सुखानुभूति सूक्ष्म शरीर से सम्बद्ध है। आसन मनुष्य को सबल, स्वस्थ, प्रसन्न, सक्रिय एवं शक्ति का संचय करने योग्य बनाता है।

योगाभ्यास और व्यायाम में बहुत अन्तर है। जैसे —

व्यायाम से	आसन से
१. केवल स्थूल शरीर पर प्रभाव पड़ता है।	१. स्थूल-सूक्ष्म दोनों शरीर पर प्रभाव पड़ता है।
२. प्राणशक्ति का ह्रास होता है।	२. प्राणशक्ति का संचय होता है।
३. बुढ़ापे में रोग का कारण होता है।	३. सदा आरोग्य प्रदान करता है।
४. अप्राकृतिक दबाव के कारण शरीर में कड़ापन आता है।	४. शरीर लचीला और सुडौल होता है।
५. ग्रन्थियाँ समान रूप से प्रभावित नहीं होतीं।	५. ग्रन्थियों पर समान प्रभाव के कारण वे संतुलित रहती हैं।
६. विजातीय द्रव्यों का निष्कासन पूर्ण रूप से नहीं होता।	६. विजातीय द्रव्यों का पूर्ण रूप से निष्कासन होता है।
७. श्वसन-क्रिया अनियन्त्रित होती है।	७. श्वसन-क्रिया नियन्त्रित होने से फेफड़े आदि मजबूत होते हैं।
८. शरीर का विकास बेढंगा होता है।	८. शरीर का सुनियोजित ढंग से सर्वांगीण विकास होता है।
९. ब्रह्मचर्य अनियन्त्रित होता है।	९. ब्रह्मचर्य पर पूर्ण नियन्त्रण रहता है।
१०. रोगों का निदान नहीं।	१०. रोगों का निदान है।
११. रक्त-संचार में विषमता के कारण विभिन्न संस्थानों में परस्पर संतुलन नहीं रहता है।	११. रक्त-संचार में समता के कारण सभी संस्थानों में परस्पर संतुलन बना रहता है।
१२. केवल मांसपेशियां प्रभावित होती हैं।	१२. सूक्ष्म अन्तरंग अंग भी प्रभावित होते हैं।
१३. बुद्धि मन्द होती है।	१३. बुद्धि का विकास होता है।
१४. व्यावहारिक निर्णय करने में भी अक्षम हो जाता है।	१४. सकल प्रकार के निर्णय आदि करने में सक्षम होता है।
१५. थकान होती है।	१५. आराम, स्फूर्ति एवं हल्कापन आता है।
	→

१६. अधिक समय एवं प्राणशक्ति खर्च होती है।	१६. अल्प समय में अधिक लाभ और प्राण-शक्ति का संचय होता है।
१७. विशाल जगह, खुली हवा, व्यायाम के सामान आदि की जरूरत पड़ती है।	१७. थोड़ी जगह, कमरे के भीतर एवं अल्प सामान से कर सकते हैं।
१८. आबालवृद्ध सभी नहीं कर सकते।	१८. सभी कर सकते हैं।
१६. यात्रा आदि में नहीं कर सकते।	१६. हर स्थिति में किया जा सकता है।
२०. सुदृढ़ स्वच्छ समाज के गठन में उपयोगी नहीं।	२०. मन बुद्धि पर प्रभाव डालकर परिवर्तन लाकर समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

इतना ही नहीं, योगाभ्यास से स्वास्थ्य लाभ, कार्य करने की क्षमता, नीरोगता, सात्विक वृत्ति, सन्तुलित व सरल जीवन, भेद-भाव रहित भावना, सजग मस्तिष्क, एकाग्रता, तनाव रहित मन, सहिष्णुता, विवेक, स्फूर्ति, सन्तुलित काय-मन के कारण सुख, शान्ति, उत्साह, धैर्य, निर्मलता आदि अनमोल रत्न अनायास प्राप्त हो जाते हैं। अतः व्यायाम की अपेक्षा सर्वांगीण विकास के लिये योगाभ्यास श्रेष्ठ है।

योगाभ्यासी की दृष्टि से योगासनों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है — प्रारम्भिक, मध्यम और उच्च। अथवा अभ्यास की दृष्टि से योगासनों को 7 भागों में विभक्त कर सकते हैं —

(क) — प्रारम्भिक अभ्यास

(ख) — ध्यान के आसन

(ग) — बैठकर किए जाने वाले आसन

(घ) — खड़े होकर किए जाने वाले आसन

(ङ) — पेट के बल किए जाने वाले आसन

(च) — पीठ के बल किए जाने वाले आसन

(छ) — सिर के बल किए जाने वाले आसन

योगाभ्यास में सावधानियाँ

योगाभ्यास शुरू करने से पहले निम्न कुछ बातों का ध्यान रखें।

(१) पेट खाली

सर्वप्रथम आसनों को आरम्भ करने से पहले मूत्राशय एवं आंतों को खाली कर लेना चाहिए। बिना जोर लगाए एवं बिना औषधि, एनिमा आदि प्रयोग किए स्वाभाविक ढंग से शौच आदि क्रिया एवं स्नान से निपट लेना चाहिए। अतः प्रातःकाल आसनों का अभ्यास करें अथवा भोजन लेने के तीन-चार घण्टे के बाद करें। धूप-स्नान के एक घण्टे बाद आसनों को करना चाहिए।

(२) श्वास

आसनों के अभ्यास काल में नाक से ही श्वास लेना चाहिए। जिन आसनों में जैसे विशेष निर्देश हैं, उनमें वैसे करें।

(३) कम्बल

चार पर्तों में मोड़कर कम्बल बिछाकर, उस पर करें। अधिक मुलायम अथवा हवा भरी बिछावन पर न करें।

(४) स्थान

स्वच्छ हवायुक्त कमरे में करें। तेज हवा, सर्दी, धुआँ मिश्रित, बदबूदार, दूषित, सीलनयुक्त, गन्दी हवायुक्त आदि विषम कमरे में न करें। बिजली का पंखा चलाकर उसके नीचे न करें।

(५) शरीर

अभ्यास काल में शरीर एवं मन तनावरहित हो। शान्त होकर धीमी गति से, बिना जोर लगाए अभ्यास करें। शुरू में कड़क मांसपेशियों के कारण ठीक से न होने पर भी निराश न हों और जोर-जबरदस्ती भी न करें। अभ्यास यथासम्भव जारी रखें। धीरे-धीरे सफल होंगे।

(६) सीमा

प्रत्येक आसन की सीमायें निर्धारित हैं जिसका निर्देश विधि के साथ किया गया है।

दीर्घकालीन व स्थायी रोगों से पीड़ित लोग योग्य योग शिक्षक की देख-रेख में व सलाह से ही करें।

(७) चेतना

योगासन व्यायाम नहीं है, इसलिए अभ्यास काल में पूरे शरीर के प्रति सचेत रहें। यदि किसी भाग में दर्द व विपरीत भावना हो अर्थात् प्रतिकूलता महसूस हो तो तुरन्त अभ्यास को बन्द करके विशेषज्ञ से सलाह लें।

(८) वस्त्र

ढीले, हल्के व आरामदायक हों। चश्मा, घड़ी, आभूषण उतारकर अभ्यास करें।

प्रारम्भिक अभ्यास

आसनों के अभ्यास के लिए प्रमुखतः वात और गठिया से रहित शरीर होना आवश्यक है। अतः प्रारम्भिक अभ्यास में रोगी एवं अयोग्य शरीर को योग्य बनाने के लिए **पवनमुक्तासन** और **शक्तिबन्ध आसन** नाम से अनेकों अभ्यासों का समूह रखा गया है। पवन = वायु, मुक्त = छुटकारा, आसन = शरीर की विशेष स्थिति। अर्थात् वायु से उत्पन्न योग के बाधकों से छुटकारा पाने के लिए योगाभ्यास।

यद्यपि नाम के अनुसार वायु का नियन्त्रक है तथापि वास्तव में यह अभ्यास वात, पित्त और कफ तीनों को संयमित करता है।

पवनमुक्तासन को तीन प्रमुख समूहों में विभक्त किया गया है। **गठिया निरोधक, वात निरोधक और दृष्टिवर्धक**। इन तीनों में से प्रथम समूह गठिया निरोधक अभ्यास को पुनः तीन भागों में विभक्त किया गया है — **पादपवनमुक्तासन, हस्तपवनमुक्तासन** और **शिरःपवनमुक्तासन**। सर्वप्रथम दो मिनट के लिए शवासन का अभ्यास करें। तनावरहित शारीरिक व मानसिक स्थिति के लिये यह शिथिलीकरण आवश्यक है।

पवनमुक्तासन (गठिया निरोधक अभ्यास) — पादपवनमुक्तासन

(१) पैरों की अंगुलियां मोड़ना — अपने पैरों को शरीर के सामने सीधे फैलाकर बैठ जाएं। अपने हाथों के सहारे थोड़ा पीछे की ओर झुकिए। हाथ सीधे रखिए, कोहनियों को मोड़ना नहीं। अब पैरों की अंगुलियों पर दृष्टि रखते हुए उनके प्रति जागरूक होइए। श्वास लेते हुए केवल अंगुलियों को यथासम्भव नीचे की ओर मोड़िए और श्वास छोड़ते हुए सीधा कीजिए। इस प्रकार दस बार कीजिए। ध्यान रखें पैर को उठाना नहीं, कड़ा रखते हुए अभ्यास करना है। पहले प्रत्येक पैर की अंगुलियों पर पृथक् अभ्यास करके फिर दोनों पैर की अंगुलियों का एक साथ अभ्यास करें।

पैरों की अंगुलियां मोड़ना

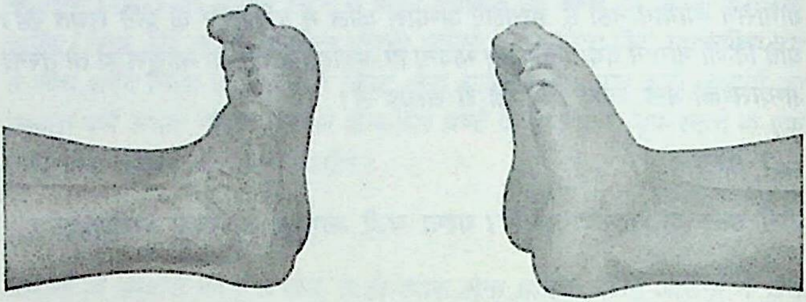

(२) पैरों के टखने मोड़ना — अभ्यास एक की स्थिति में बैठे हुए पूर्ववत् श्वास लेते हुए टखनों को जोड़ों से सामने व नीचे की ओर झुकाते हुए दोनों पंजों को जितना सम्भव हो उतना मोड़िए और श्वास छोड़ते हुए सीधा कीजिए। यह अभ्यास दस बार दोहराइए। इसे भी आप प्रत्येक पैर के लिए पृथक् अभ्यास करने के पश्चात् दोनों पैर के लिए एक साथ कर सकते हैं।

पैरों के टखने मोड़ना

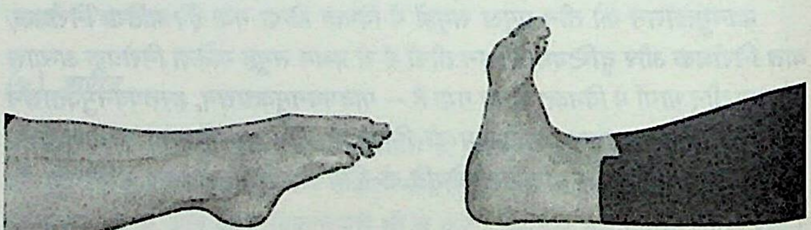

(३) टखने को वृत्ताकार घुमाना — अभ्यास एक की आरम्भिक स्थिति में बैठे हुए पैरों के बीच में कुछ फासला छोड़िए। एड़ी को जमीन पर रखे हुए दाहिने पंजे को दायीं ओर वृत्ताकार घुमाते हुए सामने लाकर फिर बायीं ओर से वृत्ताकार घुमाकर वापस सीधा रखें।

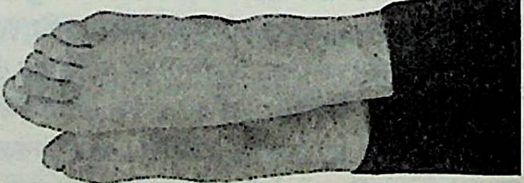

टखने को वृत्ताकार घुमाना

दस बार दुहराइए। पुनः विपरीत दिशा में घुमाइए। इस अभ्यास को बाएं पंजे से कीजिए। फिर दोनों पंजों को एक साथ घुमाइए। श्वास स्वाभाविक रहे।

(४) टखने को उसकी धुरी पर घुमाना — *अभ्यास एक की मूल स्थिति में बैठिए। दाहिने टखने को बायीं जांघ पर रखिए। बाएं हाथ की सहायता से दाहिने पंजे को पहले दायीं ओर से फिर*

टखने को उसकी धुरी पर घुमाना

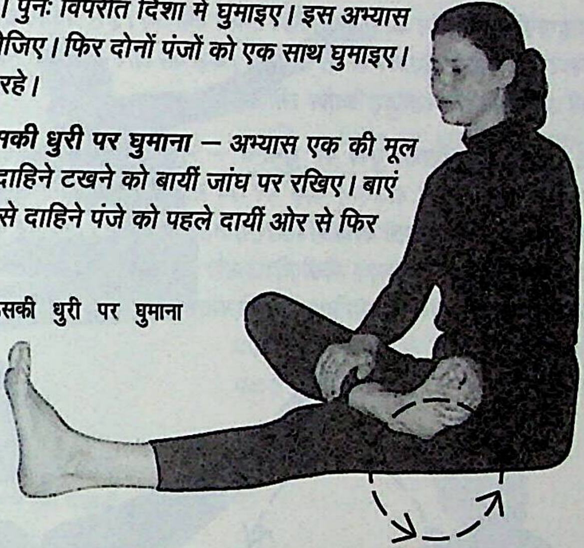

बायीं ओर से वृत्ताकार घुमाइए। दोनों दिशाओं में दस-दस बार दोहराइए। इसी प्रकार बाएं पंजे से कीजिए। श्वास स्वाभाविक रहे।

(५) घुटने को मोड़ना — *अभ्यास एक की मूल स्थिति में बैठिए। दाहिने पैर को घुटने से मोड़ते हुए जमीन से थोड़ा ऊपर उठाइए। दोनों हाथों को दाहिनी जांघ के नीचे बांध लीजिए। अब एड़ी को बिना जमीन से स्पर्श किए दाहिने पैर को सीधा कीजिए। फिर दाहिने पैर के घुटने से मोड़ते हुए एड़ी को दाहिने नितम्ब के पास*

घुटने को मोड़ना

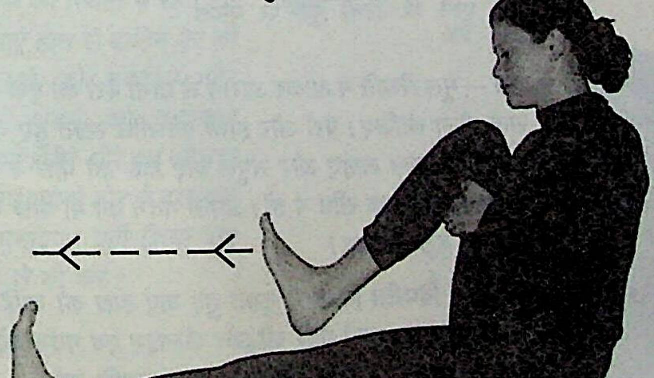

लाइए, किन्तु जमीन को न छुएं। फिर सीधा कीजिए। इस प्रकार दस बार दोहराइए। इस अभ्यास को बाएं पैर से भी कीजिए। धड़ की ओर लाते हुए श्वास छोड़ें व सामने की ओर सीधा करते हुए श्वास लीजिए।

(६) घुटने को उसकी धुरी पर घुमाना — मूल स्थिति में आइए। दोनों हाथों को बायीं जांघ के नीचे बांधकर, बाएं पैर को मोड़ते हुए जमीन से थोड़ा ऊपर रखते हुए धड़ के सामने छाती के पास स्थिर पकड़कर रखिए। अब पैर के घुटने के निचले भाग को वृत्ताकार घुमाइए। सीधी दिशा और विपरीत दिशा में दस-दस बार घुमाइए। यही क्रिया दाएं पैर से कीजिए। श्वास स्वाभाविक रहे।

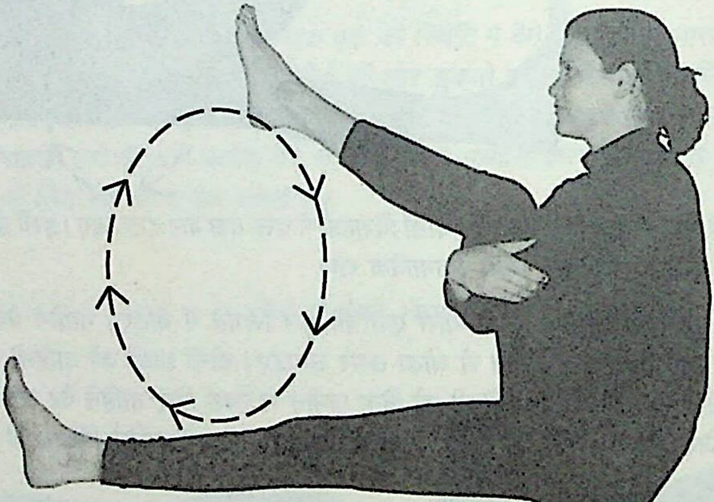

घुटने को उसकी धुरी पर घुमाना

(७) मेरुदण्ड को घुमाना — मूल स्थिति में आकर आराम से दोनों पैरों को एक-दूसरे से जितने दूर फैला सकें फैला लीजिए। पैरों और हाथों को सीधे रखते हुए दाहिने हाथ को बाएं पैर के अंगूठे के पास लाइए और संपूर्ण बाएं हाथ को पीछे की ओर फैलाइए, इस तरह कि दोनों हाथ एक सीध में हों। अपनी गर्दन को भी पीछे मोड़ते हुए बाएं हाथ के अंगूठे पर दृष्टि रखिए।

कुछ क्षण रुककर, फिर विपरीत दिशा में मुड़ते हुए बाएं हाथ को दाहिने पैर के अंगूठे के पास लाकर दाहिने हाथ को पीछे की ओर फैलाइए एवं गर्दन को पीछे मोड़ते हुए दाहिने हाथ के अंगूठे पर दृष्टि रखें। यह एक आवृत्ति हुई।

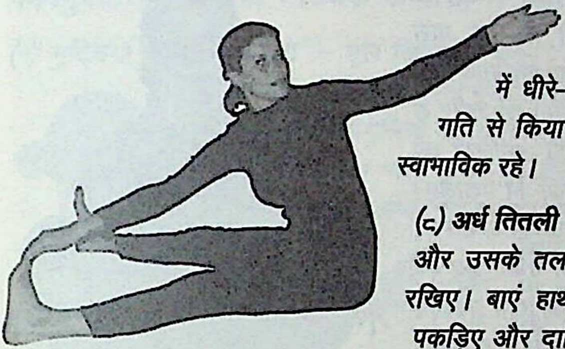

मेरुदण्ड को घुमाना

इसी प्रकार दस आवृत्तियां करें। आरम्भ में धीरे-धीरे करें, क्रमशः तीव्र गति से किया जा सकता है। श्वास स्वाभाविक रहे।

(८) अर्ध तितली — दाएं पैर को मोड़िए और उसके तलवे को बायीं जांघ पर रखिए। बाएं हाथ से दाहिने पंजे को पकड़िए और दाहिने हाथ से घुटने को पकड़ें। मुड़े हुए दाएं पैर की मांसपेशियों को पूरा ढीला रखते हुए दाएं हाथ से दाहिने घुटने को पकड़े हुए मुड़े पैर को ऊपर-नीचे कीजिए। ऊपर उठाते वक्त श्वास छोड़ते हुए छाती तक लाएं। नीचे ले जाते वक्त श्वास लेते हुए जमीन तक ले जाएं। दस बार दुहराइए। इस क्रिया को बाएं पैर से भी कीजिए।

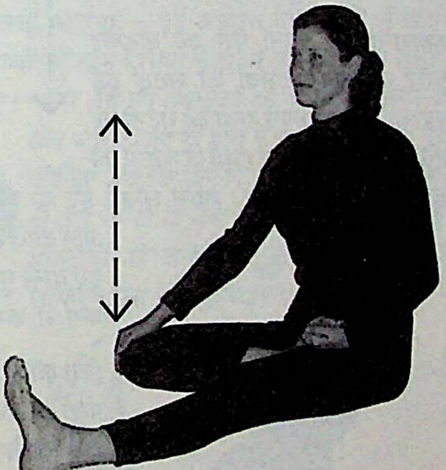

अर्ध तितली

(९) घुटने को घुमाना — पूर्व अभ्यास की स्थिति में रहते हुए अब बाएं हाथ से दाहिने पैर की अंगुलियों को पकड़िए और दाहिने घुटने को वृत्ताकार घुमाइए। धीरे-धीरे वृत्त को बड़ा कीजिए। दोनों ओर से दस-दस बार घुमाइए। यही क्रिया बाएं घुटने से भी करें।

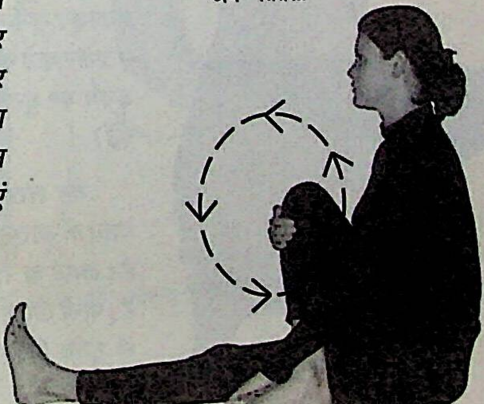

घुटने को घुमाना

(१०) पूर्ण तितली — मूल स्थिति में बैठिए। दोनों पैरों को धड़ के पास समेटकर पैरों के तलवे को एक साथ सटा दीजिए। यथासम्भव एड़ियों को शरीर से सटाइए। दोनों हाथों की अंगुलियों को एक-दूसरे में बाँधकर पंजों को पकड़िए। अब कोहनियों से घुटनों को भी जमीन की ओर दबाइए। घुटनों को दबाते हुए एवं श्वास छोड़ते हुए शरीर को आगे झुकाइए और मस्तक से भूमि को स्पर्श कीजिए। पन्द्रह-बीस बार दुहराइए।

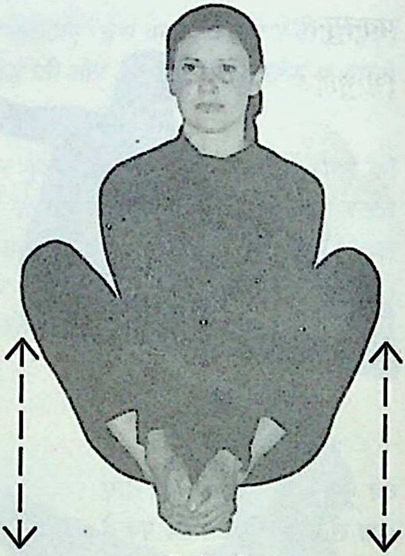

पूर्ण तितली

प्रकारान्तर — दोनों पैरों को मोड़कर शरीर के सामने तलवों को सटाई हुई अवस्था में आप अपने हाथों को घुटनों पर रखिए। श्वास लेते हुए हाथों से घुटनों को जमीन की ओर दबाइए। श्वास छोड़ते हुए या घुटनों को स्वयं उछलते हुए ऊपर आने दीजिए अथवा स्वयं हाथों से ऊपर उठाते हुए दोनों घुटनों को जोड़ने की कोशिश करें। कम से कम पन्द्रह बार दुहराइए।

कौआ चाल

(११) कौआ चाल — जमीन पर उकडूं अर्थात् पंजों के बल बैठें। हथेलियों को घुटनों पर जमा दीजिए और उसी स्थिति में चलना शुरू कीजिए। अर्थात् बाएं घुटने को सामने की ओर झुकाकर जमीन पर टिकायें और दाएं पैर को उठाकर पंजे को उसके बगल में रखें। प्रत्येक कदम पर घुटने से जमीन को छूते हुए आगे बढ़ें।

यह शंख-प्रक्षालन में उपयोगी है और ध्यान के आसनों के लिए पैरों को तैयार करता है। कब्ज़ के रोगी के लिए अत्यन्त हितकारी है। पानी पीकर इसका अभ्यास करने से कब्ज़ से मुक्ति मिलेगी।

पवनमुक्तासन (गठिया निरोधक अभ्यास) – हस्तपवनमुक्तासन

(१) मुट्ठियां कसकर बांधना – मूल स्थिति में बैठिए। अपने सामने जमीन के समानान्तर कन्धों तक अपनी भुजाओं को फैलाइए। श्वास लेकर दोनों हाथों की अंगुलियों को फैलाकर उनमें तनाव उत्पन्न करते हुए कड़ा कीजिए। श्वास छोड़ते हुए ढीला छोड़िए। अथवा श्वास लेते हुए अंगूठों को अन्दर रखकर शेष अंगुलियों से उस पर मुट्ठी बाँधकर कसिए। श्वास छोड़ते हुए मुट्ठी खोलकर ढीला छोड़ें। दस बार प्रत्येक को दोहराइए।

(२) कलाई मोड़ना – पूर्व अभ्यास की स्थिति में आइए अर्थात् हाथों को सामने सीधा फैलाकर पीठ को सीधा रखकर बैठिए। श्वास लेते हुए हथेलियों को कलाई से ऊपर की ओर मोड़िए और पूरे हाथ में इस प्रकार तनाव पैदा कीजिए जैसे कि आप किसी चीज को पूरी ताकत से ठेल रहे हों या दबा रहे हों। श्वास छोड़ते हुए हथेलियों को जमीन की ओर करते हुए ढीला छोड़िए। दस बार दुहराइए।

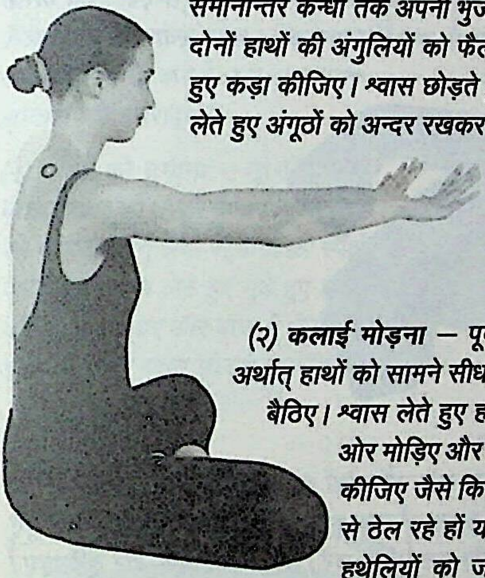

मुट्ठियां कसकर बांधना

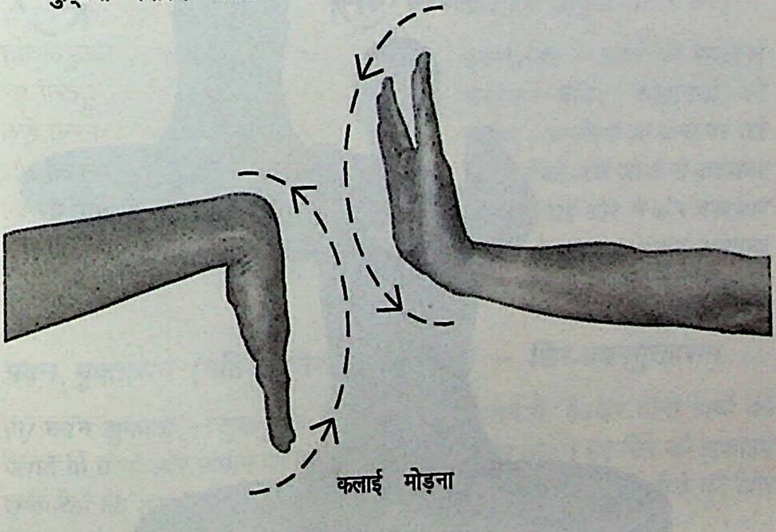

कलाई मोड़ना

(३) कलाई घुमाना – केवल एक हाथ को सामने फैलाकर बैठिए। मुट्ठी कसकर बांधिए और कलाई से उसे दस बार सीधे एवं विपरीत दिशा में वृत्ताकार घुमाइए। बाएं हाथ से भी इसी प्रकार कीजिए। इसके पश्चात् दोनों हाथों से एक साथ करें। प्रत्येक अभ्यास को प्रत्येक दिशा में दस-दस बार करें। श्वास स्वाभाविक रहे।

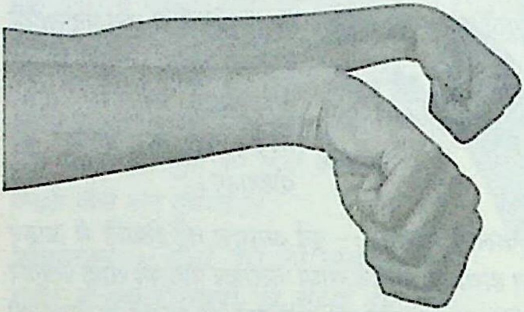

कलाई घुमाना

(४) कोहनियां मोड़ना – मुट्ठियां खोलकर हाथों को सामने फैलाएं। हथेलियों को ऊपर की ओर रखें। स्वाभाविक श्वास के साथ भुजाओं को कोहनियों से मोड़ते हुए अंगुलियों से कन्धों का स्पर्श करें। पुनः सीधा करें। इस प्रकार दस बार दुहराइए।

कोहनियां मोड़ना

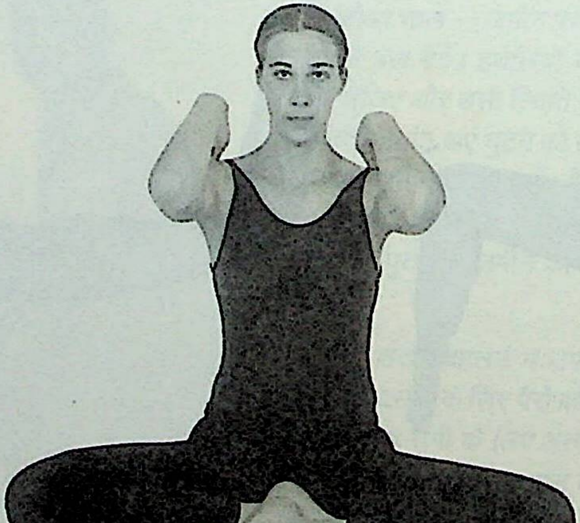

हथेलियों को नीचे की ओर करके इसी अभ्यास को दस बार दुहराइए। पुनः सामने के बदले में भुजाओं को बाजू में फैलाकर हथेलियों को ऊपर करके दस बार और नीचे करके दस बार उक्त अभ्यास को दुहराइए।

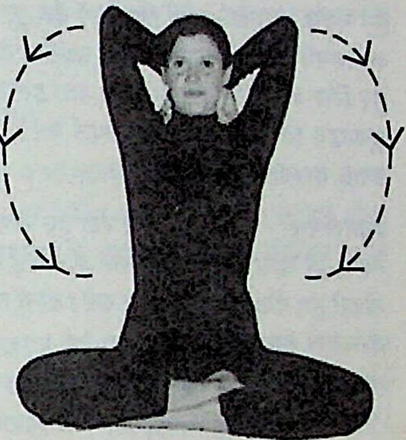

कन्धों को घुमाना (१)

(५) कन्धों को घुमाना — मूलस्थिति में बैठकर हाथों को सामने फैलाएं। कोहनियों को मोड़कर अंगुलियों से कन्धे को स्पर्श करें। अब श्वास लेते हुए मुड़े हुए हाथों को ऊपर उठाइए और बाजू में फैलाइए, इसके पश्चात् श्वास छोड़ते हुए नीचे की ओर करके अपने बगल को स्पर्श करते हुए सामने की ओर लाइए। इस प्रकार कि कोहनियां अपने सीने के सामने एक-दूसरे से स्पर्श करें। ऐसे वृत्ताकार में दस आवृत्ति सीधी और दस आवृत्ति उल्टी करें।

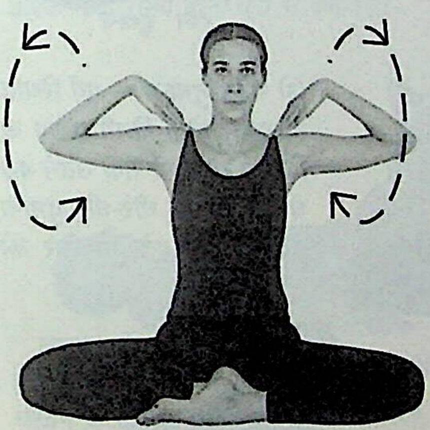

कन्धों को घुमाना (२)

प्रकारान्तर — हाथों को बगल में फैलाकर बैठिए, कोहनियों को मोड़िए। अंगुलियों को कन्धे पर रखे हुए कन्धों को आधे जोड़ों से वृत्ताकार दस बार दाईं ओर से और दस बार बाईं ओर से घुमाइए। श्वास सामान्य रहे।

पवन मुक्तासन (गठिया निरोधक अभ्यास) — शिरःपवनमुक्तासन

(१) गर्दन झुकाना — सुखपूर्वक किसी ध्यान के आसन में बैठकर दोनों हाथों को जांघों के दोनों ओर जमीन पर रखिए। धीरे- धीरे श्वास छोड़ते हुए सिर को झुकाइए जब तक कि ठुड्डी सीने को न छुए। फिर श्वास लेते हुए सिर को पीछे की ओर यथासम्भव झुकाइए। दस बार दुहराइए।

(२) गर्दन मोड़ना — पूर्व स्थिति में बैठे हुए मुँह को सामने की ओर रखकर श्वास सामान्य रखते हुए सिर को धीरे-धीरे दाएं और बाएं इस तरह झुकाइए कि कान कन्धों को स्पर्श करें। दोनों तरफ दस-दस बार दुहराइए।

प्रकारान्तर — सिर को सीधा रखे हुए सामान्य श्वास के साथ केवल दाई ओर और बाई ओर मोड़ते हुए पीछे की ओर दृष्टि करें। दोनों तरफ दस-दस बार दुहराइए।

गर्दन झुकाना

गर्दन मोड़ना
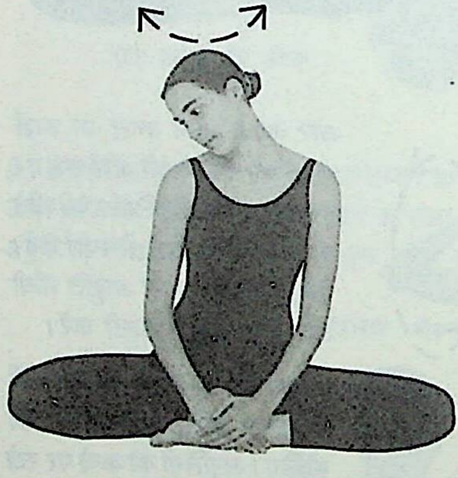

(३) गर्दन घुमाना — पूर्व स्थिति में रहकर बिना किसी तनाव के जितना संभव हो सके उतने बड़े घेरे में सिर को धीरे-धीरे घुमाना है। श्वास छोड़ते हुए सिर को पहले सामने झुकाइए और घुमाते हुए दाहिनी ओर जाएं जिससे दाएं कान का स्पर्श कन्धे से हो। अब श्वास लेते हुए पीछे की ओर झुकाते हुए बाएं कन्धे की ओर घुमाइए जिससे बायां कान कन्धे से स्पर्श करे। पुनः श्वास छोड़ते हुए सामने की ओर घुमाते हुए लाइए, इस प्रकार झुकाइए कि ठुड्डी सीने को स्पर्श करे। ध्यान रखें एक कन्धे से दूसरे की ओर

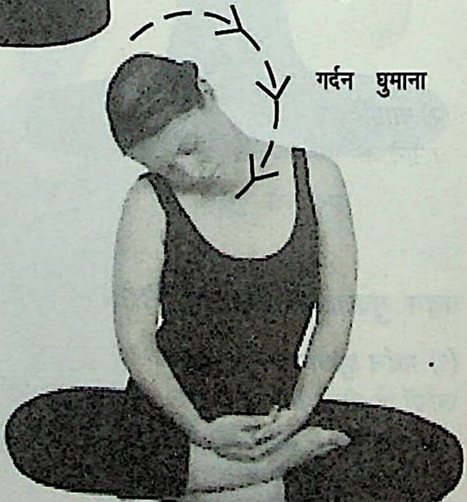
गर्दन घुमाना

सामने झुकते हुए श्वास छोड़ें और पीछे झुकते हुए श्वास लें। ऐसे दस बार करने के बाद विपरीत दिशा से भी दस आवृत्ति करें।

पवनमुक्तासन (वातनिरोधक अभ्यास)

इस आसन समूह से कब्ज़, अपच, स्नायु व माँसपेशी की गड़बड़ी, शरीर में टूटन, दर्द आदि से पीड़ित लोगों को लाभ होगा और कठिन आसन करने में शरीर को योग्य एवं सक्षम बनाएगा। शरीर एवं मन को शवासन में लेटाकर शान्त एवं शिथिल करके अभ्यास शुरू करें।

(१) पैर घुमाना — पीठ के बल लेट जाइए। पैरों को सीधा रखें। हाथों को शरीर के दोनों ओर रखें। हथेलियों से जमीन को दबाते हुए दाहिने पैर को सीधा रखकर (बिना मोड़े) जमीन से ऊपर यथासम्भव उठाइए और दाहिनी ओर वृत्ताकार में घुमाइए। पैर जमीन को न छुएं और कहीं से भी न मोड़ें। दस बार अभ्यास करें। फिर बाईं ओर से भी दस बार अभ्यास करें। इसी प्रकार बाएं पैर से कीजिए। कुछ क्षण विश्राम करके यथासम्भव दोनों पैरों से कीजिए।

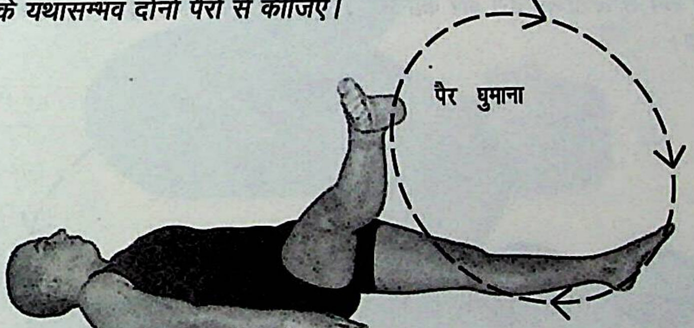

(२) साइकिल चलाना — जमीन पर चित लेटिए। दाहिने पैर को उठाकर साइकिल चलाने के जैसे घुमाइए। दस बार सीधा एवं दस बार उल्टा पैडल घुमाने के समान

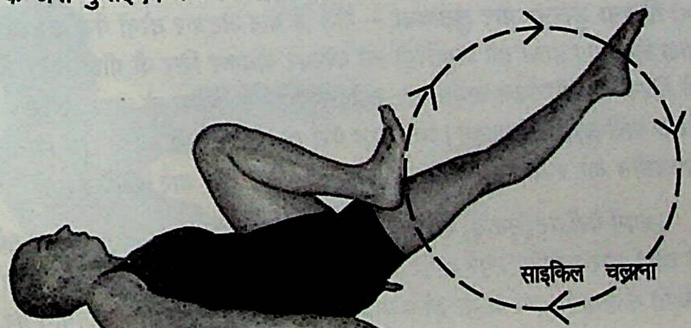

घुमाइए। इसी प्रकार बाएं पैर से करें। फिर दोनों पैरों को एक साथ पृथक्-पृथक् साइकिल चलाने में जैसे होता है वैसे करें। इसके पश्चात् दोनों पैरों को जोड़कर एक साथ आगे-पीछे घुमाइए।

ध्यान रखें इन दोनों अभ्यासों में सिर सहित शरीर को जमीन पर सपाट रखें, अर्थात् उठाना नहीं। प्रत्येक अभ्यास के अनन्तर आवश्यकता के अनुसार शवासन में रहकर श्वास-प्रश्वास की गति को सामान्य होने दें।

(३) पैर मोड़ना — पीठ के बल लेट जाइए। दायां पैर मोड़कर जांघों को छाती के पास लाइए। दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर फांसकर बांध लें और दाएं घुटने पर रखिए। श्वास पूरा छोड़कर फेफड़ों को खाली कर लें। श्वास को बाहर रोकते हुए अर्थात् कुम्भक करते हुए सिर को इतना उठाइए कि नाक से घुटने को स्पर्श कर सकें। श्वास लेते हुए धीरे-धीरे सिर को नीचे कीजिए और पैर को सीधा करते हुए शवासन में लौटिए। शरीर को ढीला छोड़िए। दस बार दुहराइए। बाएं पैर से भी दस बार दुहराइए। फिर दोनों पैर एक साथ ऊपर उठाकर हाथों से घुटनों को पूर्ण रूप से लपेटकर दस बार कीजिए। इससे आमाशय सम्बन्धी रोग व कब्ज़ दूर होगा।

पैर मोड़ना

(४) हिलना-डुलना और लुढ़कना — पीठ के बल लेटकर दोनों पैरों को छाती तक मोड़ लीजिए। हाथों की अंगुलियों को परस्पर बाँधकर सिर के पीछे रखें। शेष हाथ के हिस्से को फैलाकर जमीन पर रखें। स्वाभाविक श्वास के साथ शरीर को दोनों तरफ बारी-बारी लुढ़काइए। ध्यान रहे पैरों के पंजे जमीन को न छुएं किन्तु घुटनों से जमीन को स्पर्श करने की कोशिश करें। ऐसे दस बार कीजिए।

अपने पैरों पर (उकड़ूं) बैठ जाइए। दोनों पैर सटाकर रखें और भुजाओं को घुटने के चारों ओर लपेटिए। पूरे शरीर को रीढ़ पर कसकर धीरे-धीरे लुढ़किए फिर उकड़ूं स्थिति में आइए। इस क्रिया को दस बार कीजिए। ध्यान रहे केवल जमीन पर अथवा

हिलना-डुलना

पतले कम्बल आदि पर न करें और लुढ़कते वक्त ध्यान रखें कि सिर जमीन से न टकराए। कई परतों में मोड़े गए मोटे कम्बल पर यह क्रिया करें। इससे पीठ, कमर और नितम्बों की मालिश होती है किन्तु मेरुदण्ड सम्बन्धी शिकायत वाले इस क्रिया का अभ्यास न करें।

लुढ़कना

(५) नौकासन – शवासन में लेटिए किन्तु हथेलियों को जमीन की ओर करें एवं पैरों को सटाकर रखें। श्वास लीजिए और पैरों, भुजाओं, सिर एवं धड़ को जमीन से ऊपर उठाइए। सिर जमीन से एक फुट से अधिक न उठाएं। भुजा एवं पैर की

नौकासन

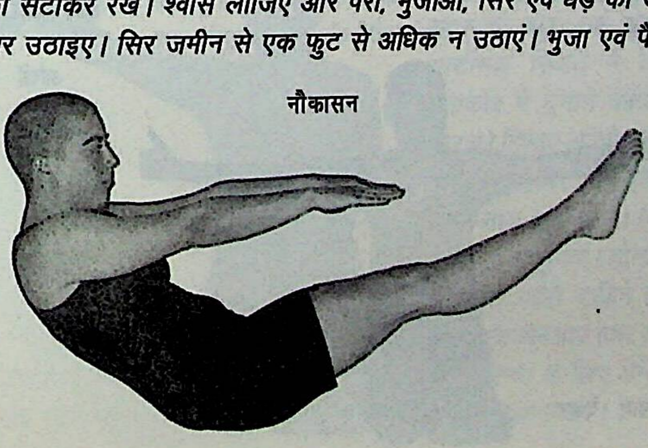

अंगुलियों को एक सीध में रखें ताकि हाथ की अंगुलियों के ऊपर से पैर की अंगुलियों पर दृष्टि कर सकें। आराम से जितनी देर सम्भव हो उतनी देर कुम्भक करते हुए रुकें। इसके पश्चात् श्वास छोड़ते हुए धीरे-धीरे जमीन पर वापस लौटिए। पूरे शरीर को ढीला छोड़िए। इस आसन को पांच बार दुहराइए। उठी हुई स्थिति में शरीर को अधिक-से-अधिक उतने समय तक रखें जब तक कि आमाशय की मांसपेशियों में कंपन का अनुभव न हो। यह आसन स्नायविक दुर्बलता एवं तनाव पीड़ित लोगों के लिए उपयोगी है।

पवनमुक्तासन – दृष्टिवर्धक अभ्यास

मनुष्य के लिए दृष्टि एक अद्भुत वस्तु है क्योंकि इसी से वह ज्ञान सरलता से हासिल करता है। इसलिए इसे दोषरहित स्वस्थ बनाए रखना सभी के लिये वांछनीय है। ध्यान रहे प्रत्येक अभ्यास को यद्यपि जब चाहें तब कर सकते हैं फिर भी हरियाली के बीच में प्रातः और सायं करें तो अधिक लाभ मिलेगा। प्रत्येक अभ्यास के बाद आधा मिनट आँख बन्द रखें।

(१) आंखों पर हथेलियां रखना – उगते हुए सूरज के सामने आंखें बन्द करके बैठें। अपनी हथेलियों को आपस में रगड़कर गरम कर लें और उन्हें तुरन्त आंखों पर रखिए। कुछ क्षण ऐसे अनुभव करें कि हथेलियों से गरमी एवं शक्ति निकलकर आंखों में जा रही है। हथेलियां ठण्डी होने पर हटाइए। आंखें बन्द रखें। ऐसा तीन बार दुहराइए।

आंखों पर हथेलियां रखना

(२) दाएं-बाएं देखना – ध्यान के किसी आसन में बैठें। भुजाओं को कंधों की ऊंचाई तक दोनों ओर सीधे फैलाइए। अंगूठे ऊपर

दाएं-वाएं देखना

की ओर रखें। सिर को बिना हिलाए व घुमाए केवल आंखों को क्रम से घुमाते हुए दृष्टि को क्रमशः बाएं हाथ के अंगूठे पर, भ्रूमध्य, दाएं हाथ के अंगूठे पर, पैर के अंगूठे पर ले जाएं। इस चक्र को पन्द्रह से बीस बार दुहराइए। आधा मिनट के लिए आंखें बन्द करके विश्राम कीजिए। पुनः विपरीत क्रम से १५-२० बार करें।

(३) सामने और दाएं-बाएं देखना — पूर्व स्थिति में बैठे हुए बाएं हाथ को सामने फैलाकर अंगूठे को ऊपर की ओर करके रखें। दाईं भुजा को दाईं ओर बाजू में कंधे की ऊंचाई पर फैलाएं। सिर बिना घुमाए व हिलाए केवल दृष्टि को बारी–बारी से बाएं हाथ के अंगूठे और दाएं हाथ के अंगूठे पर केन्द्रित करें। इसे पन्द्रह–बीस बार करने के पश्चात् दाएं हाथ को घुटने पर और बाएं हाथ को बाईं ओर बाजू में फैलाकर अभ्यास पन्द्रह-बीस बार करें। ऐसा तीन बार दुहराइए।

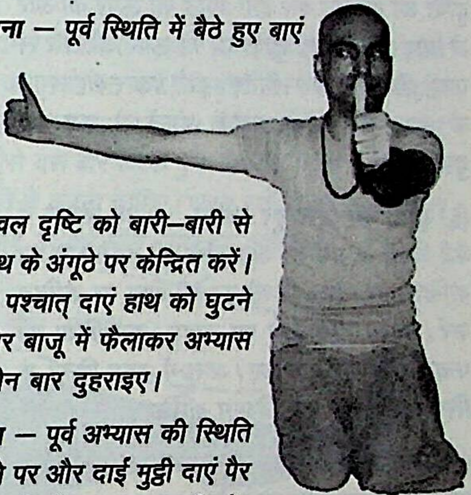

सामने और दाएं-बाएं देखना

(४) दृष्टि को वृत्ताकार घुमाना — पूर्व अभ्यास की स्थिति में बैठकर बायां हाथ बाएं घुटने पर और दाईं मुट्ठी दाएं पैर के ऊपर रखिए। दायां अंगूठा मुट्ठी के बाहर ऊपर की ओर हो। दाईं भुजा को सीधी रखें। एक बड़ा घेरा बनाते हुए दाएं अंगूठे को दाईं ओर से घुमाते हुए ऊपर की ओर, बाईं ओर और आरम्भिक स्थिति में लाइए। वृत्ताकार में घुमाते वक्त बिना सिर को हिलाए आंखों को घूमते हुए अंगूठे पर केन्द्रित कर साथ-साथ घुमाना है। विपरीत दिशा से भी घुमाएं। दोनों तरफ पांच बार पहले दाहिने हाथ से फिर पांच बार बाएं हाथ से करें। आधा मिनट के लिए आंखें बन्द करके विश्राम करें।

दृष्टि को वृत्ताकार घुमाना

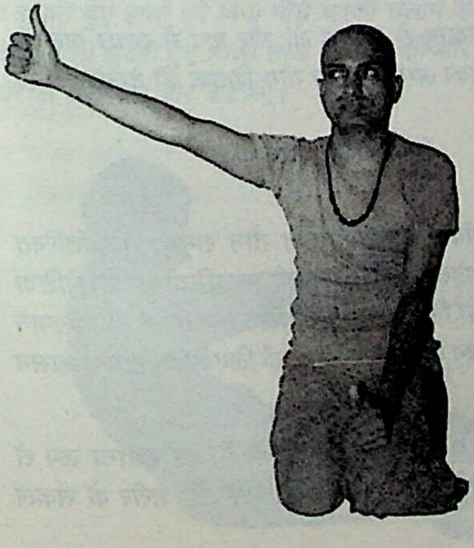

(५) दृष्टि को ऊपर-नीचे करना — पूर्व स्थिति में ही बैठे हुए दोनों हाथों की मुट्ठियों को घुटनों पर रखें, अंगूठे बाहर ऊपर की ओर रहें। भुजाओं को सीधी रखकर बिना सिर को हिलाए दाएं अंगूठे पर दृष्टि को केन्द्रित कर दाएं अंगूठे को ऊपर की ओर ले जाएं, साथ-साथ दृष्टि को भी ऊपर की ओर ले जाएं, धीरे-धीरे नीचे लौटिए। इसी प्रकार बाएं अंगूठे के साथ करें। ऐसे प्रत्येक अंगूठे से दस बार दुहराइए।

(६) दृष्टि को पास-दूर करना — पूर्व स्थिति में बैठें किन्तु आराम से। अब दृष्टि को नासिकाग्र पर केन्द्रित करें। फिर किसी दूर की वस्तु पर केन्द्रित करें। वापस नासिकाग्र पर लाइए। इस क्रिया को पन्द्रह-बीस बार दुहराइए। अन्त में आधा मिनट के लिए आंखें बन्द कर विश्राम कीजिए।

(७) अन्य अभ्यास — आंखों के लिए लाभकारी अन्य आसन जिनका वर्णन आगे किया जाएगा, इस प्रकार हैं — शीर्षासन, सर्वांगासन, सूर्य नमस्कार, सूर्यभेदी प्राणायाम, नेति-क्रिया (इसका वर्णन कर दिया गया है), त्राटक इत्यादि।

दृष्टि को ऊपर-नीचे करना

प्रतिदिन आंखों को पहले शिवाम्बु से (स्वमूत्र से) और बाद में स्वच्छ जल से धोना सर्वोत्तम साधन है किन्तु इसका अभ्यास योग्य योग-शिक्षक की देखरेख में ही करें।

शक्तिबन्ध आसन समूह

प्रारम्भिक अभ्यास के अन्तर्गत पवनमुक्तासन (उक्त तीन समूह) से अतिरिक्त **शक्तिबन्ध आसन समूह** अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जिन नये अभ्यासियों की मांसपेशियां तथा जोड़ें कड़े हों उनके लिए तथा नित्य योगाभ्यासी जिनके शरीर में भी खानपान अथवा अन्य किसी कारणवश कड़ेपन का अनुभव हो उनके लिए भी शक्तिबन्ध आसन समूह अत्यन्त प्रभावशाली होगा।

प्राण के रूप में शक्ति शरीर के प्रत्येक भाग में रहती है। वह स्वतन्त्र रूप से प्रवाहित होती रहे तो शरीर से विषैले तत्त्व बाहर हो जाएंगे और शरीर के सकल

क्रिया-कलाप सुचारु रूप से चलते रहेंगे। विशेषतः नलिकाविहीन ग्रन्थि-प्रणाली संतुलित रहती है। अतः शारीरिक गतिविधियों में सामञ्जस बनाए रखने एवं उच्च आसन प्राणायाम आदि साधना के योग्य बनाने के लिए शक्तिबन्ध-आसन समूह का अभ्यास आवश्यक है।

(१) **नौका संचालन** — पैरों को सामने फैलाकर सटाकर बैठिए। पैरों को बिना मोड़े नाव चलाने के अन्दाज में शरीर को संचालित करें। जितना संभव हो सके उतना आगे-पीछे झुकते हुए हाथ को साथ में पतवार चलाने के समान चलाइए। ऐसे दस बार करके पुनः विपरीत दिशा में भी करें। मध्यम गति में करना चाहिए। ध्यान रखें झुकते वक्त श्वास छोड़ें और उठकर पीछे जाते हुए श्वास लें।

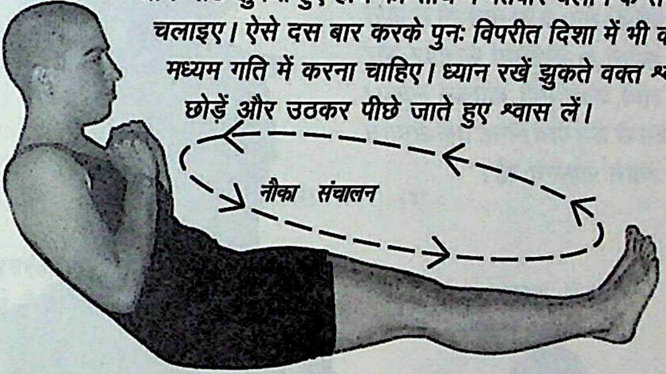

(२) **चक्की चलाना** — पूर्व स्थिति में बैठे हुए पैरों को सटाकर रखें अथवा दो फुट दूरी पर रखें। हाथों को सामने सीधे फैलाकर अंगुलियों को आपस में फंसाकर कमर से झुकते हुए हाथों को बिना मोड़े चक्की चलाने के समान वृत्ताकार घुमाइए। इस क्रिया में भी झुकते हुए श्वास छोड़ें एवं पीछे की ओर जाते हुए श्वास लीजिए। दोनों ओर से दस-दस बार कीजिए।

चक्की चलाना

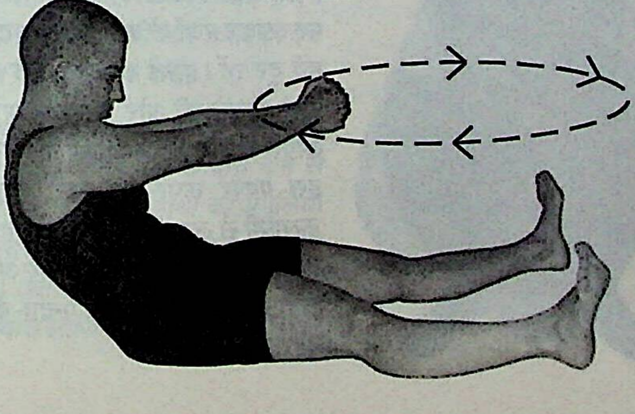

(३) रस्सी खींचना — *उकडूं बैठें अथवा पैर सामने फैलाकर सटाकर बैठिए। हाथों को क्रमशः ऊपर उठाइए और नीचे लाइए। लेकिन नीचे लाते वक्त हाथ को कसकर तनाव पैदा करके ऐसी भावना करनी है कि मानो आप कुएं से पानी भरी बाल्टी को ऊपर लाने के लिए रस्सी को खींच रहे हैं। अतः ऊपर हाथ को ले जाते वक्त हथेली व अंगुलियां फैलाइए और नीचे लाते वक्त मुट्ठी बांधकर लाइए। ऐसे कम से कम पांच मिनट तक अभ्यास करें। श्वास सामान्य रहे।*

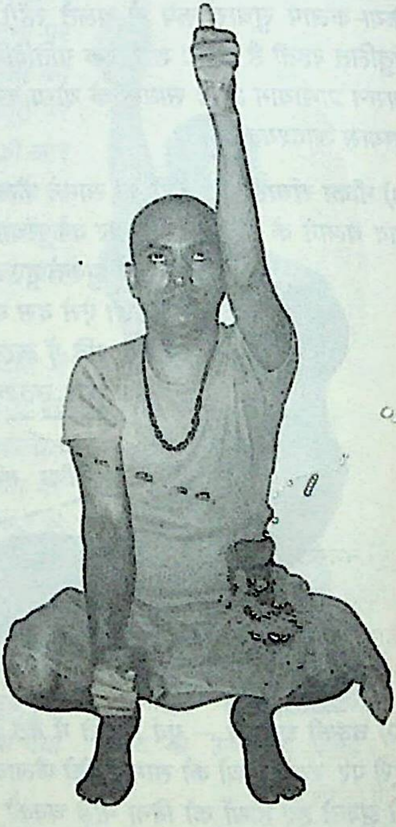

रस्सी खींचना

लकड़ी काटना

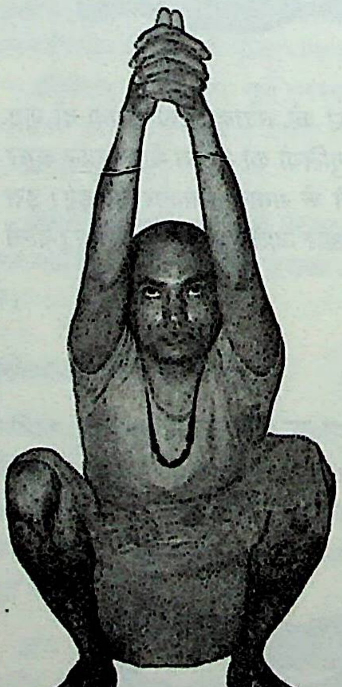

(४) लकड़ी काटना — *पैरों को थोड़ी दूरी पर रखकर पंजों के बल बैठिए। घुटने झुके हुये दूर रहें। हाथों को घुटनों के बीच से सीधे सामने की ओर फैलाकर अंगुलियां आपस में बाँध लें। अब हाथों को बिना मोड़े इस प्रकार ऊपर-नीचे करें मानो आप कुल्हाड़ी से लकड़ी काट रहे हों। हाथों को ऊपर उठाते समय श्वास लीजिए और नीचे जाते समय श्वास छोड़िए। पन्द्रह-बीस बार दुहराइए।*

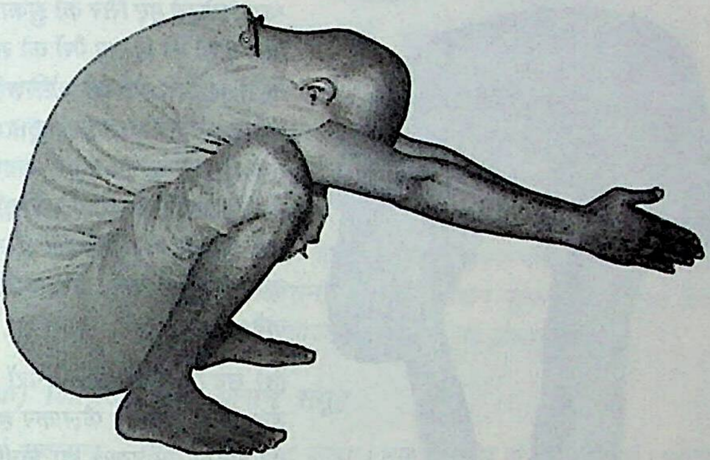

नमस्कार करना (१)

(५) नमस्कार करना — जमीन पर पूर्ववत् उकड़ूं बैठें और घुटनों को दूर-दूर रखें। हाथों को प्रार्थना की मुद्रा में जोड़कर सिर थोड़ा पीछे की ओर झुकाएं और आकाश की ओर दृष्टि करें। अब कोहनियों से घुटनों को अन्दर की तरफ से दबाते हुए फैलाने की कोशिश करें, लम्बी श्वास लें। कुछ क्षणों तक रुककर श्वास छोड़ते हुए भुजाओं को सामने की ओर सीधा कीजिए और सिर को सामने की ओर झुकाइए। साथ ही घुटनों से भी कोहनी को स्पर्श करें अर्थात् घुटनों से हाथों को अन्दर की ओर दबाइए। इस अभ्यास को दस बार करें।

नमस्कार करना (२)

(६) वायु निष्कासनासन — पूर्ववत् पंजों के बल उकड़ूं बैठें। पैरों के बीच कम से कम दो फुट दूरी रखें। हाथों की अंगुलियों को अन्दर की तरफ से तलवों के नीचे रखिए। अतः हाथों को घुटनों के भीतर रखें। श्वास लीजिए और सिर उठाइए। अब

श्वास छोड़ते हुए सिर को झुकाकर बिना हाथों को हिलाए पैरों को सीधा करते हुए खड़े होने की कोशिश करें अर्थात् शरीर को उठाइए। कुछ क्षण तक कुम्भक लगाकर इस अवस्था में रहें। आरम्भिक स्थिति में लौटें। इसे दस बार कीजिए। इस अभ्यास को आराम से करें, जबरदस्ती न करें।

वायु निष्कासनासन

(७) उदराकर्षणासन — पैरों को डेढ़ से दो फुट दूर फैलाकर हाथों को घुटनों पर रखते हुए पंजों के बल उकडूं बैठिए। जितना सम्भव हो सके, धड़ को दाहिनी ओर मोड़ते हुए शरीर के पीछे की तरफ देखें और साथ ही साथ बाएं घुटने को दाहिने पैर पर झुकाकर स्थापित करें। हथेलियां घुटनों पर स्थिर रखें। इस क्रिया को श्वास छोड़कर करें। श्वास लेते हुए आरम्भिक स्थिति में लौटिए। इसी प्रकार बाईं ओर मोड़ते हुए करें। दस बार दोनों तरफ दुहराइए।

पाचक अंगों एवं मांसपेशियों की मालिश इससे अच्छी तरह से होती है इसलिए इससे पाचन सम्बन्धी सकल रोगों से मुक्ति होगी।

उदराकर्षणासन

ध्यान के आसन

योग के उच्च अभ्यास *ध्यान* को करने के लिए मन एवं शरीर को तैयार करना होगा, क्योंकि लम्बे समय तक बैठना पड़ता है। अतः शिथिलीकरण के आसन एवं ध्यानपूर्व आसन समूह का अभ्यास करना उचित होगा। **शिथिलीकरण** के आसनों में शवासन, अद्वासन, मकरासन, ज्येष्टिकासन, मत्स्यक्रीड़ासन आदि हैं। **ध्यानपूर्व** आसन समूह में अर्ध-तितली, पूर्ण-तितली, कौआ-चाल,पशुविश्रामासन इत्यादि हैं। **ध्यान** के आसनों में पद्मासन, अर्धसिद्धासन, सिद्धासन, सिद्धयोनि आसन, सुखासन, वज्रासन इत्यादि हैं। इनमें से क्रमशः कुछ अति आवश्यक आसनों पर प्रकाश डालेंगे।

(क) शिथिलीकरण आसन समूह

(१) शवासन — पीठ के बल लेट जाइए। भुजाएं शरीर के बगल में रहें। हथेलियां ऊपर की तरफ खुली रखें। पैरों को थोड़ा दूर-दूर आराम की स्थिति में रखें। आखें बन्द रहें। पूरे शरीर को ढीला छोड़िए। शरीर का कोई भी भाग हिलना नहीं चाहिए। श्वास स्वाभाविक चलती रहे, आप उस पर मन को स्थापित करें एवं उसके आवागमन पर जागरूक रहते हुए गिनते जाइए। जब तक तन-मन पूर्ण रूप से शिथिल न हो तब तक करें।

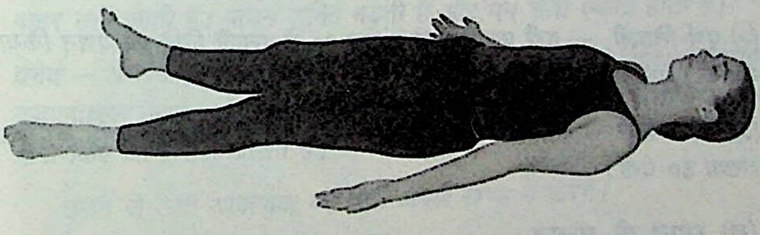

शवासन

(२) अद्वासन — पेट के बल लेट जाइए। दोनों भुजाओं को बगल में हथेलियों को ऊपर की ओर करके रखें अथवा सामने की ओर सिर का स्पर्श करते हुए सीधा फैलाकर हथेलियों को नीचे की ओर रखें। शेष क्रिया शवासन के समान करें।

अद्वासन

(३) मकरासन I— पूर्ववत् पेट के बल लेटिए। कोहनियों के सहारे सिर और कन्धों को उठाइए। हथेलियों पर ठुड्डी को स्थापित करें। शेष क्रिया शवासन के समान करें। मकरासन II पृष्ठ संख्या ११५ में देखें।

मकरासन

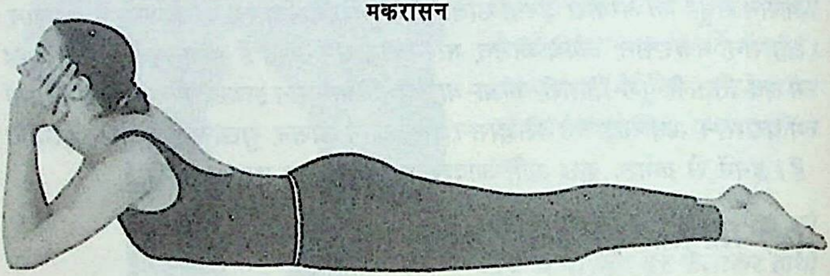

(ख) ध्यानपूर्व-आसन समूह

(१) अर्ध-तितली — शरीर-शुद्धि नामक प्रथम प्रकरण के आसन विज्ञान नामक तीसरे अध्याय में प्रारम्भिक अभ्यास के अन्तर्गत गठियानिरोधक-पवनमुक्तासन समूह में पादपवनमुक्तासन अभ्यास संख्या ८ में इसकी विधि का वर्णन किया गया है। पृष्ठ संख्या ५६ देखें।

(२) पूर्ण-तितली — वहीं पर अभ्यास संख्या १० में इसकी विधि का वर्णन किया गया है। पृष्ठ संख्या ६० देखें।

(३) कौआ-चाल — वहीं पर अभ्यास संख्या ११ में इसकी विधि का वर्णन है। पृष्ठ संख्या ६० देखें।

(ग) ध्यान के आसन

(१) पद्मासन

विधि — पैरों को सामने फैलाकर बैठ जाइए। दाहिने पैर को मोड़कर बाईं जांघ पर इस प्रकार रखें कि एड़ी कुल्हे की हड्डी का स्पर्श करे। तलवा ऊपर की ओर रहे। इसी तरह बाएं पैर को दाहिनी जांघ पर स्थापित करें। हो सके तो दोनों एड़ियों को सटाइए। दोनों हाथों को ज्ञानमुद्रा अथवा चिन्मुद्रा में घुटनों पर रखें। कमर व गर्दन सीधी रखें। आज्ञाचक्र पर भ्रूमध्य में ध्यान करें। आँखें बन्द रखें। चट्टान जैसी स्थिरता की भावना के साथ तीन घण्टे तक लगातार बैठने की क्षमता आने तक अभ्यास करें। आसन जय के बिना प्राणायाम व ध्यान सफल नहीं हो सकता।

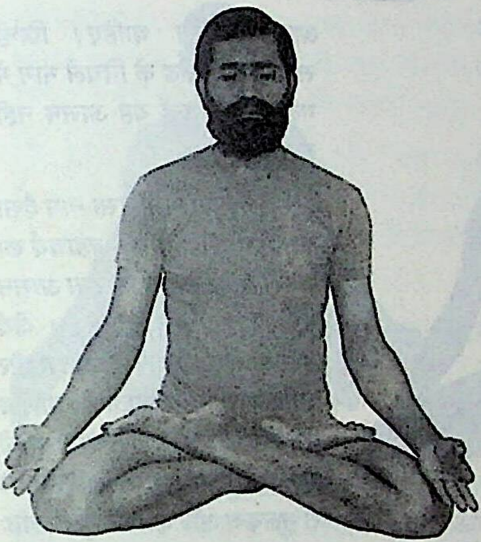

पद्मासन

लाभ – जैसा नाम वैसा काम, जैसे पद्म (कमल) पानी में रहते हुए भी पानी से अलग रहता है वैसे साधक संसार में रहते हुए संसार से अलग रह सकता है। अतः यह ध्यान के लिये सर्वश्रेष्ठ आसन है क्योंकि इससे पैरों में रक्त-संचार कम होकर मस्तिष्क में रक्त प्रवाह बढ़ता है। पूरा नाड़ी-संस्थान पुष्ट होता है जिससे पैरों के दोष गठिया, साइटिका आदि दूर हो जाते हैं। नाभि के बाईं ओर स्थित सरस्वती नाड़ी के दबने से सुषुम्ना नाड़ी से प्राण संचार होने लगता है जो ध्यान के लिये अति आवश्यक है। इस आसन से शक्ति संचय होती है क्योंकि इन्द्रियां शान्त होती हैं और पैरों, पंजों तथा अंगुलियों के पोरों से ऊर्जा बाहर नहीं जाती है। पाचन शक्ति बढ़ती है और मन शीघ्र एकाग्र होता है।

प्रभेद – अर्धपद्मासन, वीरासन, पर्वतासन, समासन, कार्मुकासन, उत्थित पद्मासन, बद्धपद्मासन, ऊर्ध्व-पद्मासन, लोलासन, कुक्कुटासन, तोलांगुलासन इत्यादि पद्मासन द्वारा किए जाने वाले आसन हैं।

इनमें से अति आवश्यक की चर्चा अगले खण्ड में करेंगे।

(२) सिद्धासन

विधि – पैरों को सामने फैलाकर बैठें। बाएं पैर को मोड़कर एड़ी से गुदा और जननेन्द्रिय के बीच में स्थित सीवन नाड़ी को दबाते हुए तलवे को दाईं जांघ से सटाइए। दाएं पैर को मोड़कर एड़ी को जननेन्द्रिय के मूल पर इस प्रकार रखें कि बाएं पैर के टखने पर दाएं पैर का टखना आ जाए। अब बाएं पंजे को जंघा व पिण्डली के बीच में स्थिर करें। कमर व गर्दन सीधी रहें। आँखें बन्द करके हाथों को ज्ञानमुद्रा अथवा चिन्मुद्रा में रखें। ध्यान का केन्द्र – आज्ञाचक्र।

ध्यान रहे केवल पुरुषों को यह आसन करना चाहिए। महिलाओं को सिद्धयोनि

सिद्धासन

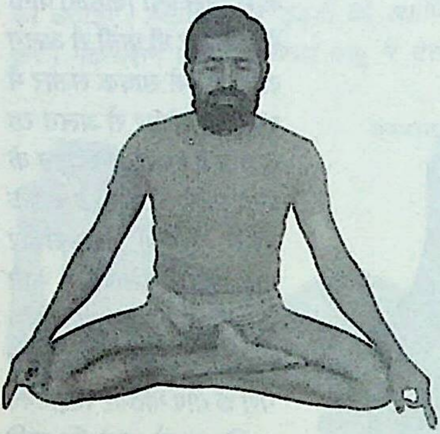

आसन करना चाहिए। जिन्हें साइटिका व रीढ़ के निचले भाग में गड़बड़ी हो उन्हें यह आसन नहीं करना चाहिए।

लाभ — इसका भी जैसा नाम वैसा काम — क्योंकि योग में ब्रह्मचर्य का पालन मुख्य साधन है। इस आसन से ब्रह्मचर्य सिद्ध होता है। वीर्य सम्बन्धी सभी दोष दूर हो जाते हैं और वीर्य ऊर्ध्वगामी हो जाता है। प्राण व मन में स्थिरता व उपस्थेन्द्रिय की शुक्रवाहिनी नाड़ियों के शिथिल होने से मूलबन्ध और वज्रोलि मुद्रा स्वतः लग जाती है, फलस्वरूप शरीर की तीनों शक्तियां (भावनात्मक, मानसिक व शारीरिक) संतुलित होती हैं जिससे ध्यान अनायास होने लगता है।

प्रकारान्तर — अर्धसिद्धासन — पूर्वोक्त विधि को ही करें। फर्क इतना है कि दाहिने पैर को मोड़कर बायीं जाँघ पर रखें।

प्रभेद — गुप्तासन, वीर्यासन, बद्धयोन्यासन, क्षेमासन, स्थिरासन, मुक्तासन इत्यादि सिद्धासन द्वारा किए जाते हैं।

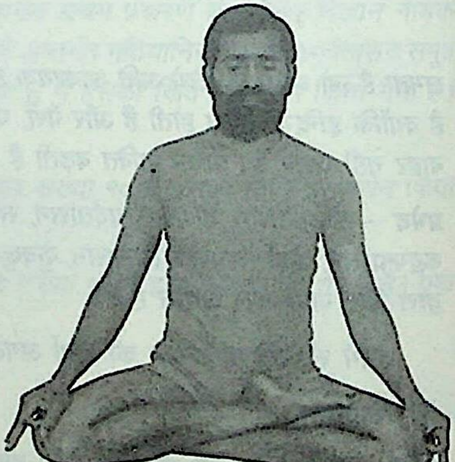

अर्ध सिद्धासन

(३) स्वस्तिकासन

विधि — पैरों को सामने फैलाकर बैठें। बाएं पैर को मोड़कर पंजे को दायीं जांघ के पास रखें। दाएं पैर को मोड़कर केवल अंगुलिभाग को बाईं जांघ व पिण्डलियों के बीच फंसाइए। इस प्रकार दोनों पैरो की अंगुलियां जांघ व पिण्डली के बीच फंसाकर बैठें अथवा दोनों पैरों की अंगुलियों को बाहर की ओर करके बैठें, जैसे कि चित्र में दिखाया गया है। हाथों को ज्ञानमुद्रा अथवा चिन्मुद्रा में घुटनों पर रखें। रीढ़ व गर्दन

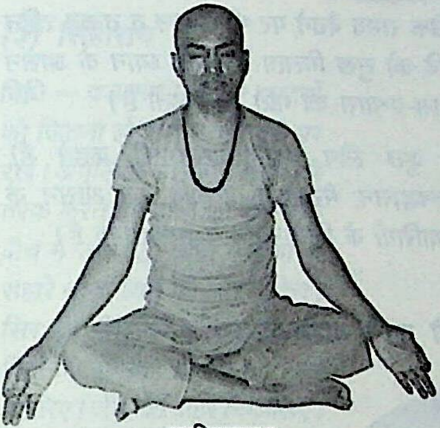

स्वस्तिकासन

को सीधा रखें। ध्यान केन्द्र — आज्ञा-चक्र।

यह आरम्भिक साधक के लिए ध्यान का सरल आसन है। रीढ़ की समस्या वाले विशेषतः साइटिका से पीड़ित लोग इस आसन को न करें।

लाभ — स्वस्तिक का अर्थ है मंगलकारी। अतः यह आसन साधक को प्रसन्नता व सर्वसुख देता है। उच्चस्तरीय प्राणायामादि का अभ्यास इसमें सरलतापूर्वक कर सकते हैं। संपूर्ण नाड़ी संस्थान इससे सक्रिय होता है। पैरों में ठण्ड पड़ना व दर्द मिटता है तथा अधिक पसीना निकलने की बीमारी ठीक होती है। जप-त्राटकादि क्रियाओं के लिए अत्यन्त सरल एवं लम्बे समय तक बिना परेशानी के इस आसन में बैठ सकते हैं।

(४) सुखासन

विधि — दोनों पैर सामने फैलाकर बैठें। दाएं पैर को मोड़कर पंजे को बाएं पैर की जांघ के नीचे रखें। फिर बाएं पैर को मोड़कर पंजे को दाईं जांघ के नीचे रखें। हाथों को घुटनों पर ज्ञानमुद्रा व चिन्मुद्रा में रखें। कमर व गर्दन सीधी रहे। ध्यान का केन्द्र — आज्ञा-चक्र।

इस आसन में अधिक समय बैठने के इच्छुक घुटनों को थोड़ा उठाकर छाती की ओर लाएं और एक कपड़े या तौलिए से घुटनों और पीठ के चारों तरफ वृत्ताकार में बांधकर बैठ सकते हैं। विशेषतः बूढ़े व सख्त पैरों वाले जवान इस प्रकार अभ्यास शुरू कर सकते हैं।

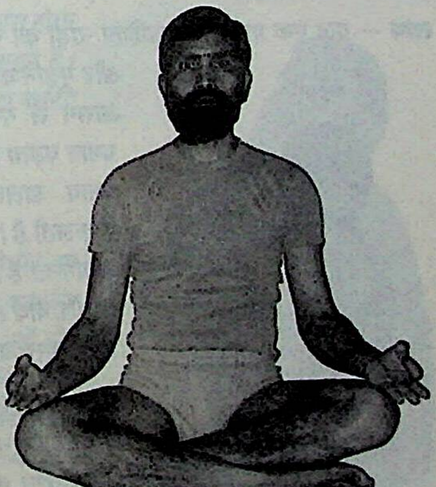

सुखासन

लाभ — नाम के अनुसार इसमें अधिक समय बैठने पर भी थकान व तनाव रहित शरीर के कारण देह, प्राण, मन आदि को सुख मिलता है। अन्य ध्यान के आसन के अभ्यास के योग्य बनाता है। श्वास-प्रश्वास की गति सम रहती है।

प्रभेद — हस्तपादबद्धासन (इसे कुछ लोग पवनमुक्तासन भी कहते हैं), वामपादहस्तबद्धासन, दक्षिणपादहस्तबद्धासन, भैरवासन, इत्यादि इस आसन के प्रकारान्तर है जो कि आरम्भिक अभ्यासियों के लिये सुगम व लाभदायक हैं।

बैठकर किये जाने वाले आसन

(१) वज्रासन

विधि — घुटनों के बल बैठिए। पंजों को पीछे फैलाकर एक पैर के अंगूठे को दूसरे के अंगूठे पर रखें अथवा स्पर्श करें। एड़ियां अलग रहें किन्तु घुटनों को सटाए रहें। अब नितम्बों को पंजों के बीच में रखिए, अतः एड़ियां कुल्हों की तरफ हों। हथेलियों को घुटनों पर रखिए। कमर व गर्दन सीधी रखें। शरीर ढीला रहे। श्वास सामान्य रहे। ध्यान का केन्द्र — मणिपुर-चक्र।

इसे मोटापा घटाने के लिए भोजन से पहले पन्द्रह मिनट करें और अपच, मन्दाग्नि आदि रोगियों को तथा स्वस्थ लोगों को भी इसे पन्द्रह से तीस मिनट तक भोजन के बाद करना चाहिए।

लाभ — वज्र एक प्राणशक्तिप्रवाहिका नाड़ी का नाम है। इसका सम्बन्ध जननेन्द्रिय और मूत्रनिष्कासन प्रणाली के साथ है। अतः इस आसन से गर्भाशय, आमाशय आदि पर विशेष प्रभाव पड़ता है। यह आसन 'कन्द' पर अत्यधिक प्रभाव डालता है जिससे ७२,००० नाड़ियां निकलती हैं। अतः इस आसन से होने वाले लाभ अनगिनत हैं। पेट के रोगी, साइटिका, गैस, पैरों के दोष, वीर्य सम्बन्धी दोष, मूत्र प्रणाली सम्बन्धी दोष आदि इस आसन से दूर होते हैं।

वज्रासन

प्रभेद — मण्डूकासन, अर्धशवासन, सुप्तवज्रासन, पादादिरासन, पर्वतासन, आनन्दमदिरासन, अंगुष्ठासन इत्यादि वज्रासन के प्रभेद हैं। कुछ अन्य आसनों का वर्णन आगे करेंगे।

(२) सिंहासन

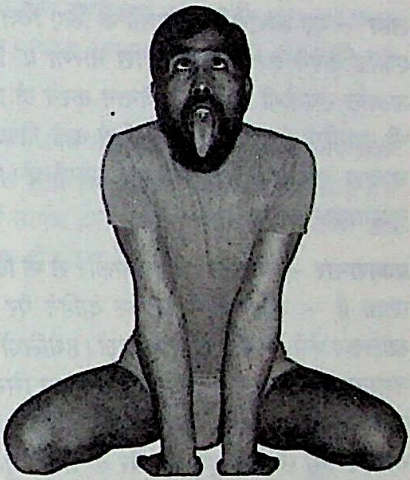

सिंहासन

विधि — वज्रासन में बैठिए। घुटनों को जितना हो सके उतनी दूरी पर रखें। अंगुलियों को अपने शरीर की तरफ करते हुए हाथों को घुटनों के बीच में जमाइए। सीधी भुजाओं के सहारे थोड़ा आगे की ओर झुकिए। सिर को पीछे की ओर लटकाकर जितना सम्भव हो उतना मुँह खोलिए। जीभ को बाहर निकालिए। आँखों को खोलकर भ्रूमध्य पर केन्द्रित करें। नाक से श्वास लेकर मुँह से स्पष्ट एवं स्थिर आवाज निकालते हुए धीरे-धीरे श्वास छोड़िए।

जीभ को दाएं-बाएं घुमाते हुए श्वास छोड़ सकते हैं। कम से कम दस बार दुहराइए। रोगी को पन्द्रह-तीस बार करना चाहिए। ध्यान का केन्द्र — विशुद्धि-चक्र।

लाभ — हकलाकर बोलने वालों तथा गले, नाक, कान और मुहँ की बीमारियों को दूर करने के लिए यह श्रेष्ठ आसन है। इससे स्वस्थ, गंभीर और मधुर स्वर का विकास होता है। इस आसन को **सर्वरोगहर** भी कहते हैं। अतः स्वस्थ व्यक्ति को भी नित्य करना चाहिए ताकि कोई रोग न सताए।

वीरासन

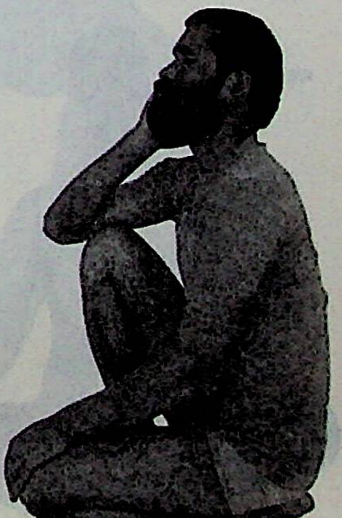

(३) वीरासन

विधि — वज्रासन में बैठिए। दाहिने पैर को खोलकर पंजे को बाएं घुटने के पास सटाकर रखिए। दाएं हाथ को दाएं घुटने पर रखें और हथेली पर सिर को ठुड्डी द्वारा स्थापित करें। आँखें बन्द कर लें। शरीर एवं मन को ढीला छोड़ें और विश्राम करें। श्वास सामान्य रहे। ध्यान का केन्द्र भ्रूमध्य अर्थात् आज्ञा-चक्र है।

लाभ — यह आरम्भिक अभ्यासी के लिए चित्त को एकाग्र करने एवं प्रत्याहार द्वारा धारणा के लिए अत्यन्त उपयोगी है। गहन चिन्तन करने के लिए भी उपयोगी है। विशेषतः पढ़ाई से थके विद्यार्थी, चञ्चल महिलाएं एवं तनावपूर्ण लोगों के लिए सुखदायक है।

प्रकारान्तर — वीरासन को इस प्रकार से भी किया जाता है — वज्रासन में बैठकर दाहिने पैर को खोलकर पंजे को बाई जांघ पर रखें। हथेलियों को नमस्कार की मुद्रा में अपने सामने उठाकर सिर के ऊपर ले जाइए। आंखें बन्द कर लें। पीछे की ओर स्वतन्त्र रूप से फैले हुए बाएं पैर के सहारे घुटनों के बल पर उठिए। कुछ क्षण रुककर वज्रासन में लौटिए। फिर पैर को बदलकर कीजिए। ध्यान का केन्द्र — आज्ञा-चक्र। कमर व गर्दन सीधी रहे। श्वास सामान्य।

लाभ — पीठ के दर्द आदि दूर हो जाते हैं। लेकिन ध्यान रहे शरीर सीधा रहे; न आगे की ओर झुके न पीछे की ओर।

वीरासन (प्रकारान्तर)

भद्रासन

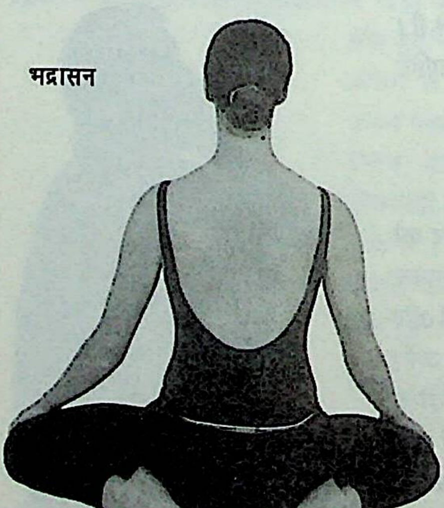

(४) भद्रासन

विधि — वज्रासन में बैठिए। घुटनों को जितना संभव हो उतना दूर-दूर करें। अब पंजों को ऐसा रखें कि अंगुलियों का सम्पर्क जमीन से बना रहे एवं नितम्बों को फ़र्श पर स्थापित करें। बिना तनाव के घुटनों का फासला बढ़ाइए। हथेलियों को नीचे की ओर करते हुए हाथों को घुटनों पर रखें। शरीर को सुखपूर्वक

स्थिर करके शरीर एवं मन को ढीला छोड़कर नासिकाग्र दृष्टि करें। ध्यान का केन्द्र — आज्ञा-चक्र अथवा स्वाधिष्ठान-चक्र। श्वास सामान्य रहे। कमर एवं गर्दन को सीधी रखें।

लाभ — आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त करने में अत्यन्त उपयोगी है क्योंकि मूलाधार-चक्र में स्थित कुण्डलिनी शक्ति इस आसन से शीघ्र ही उत्तेजित होकर सक्रिय होती है। शारीरिक दृष्टि से यह आसन शरीर में उत्पन्न होने वाले समस्त विषैले पदार्थों को नष्ट कर देता है। फलतः शरीर नीरोग हो जाता है।

(५) उष्ट्रासन

विधि — प्रथम स्थिति — वज्रासन में बैठिए। कंधों की चौड़ाई के अनुसार घुटनों के बीच में फासला रहे। घुटनों के बल पर खड़े हो जाइए। पीछे से दोनों पैरों के घुटनों को समान अन्तर में रखें। पंजों को जमीन पर लेटा दीजिए। अर्थात् पंजों का ऊपरी भाग जमीन पर रहे। धड़ को दाईं तरफ मोड़ते हुए पीछे की ओर झुकिए और दाएं हाथ से बाएं पैर की एड़ी को पकड़िए। सिर को थोड़ा पीछे झुकाते हुए बाईं भुजा (हाथ) को लम्बायमान रूप में सीधे सिर के ऊपर उठाइए तथा हथेली आगे की ओर हो। शरीर का पूरा भार बाईं एड़ी पर डालते हुए स्थिर हो जाएं। अपनी दृष्टि को बाएं हाथ की अंगुलियों पर केन्द्रित करें। विपरीत दिशा में भी इसी प्रकार दुहराइए। घुटनों पर उठते हुए श्वास लें। बगल की ओर मुड़ते हुए श्वास छोडें। स्थिर स्थिति में स्वाभाविक रहें। आरम्भिक स्थिति में लौटते हुए श्वास लीजिए। ध्यान का केन्द्र — संपूर्ण रीढ़ और विशेषतः मणिपुर-चक्र।

उष्ट्रासन (१)

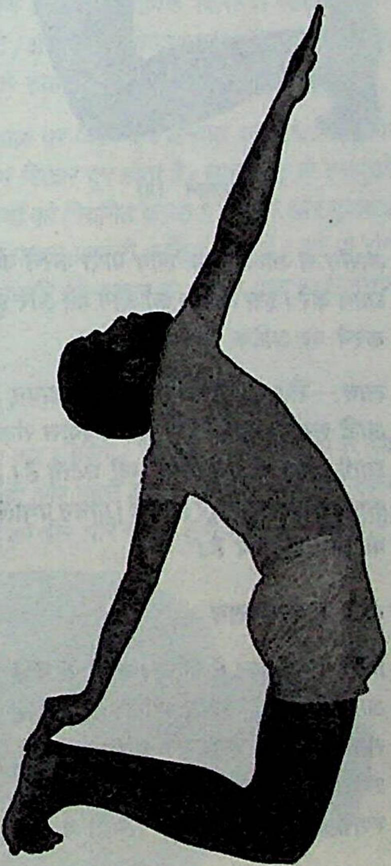

उष्ट्रासन (२)

द्वितीय स्थिति — वज्रासन में बैठने के पश्चात् पूर्ववत् घुटनों एवं पैरों को कन्धों की चौड़ाई के समान अन्तर में रखें एवं पंजों को लिटाइए। गर्दन तथा शरीर को धीरे-धीरे पीछे की ओर झुकाइए। हथेलियां तलवों पर आ जाएं। झुकते वक्त श्वास लीजिए। यथाशक्ति इस अवस्था में स्वाभाविक श्वास लेते-छोड़ते हुए रुकिए। लम्बी श्वास लेकर धीरे-धीरे श्वास छोड़ते हुए वापस वज्रासन में लौटकर बैठें। पूर्ण स्थिति में जितना हो सके उतना पेट को बाहर की ओर करें और शरीर का पूरा भार पंजों पर डाल दें।

एक मिनट से तीन मिनट तक रुकें और दस बार दुहराइए। इस आसन से आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करने के लिए विशुद्धि अथवा अनाहत-चक्र पर ध्यान करें। इस आसन को आगे की ओर झुककर किए जाने वाले आसनों के बाद करने पर अधिक लाभ होगा।

लाभ — रीढ़ की सारी न्यूनताएं — टेढ़ापन, स्लिपडिस्क, स्पोण्डीलाइटिस, साइटिका आदि समाप्त होते हैं। फेफड़ों में श्वास रोकने की क्षमता बढ़ती है। जंघा, उदर और छाती प्रदेश के अतिरिक्त चर्बी घटती है। हृदयरोग एवं महिलाओं की मासिक धर्म सम्बन्धी समस्याएं दूर होती हैं। पाचन प्रणाली, विसर्जन प्रणाली एवं प्रजनन प्रणालियों के लिए लाभप्रद है।

(६) शशांकासन

विधि —वज्रासन में बैठिए। कमर के पीछे बाएं हाथ से दाईं कलाई पकड़ लीजिए। आंखें बन्द करें। श्वास लीजिए और श्वास छोड़ते हुए बिना नितम्बों को उठाए कमर से सामने की ओर तब तक झुकिए जब तक कि मस्तक फर्श से स्पर्श न करे। स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास लें। पूरे शरीर एवं मन को ढीला छोड़ते हुए कुछ समय विश्राम करें। श्वास लेते हुए आरम्भिक स्थिति में वापस लौटिए।

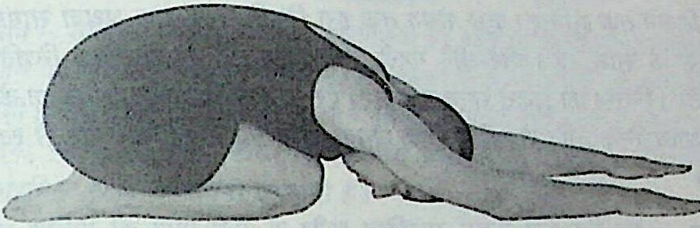

शशांकासन

प्रकारान्तर — वज्रासन में बैठकर श्वास लेते हुए हाथों को सिर के ऊपर सीधा कीजिए और धड़ की सीध में रखें। श्वास छोड़ते हुए हाथों को बिना मोड़े धड़ को सामने की ओर तब तक झुकाइए जब तक मस्तक जमीन को स्पर्श न करे और कोहनियों को पृथ्वी पर टिका दें। कुछ कुम्भक के साथ अथवा स्वाभाविक श्वास के साथ रुककर श्वास लेते हुए आरम्भिक स्थिति में लौटें। क्षमता एवं आवश्यकता के अनुसार आराम से प्रत्येक बार एक से तीन मिनट तक रुकें और ऐसे दस बार दुहराइए।

लाभ —आध्यात्मिक दृष्टि से मूलाधार चक्र पर ध्यान करें अन्यथा स्वाधिष्ठान अथवा मणिपुर-चक्र पर ध्यान करें। इससे काम विकार दूर होता है। साइटिका के स्नायुओं को शिथिल करता है और एड्रिनल ग्रन्थियों को नियमित करता है। कुल्हों और गुदाक्षेत्र की मांसपेशियों को सामान्य रखता है। पाचन प्रणाली सक्रिय होती है। दमे के रोग को नियन्त्रित करने में उपयोगी है। क्रोधादि हर प्रकार के आवेश तथा भावनात्मक असन्तुलन को समाप्त करता है।

(७) योगमुद्रा

विधि — पद्मासन में बैठकर आँखें बन्द कर लीजिए। पीठ के पीछे बाएं हाथ से दाईं हाथ की कलाई को पकड़ लीजिए। लम्बी और गहरी श्वास लीजिए। धीरे-धीरे श्वास छोड़ते हुए शरीर को शिथिल करके धड़ को धीरे-धीरे सामने झुकाइए। माथे को जमीन

योगमुद्रा

पर टिकने तक झुकिए। कुछ समय तक इस स्थिति में कुम्भक अथवा सामान्य श्वास के साथ रहें। धीरे-धीरे गहरी लम्बी श्वास लेते हुए आरम्भिक स्थिति में लौटिए। नितम्ब को झुकते समय न उठाएं। ऐसे पांच बार दुहराइए। ध्यान का केन्द्र — आध्यात्मिक दृष्टि से मणिपुर-चक्र अथवा आज्ञा-चक्र। शारीरिक दृष्टि से श्वास पर।

लाभ — यह पेट और उससे सम्बन्धित शरीर के अन्य भागों की मालिश तथा कोष्ठबद्धता में लाभ करता है। रीढ़ की समस्त कशेरुकाओं को एक-दूसरे से अलग कर साफ व हल्का करता है। फलतः सुषुम्ना नाड़ी एवं मणिपुर-चक्र सम्यक् प्रकार से जाग्रत् होते हैं। उदर सम्बन्धी सभी रोग दूर होते हैं। पाचन एवं विसर्जन प्रणाली सुदृढ़ होती हैं। पौरुषग्रन्थि (Prostate gland) बढ़ती-घटती नहीं अपितु संतुलित रहती है। मोटापा कम करता है। मस्तिष्क के विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी आसन है।

(८) बद्धपद्मासन

विधि — पद्मासन में बैठें। दाहिने हाथ को पीठ के पीछे ले जाकर उससे दाएं पैर का अंगूठा पकड़िए। बायें हाथ को भी पीठ के पीछे ले जाकर दाहिने हाथ पर क्रास करते हुए बाएं हाथ से बाएं पैर का अंगूठा पकड़िए। श्वास बाहर छोड़कर थोड़ा आगे झुकेंगे तो आसानी से पकड़ सकेंगे। आगे झुकते हुए माथे को जमीन पर टिकाइए। श्वास छोड़ते हुए इस स्थिति में आकर कुछ समय तक सामान्य श्वास के साथ रुकिए। लम्बी गहरी श्वास लेते हुए वापस आइए। ध्यान का केन्द्र — आध्यात्मिक दृष्टि से अनाहत चक्र। शारीरिक दृष्टि से बैठी हुई अवस्था में नासिकाग्र पर और झुकी हुई अवस्था में मणिपुर-चक्र। पांच बार दुहराइए।

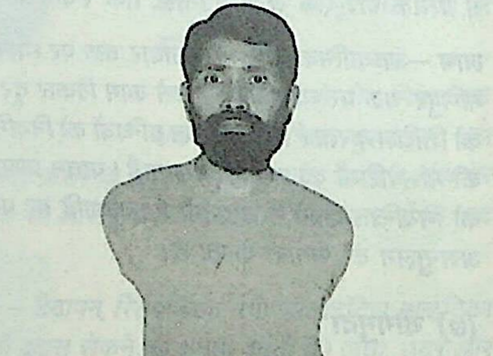

बद्धपद्मासन

लाभ — उदर सम्बन्धी रोगों के लिए फायदेमन्द है। बच्चों के विकास तथा अविकसित सीने को पुष्ट और मजबूत करता है। महिलाओं में सन्तानोत्पत्ति के बाद पेट पर पड़ी झुर्रियां इससे दूर होती हैं। स्तनों में दूध की कमी की पूर्ति होती है। हाथ, गर्दन, कन्धे, पीठ आदि स्वस्थ होंगे। मिर्गी, खांसी, दमा, भगन्दर, हर्निया, वीर्य विकार, साइटिका आदि में अत्यन्त उपयोगी है।

(९) मत्स्यासन

विधि — पद्मासन में बैठिए। पीछे की ओर झुककर लेटिए। दोनों हाथों को आपस में बांधकर सिर के नीचे रखें अथवा पीठ के हिस्से को उठाकर गर्दन मोड़ते हुए सिर के ऊपरी हिस्से को जमीन पर टिकाइए। पैरों के अंगूठे को हाथों से पकड़िए। कोहनियां जमीन पर सटी रहें। अन्तिम स्थिति में लम्बी-गहरी श्वास लीजिए और छोड़िए। एक से पांच मिनट तक अभ्यास करें। जिनको टांसिल का दोष हो अथवा गले में खट्टापन रहता हो वे अन्तिम स्थिति में शीतकारी प्राणायाम कर सकते हैं। ध्यान का केन्द्र — आध्यात्मिक हेतु अनाहत-चक्र और शारीरिक लाभ हेतु मणिपुर-चक्र। इस आसन को सर्वांगासन के बाद करेंगे तो ज्यादा लाभ होगा।

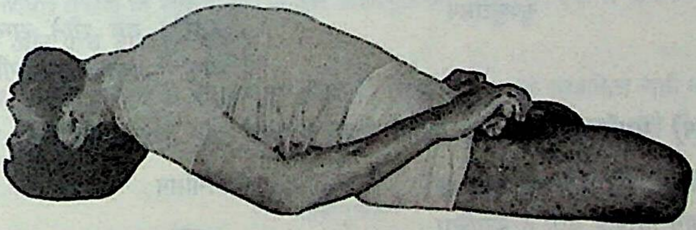

मत्स्यासन

लाभ — उदर सम्बन्धी रोगों में अत्यन्त उपयोगी है। कोष्ठबद्धता एवं पीठ में रक्त के जमघट को दूर करता है। इस आसन का विकल्प सुप्तवज्रासन है।

विशेष — एक पैर सीधा रखकर दूसरे पैर को अर्द्धपद्मासन में रख लें। शेष क्रिया पूर्ववत् करें। आरम्भिक अभ्यासी के लिए यह एक सरल तरीका है। जो व्यक्ति इसे करना भी कठिन समझते हों वे दोनों पैरों को सीधा रखें। हाथों को बगल में हथेलियों से जमीन को दबाकर रखें और शेष क्रिया पूर्ववत् कर सकते हैं।

(१०) कुक्कुटासन

विधि — कुक्कुट का अर्थ है मुर्गा। पद्मासन में बैठकर पिंडलियों और जांघों के बीच

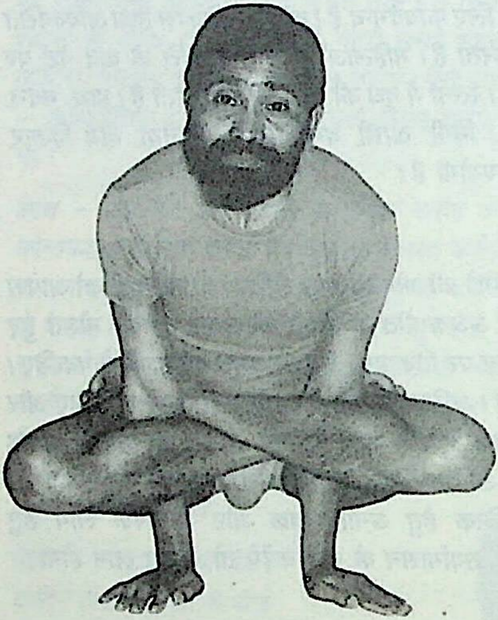

कुक्कुटासन

से हाथों को अन्दर कीजिए। अंगुलियों को सामने की ओर करते हुए हथेलियों को जमीन पर जमाइए। पूरे शरीर को हाथों के सहारे ऊपर उठाकर जितनी देर आराम से रुक सकें, रुकिए। स्वाभाविक श्वास चलता रहे। फिर वापस जमीन पर आइए। पांच बार दुहराए। ध्यान का केन्द्र — अनाहत-चंक्र।

लाभ — हाथों, कन्धों व सीने को पुष्ट करेगा। आलस्य दूर होगा। सीने की चौड़ाई एवं हाथों की लम्बाई बढ़ेगी। यह सीने सम्बन्धी रोगों में अत्यन्त उपयोगी है।

(११) गर्भासन

विधि — गर्भ में स्थित बच्चे के समान दिखाई देता है इसलिए इसे गर्भासन कहते हैं। पद्मासन में बैठकर हाथों को पूर्ववत् पिण्डली एवं जांघ के बीच में प्रवेश कराकर इतना बाहर निकालें कि कोहनियां पिण्डलियों से बाहर हो जाएं। अब नितम्बों पर शरीर को संतुलित रखते हुए हाथों को ऊपर की ओर मोड़िए और कानों को पकड़िए। श्वास छोड़ते हुए कानों को पकड़ें। फिर स्वाभाविक श्वास के साथ

गर्भासन

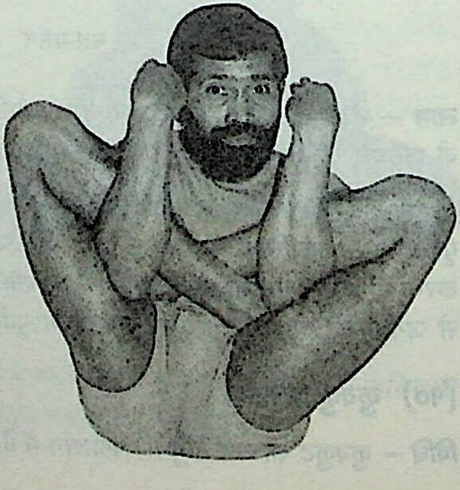

यथाशक्ति अन्तिम स्थिति में स्थिर रहें। ध्यान का केन्द्र — मणिपुर चक्र अथवा श्वास पर। पांच-दस बार दुहराइए।

प्रकारान्तर — जो लोग पद्मासन में इसे न कर सकें वे उकडूं बैठकर पिण्डली एवं जांघ के बीच में से अन्दर की ओर लाकर कानों को पकडें और सिर को यथासम्भव सीधा करें। जैसे स्कूलों में बच्चों को मुर्गा बनाया जाता है।

लाभ — यह मन एवं उदर को संतुलित करता है। स्नायु-दौर्बल्यता को दूर करता है। अपने क्रोध, असन्तोष, उद्वेग, उत्तेजना पर काबू न पा सकने वाले लोग इस आसन का अधिक अभ्यास करें। पाचन क्रिया सुदृढ़ होती है।

(१२) तोलांगुलासन

विधि — पद्मासन में बैठकर पीठ के बल लेटिए। हथेलियों को नितम्बों के नीचे रखें। कोहनियों के सहारे धड़ भाग को इस तरह उठाइए कि शरीर का भार नितम्ब और कोहनियों पर सध जाए। पैरों को भी यथासम्भव उठाइए। लम्बी गहरी श्वास लेकर सिर को मोड़कर जालंधर-बन्ध लगाइए। बिना तनाव के यथा-शक्ति आराम से इस अन्तिम स्थिति में रुकिए। धीरे-धीरे श्वास छोड़ते हुए आरम्भिक स्थिति में वापस आइए। ध्यान का केन्द्र — मणिपुर-चक्र अथवा श्वास पर। अन्तिम स्थिति तौलने का साधन तराजू के समान होने से इसे तोलांगुलासन कहते हैं। एक से पांच मिनट रुकें और पांच बार दुहराइए।

लाभ — इस आसन से मोटापा दूर होता है। उदर और उससे सम्बन्धित सभी भाग दोष रहित होंगे। कंधे, पीठ, गर्दन व सीना मजबूत, पुष्ट एवं विशाल होते हैं।

तोलांगुलासन

(१३) गोमुखासन

विधि — बाएं पैर की एड़ी को दाहिने नितम्ब के समीप रखिए। दाहिने पैर को बाई जांघ के ऊपर से क्रास करते हुए इस प्रकार स्थिर करें कि घुटने एक-दूसरे के ऊपर रहें। बाएं हाथ को पीठ के पीछे मोड़कर हथेलियों को ऊपर की ओर ले जाएं। दाहिना हाथ दाहिने कन्धे पर सीधा उठा लें। पीछे की ओर घुमाते हुए कोहनी से मोड़कर हाथों को परस्पर बांध लें। धड़ एवं सिर को सीधा तानें एवं मुड़े हुए दाहिने हाथ को ऊपर की ओर आराम से यथासम्भव तानिए। स्वाभाविक श्वास के साथ इस अवस्था में यथाशक्ति रुकें। नेत्र बन्द रखें फिर वापस आरम्भिक स्थिति में आकर विश्राम करें। पांच बार दुहराइए। ध्यान का केन्द्र — आज्ञा-चक्र अथवा श्वास पर। हाथ और पैर को उल्टाकर पांच बार दुहराइए।

गोमुखासन

लाभ — गठिया, साइटिका, बवासीर, जांघ एवं पैर के नाड़ी-दोष, अपच, मन्दाग्नि, पीठ दर्द, हाथों के दर्द को दूर करता है। यह मधुमेह रोग में अत्यन्त उपयोगी है। ब्रह्मचर्य की रक्षा होगी क्योंकि सहज ही मूल-बन्ध का अभ्यास होता है। अतः लैंगिक विकारों को दूर करता है। छाती को पुष्ट करता है।

प्रभेद — वाम जान्वासन और दक्षिण जान्वासन।

(१४) पश्चिमोत्तानासन

विधि — पैरों को सटाकर सीधे सामने फैलाकर बैठिए। शरीर को धीरे-धीरे आगे की ओर श्वास छोड़ते हुए झुकाइए। हाथों से पैरों के अंगूठे पकड़िये एवं माथे को घुटने के आगे पैरों पर अथवा घुटने पर ही टिकाइए। यदि हो सके तो हाथों की अंगुलियों को परस्पर फंसाकर तलवों के नीचे जमीन पर रखें, यह अन्तिम स्थिति है। आरम्भिक

अभ्यासी टखने को पकड़कर कर सकते हैं। हाथों को अंगूठे पकड़कर/टखने पकड़कर/पंजों के नीचे रखकर अपनी ओर खींचते हुए कोहनियों को पृथ्वी पर टिका दें। परन्तु पैरों को कहीं से भी मोड़ना नहीं एवं शरीर पर जोर भी न डालें, आराम से जितना हो उतना करें। स्वाभाविक श्वास के साथ इस स्थिति में यथाशक्ति रुकें। लम्बी गहरी श्वास लेते हुए आरम्भिक स्थिति में लौटिए। आध्यात्मिक लाभ के लिए स्वाधिष्ठान-चक्र पर ध्यान करते हुए अधिक समय तक रुकते हुए दस से पन्द्रह बार दुहराइए। शारीरिक लाभ के लिए श्वास पर अथवा मणिपुर-चक्र पर ध्यान करें।

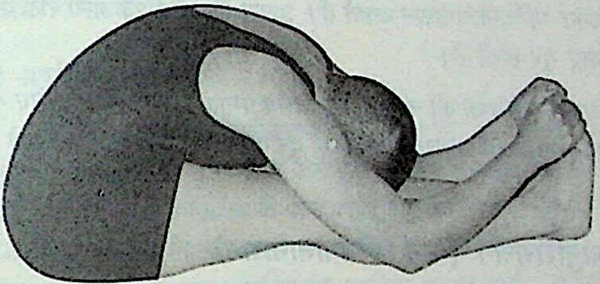

पश्चिमोत्तानासन (१)

हृदय, साइटिका, दीर्घकालीन गठिया, पीठ दर्द एवं उदर के रोगी बिना योग-प्रशिक्षक के न करें। पश्चिम का अर्थ है पीठ, पीठ को विशेष रूप से तानने के कारण इसे पश्चिमोत्तानासन कहते हैं। यह एक महान् आसन है। शीर्षासन और सर्वांगासन के बाद साधक के लिए यह अति आवश्यक एवं अत्यन्त उपयोगी आसन है।

पश्चिमोत्तानासन (२)

लाभ — इससे ब्रह्मनाड़ी, सुषुम्ना और जठराग्नि जाग्रत् होते हैं। पेट, कमर एवं नितम्बों की अनावश्यक चर्बी को घटाकर स्वस्थ करता है। मोटापा, कोष्ठबद्धता, कब्ज़, बवासीर आदि से छुटकारा मिलता है। उदर संस्थान की समस्त ग्रन्थियों को क्रियाशील करता है। मधुमेह आदि रोगों में फायदेमंद है। स्त्रियों के लिए प्रजनन सम्बन्धी अंगों के रोगों को दूर करने में उपयोगी है। अब इस आसन को गत्यात्मक करें अर्थात् लेट जाएं, पैरों को सटाकर तानकर रखें। हाथों को भी सिर के ऊपर जमीन पर सीधे तानकर रखें। श्वास लेते हुए हाथों को बिना मोड़े धड़ भाग को उठाएं और सीधा बैठें। श्वास छोड़ते हुए पश्चिमोत्तानासन करें। वापस प्रथम लेटी हुई स्थिति में लौटें। इसे गत्यात्मक पश्चिमोत्तानासन कहते हैं। इससे पीठ दर्द एवं अन्य रीढ की हड्डी की समस्याएं दूर होती हैं।

यह आसन मस्तिष्क की नाड़ियों पर विशेष प्रभाव डालता है। इसलिए मानसिक संतुलन एवं मस्तिष्क के समस्त तनावों को दूर करने में आसन विशेषरूप से उपयोगी है।

(१५) जानुशिरासन (अर्द्ध-पश्चिमोत्तानासन)

विधि — सामने की ओर पैर फैलाकर बैठिए। बाएं पैर को मोड़कर इस प्रकार रखिए कि एड़ी पेरेनियम (जंघा के मूल प्रदेश) से छूती रहे एवं पंजा दाएं पैर की जांघ से सटा रहे। कमर, पीठ, सिर को सीधा रखकर श्वास भरते हुए हाथों को सिर के ऊपर सीधा तान लें। श्वास छोड़ते हुए आगे की ओर बिना पैरों व हाथों को मोड़े और झुकिए। पैर के अंगूठे को हाथों से पकड़कर अपनी ओर खींचते हुए कोहनियों को जमीन पर टिकाइए। माथे को घुटने से स्पर्श करने दें। थोड़ी देर इस स्थिति में कुम्भक लगाए रहें। श्वास लेते हुए पहली स्थिति में लौटें। ध्यान का केन्द्र — स्वाधिष्ठान-चक्र।

जानुशिरासन

प्रकारान्तर — पैरों को सामने की ओर सीधे सटाकर फैलाकर बैठिए। बाएं पैर को मोड़कर दाईं जांघ पर स्थापित करें अर्द्ध-पद्मासन जैसे। शेष क्रिया जानुशिरासन के समान कीजिए।

यदि हो सके तो बाएं हाथ को पीठ के पीछे से घुमाकर बाएं पैर को पकड़िए।

इस प्रकारान्तर को अर्द्ध-पद्मपश्चिमोत्तानासन कहते हैं।

लाभ — पश्चिमोत्तानासन के सभी लाभ प्रायः इससे प्राप्त हो सकते हैं। विशेषतः यौनविकार, वीर्यदोष, मधुमेह, पैर के साइटिका, आंतों की गर्मी, वायु प्रकोप एवं मूत्रावरोध में उपयोगी है।

(१६) अर्धमत्स्येन्द्रासन

विधि — दोनों पैरों को सामने फैलाकर बैठें। श्वास भर कर दाहिने पैर को उठाकर बाएं घुटने के बाहर की ओर सीधा जमीन पर रखें। अब बाएं पैर को दाहिनी ओर मोड़कर एड़ी को दाहिने नितम्ब के पास रखें। बाएं हाथ को दाहिने पैर के बाहर की ओर से लेकर दाहिने पैर के टखने को अथवा अंगुलियों को पकड़ें। श्वास छोड़ते हुए बाएं हाथ से इस प्रकार तानिए कि दाहिना घुटना बाई भुजा के समीप रहे। साथ-साथ शरीर को दाहिनी ओर मोड़ते हुए दाहिने हाथ को पीछे की ओर कमर के पास रखें। ग्रीवा एवं पीठ को अधिक से अधिक मोड़ते हुए पीछे की ओर दृष्टि करें। सामान्य श्वास के साथ इस अवस्था में यथाशक्ति रुकें, कुम्भक के साथ रुकेंगे तो अधिक लाभ होगा। श्वास लीजिए और छोड़ते हुए पहली स्थिति में लौटिए। विपरीत ओर से भी करें। पांच बार दुहराइए। ध्यान का केन्द्र — आध्यात्मिक लाभ के लिए आज्ञा-चक्र और शारीरिक लाभ के लिये स्वाधिष्ठान चक्र।

अर्धमत्स्येन्द्रासन

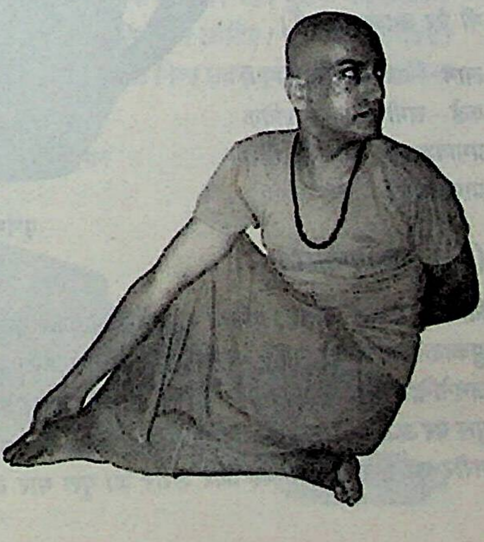

लाभ — रीढ़ की मालिश होती है इसलिए रीढ़ की समस्त समस्याएं जैसे साइटिका, स्पोंडिलाइटिस, सिर का माईग्रेन आदि दूर

होते हैं। पाचन प्रणाली को संतुलित करता है। मधुमेह, पुरानी पेचिश, पेट के कीड़े एवं अन्य पाचन सम्बन्धी रोगों से मुक्ति होती है। समस्त नाड़ी संस्थान पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। नसों की दुर्बलता एवं अन्य नाड़ी दोष दूर होते हैं। मस्तिष्क से संबंधित नाड़ियों को शक्तिशाली बनाता है।

(१७) पूर्णमत्स्येन्द्रासन

विधि — अर्द्ध पद्मासन की स्थिति में बाएं पैर को दाहिनी जांघ के मूल में रखें। दाहिने पैर को बाएं घुटने के बाएं बाजू में बाहर की तरफ से रखिए। तलवा भूमि पर समतल जमाएं। श्वास छोड़ते हुए दाहिनी ओर मोड़िए। बाएं हाथ से दाहिने पैर के टखने को पकड़िए या संभव हो तो अंगूठे अथवा पंजे को पकड़िए। दाहिने हाथ को पीछे की ओर घुमाकर दाहिने पैर के उठे हुए घुटने के समीप लाएं। हो सके तो स्पर्श करें। बाएं हाथ का सहारा लेकर दाहिने घुटने को दबाते हुए कमर को दाहिनी ओर यथासम्भव मोड़िए। अन्त में सिर को भी दाहिनी ओर मोड़कर पीछे की ओर देखें। सिर किसी प्रकार न झुकाएं। इस अन्तिम स्थिति में बिना तनाव के आराम से यथाशक्ति रुकें। अन्तिम अवस्था में सामान्य श्वास अथवा कुम्भक करें। वापस लौटते हुए श्वास लें अर्थात् पूरक करें। ध्यान का केन्द्र — आज्ञा-चक्र अथवा पीठ एवं उदर अथवा श्वास पर। विपरीत दिशा से भी पैर बदलकर करें।

लाभ — अर्धमत्स्येन्द्रासन में कहे सभी लाभ अधिक प्रभावशाली ढंग से शीघ्र प्राप्त होंगे।

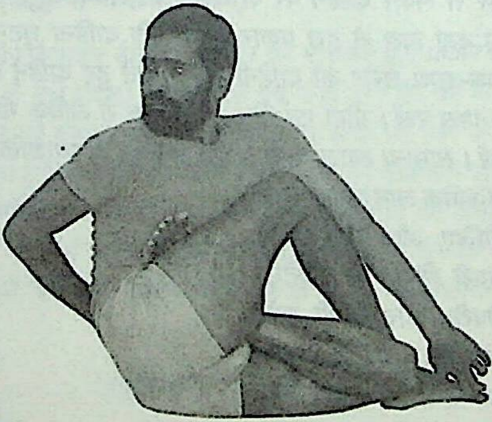

पूर्णमत्स्येन्द्रासन

(१८) पादांगुष्ठासन

विधि — उकड़ूं बैठिए। एड़ियों को ऊपर उठाकर पंजों पर बैठिए। घुटनों को नीचे झुकाकर जांघों को जमीन के समानान्तर स्थिर करें। बाएं पैर की एड़ी को गुदा तथा जननेन्द्रिय के बीच सीवनी नाड़ी पर स्थापित करें। बाएं पैर की जंघा अथवा जंघा मूल पर अर्द्ध-पद्मासन की स्थिति में दाहिने पैर को इस प्रकार सावधानी से रखें कि शरीर का संतुलन बना रहे और शरीर का पूरा भार बाएं पैर के पंजे अथवा अंगूठे

पर हो। दोनों हाथों को ज्ञानमुद्रा में रखें। श्वास सामान्य रहे। ध्यान का केन्द्र — मूलाधार-चक्र। दूसरे पैर से भी इस क्रिया को करें।

लाभ — ब्रह्मचर्य पालन एवं धातुप्रमेह में लाभदायक है। स्वप्न-दोष का निवारक है। वात व रक्त सम्बन्धी बवासीर दूर होती है। नेत्र-दृष्टि कमजोर नहीं होती। पैरों विशेषतः पंजों एवं अंगूठे की शक्ति और लचीलापन बढ़ता है।

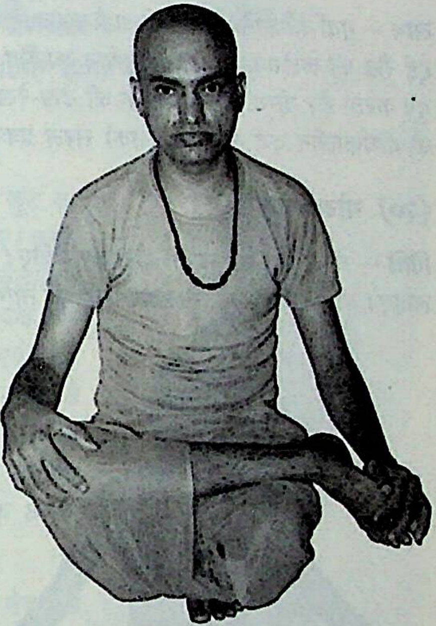

पादांगुष्ठासन

(१६) कूर्मासन

विधि — श्वास भरकर पैरों को दूर-दूर फैलाकर बैठिए। श्वास छोड़ते हुए सामने की ओर धड़ को झुकाइए। दोनों हाथों को घुटनों के नीचे से पीछे की ओर ले जाइए। माथे को जमीन पर टिकाइए। दोनों हाथों को कमर के पास अंगुलियों से परस्पर बांध लीजिए। शरीर को और घुटने को यथा-सम्भव जमीन की ओर आराम से दबाकर सामान्य श्वास के साथ अथवा कुम्भक लगाकर रहें। घुटनों को उठाकर हाथों को शिथिल करके श्वास लेते हुए प्रथम स्थिति में लौटिए। पांच बार दुहराइए। ध्यान का केन्द्र स्वाधिष्ठान या मणिपुर-चक्र अथवा निम्न उदर प्रदेश या श्वसन क्रिया पर।

कूर्मासन

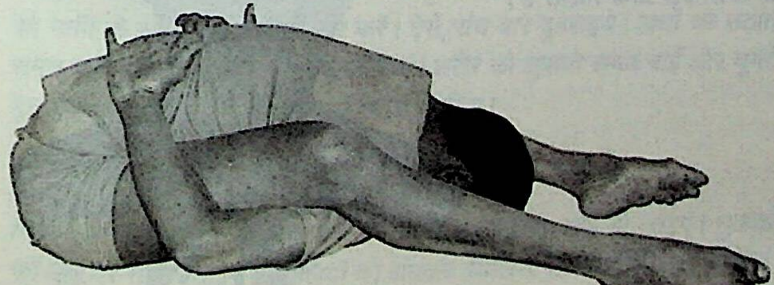

लाभ — गुर्दों को शक्ति प्रदान करता है फलतः मूत्र-सम्बन्धी रोग दूर होते हैं। खिसकी हुई रीढ़ की कशेरुकाओं को यथास्थान स्थापित करता है। सिरदर्द व गर्दन-दर्द को दूर करता है। योग्य योग-प्रशिक्षक की देख-रेख में स्लिपडिस्क, साइटिका, हड्डियों के दीर्घकालीन दर्द के रोगी इसको सरल प्रकार से कर सकते हैं।

(२०) गोरक्षासन

विधि — दोनों पैरों को सामने फैलाकर बैठिए। घुटनों को मोड़िए और अपनी ओरं लाइए। दोनों तलवों को मिलाकर पंजों को नाभि की ओर उठाकर शरीर के समीप रखिए। हाथों की हथेलियों को कैंचीनुमा स्थिति में रखते हुए उनमें एड़ियों को पकड़ें। कमर, रीढ़ व सिर सीधा रहे। सामान्य श्वास के साथ यथाशक्ति इस अन्तिम अवस्था में रहें। ध्यान का केन्द्र — आज्ञा-चक्र या नासिका दृष्टि अथवा श्वास पर। पांच बार दुहराइए।

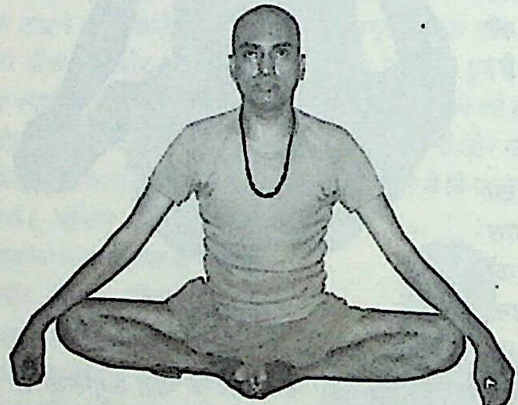

गोरक्षासन (१)

लाभ — पूर्ण अभ्यासी इसमें ध्यान कर सकता है। पैरों एवं पंजों को लचीला बनाता है। मत्स्येन्द्रासन के सभी फल प्रायः मिलते हैं।

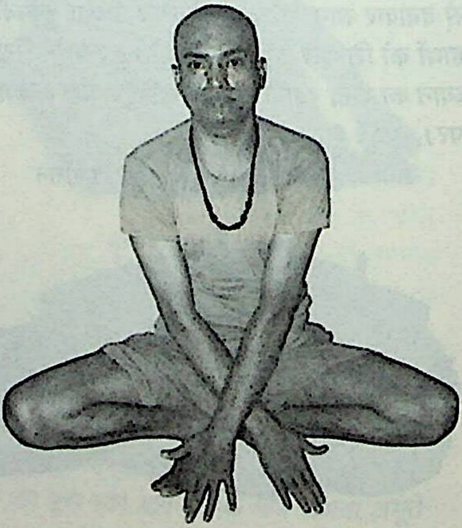

गोरक्षासन (२)

खड़े होकर किए जाने वाले आसन

(१) कटि चक्रासन

कटि चक्रासन

विधि – पैरों के मध्य में दो-तीन फुट का फासला छोड़कर सीधे खड़े हो जाइए। कन्धों की ऊँचाई पर भुजाओं को बगल में फैलाइए। शरीर के ऊपरी भाग (कटि भाग से) दाईं ओर मोड़िए। बायां हाथ दाएं कन्धे पर एवं दायां हाथ पीछे की तरफ घूमता हुआ कमर से लिपट जाए। अभ्यास को बाईं ओर से भी कीजिए। दस बार दुहराइए। श्वास सामान्य रहे। ध्यान का केन्द्र अनाहत-चक्र अथवा नाभि पर।

लाभ – यह कमर, पीठ, कुल्हों के मेरुदण्ड तथा शरीर के अन्य जोड़ों के तनाव को दूर करता है। हठयोग की शंख-प्रक्षालन क्रिया के आसन समूह का चौथा आसन है।

प्रकारान्तर – पूर्ववत् खड़े होकर नाभि के सामने हाथों की अंगुलियों को परस्पर बांध लीजिए। भुजाओं को सिर के ऊपर उठाइए और कलाइयों को घुमाकर हथेलियों को ऊपर की ओर पलटिए। अब कमर से शरीर के ऊपरी भाग को न मोड़ते हुए आगे की ओर झुकिए। दाईं-बाईं ओर घूमते हुए समकोण बनाइए। पीठ को सीधी रखते हुए हाथों पर दृष्टि रखें। चार बार घूमकर वापस हाथों को नाभि के सामने रखकर विश्राम करें। ऐसे पांच बार दुहराइये। हाथों को उठाते समय व दाईं ओर घूमते हुए श्वास लीजिए। शरीर को झुकाते समय बाईं ओर घूमते हुए एवं हाथों को नीचे लाते समय श्वास छोड़िए।

(२) ताड़ासन

विधि – पैरों के बीच पांच-छः इंच का फासला छोड़कर खड़े हो जाइए। भुजाओं को सिर पर सीधे उठाइए। अंगुलियों को बांधकर हथेलियों को ऊपर की ओर पलटिए। अपने हाथों की ओर दृष्टि कीजिए। एड़ियों को ऊपर उठाते हुए पूरे शरीर में ऐसे

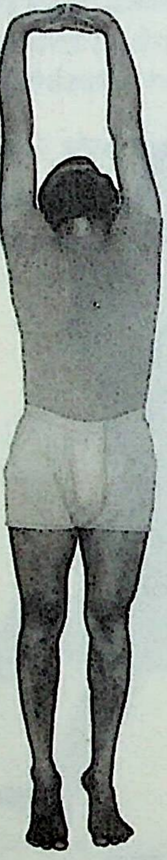

ताड़ासन

खिंचाव लाइए जैसे कोई ऊपर से हाथ पकड़कर आपको ऊपर की ओर खींच रहा हो। अंगुलियों पर शरीर को संतुलित करते हुए यह क्रिया करें। धीरे-धीरे एड़ियों को वापस जमीन पर लाइए। ऐसे दस बार दुहराइए।

प्रकारन्तर १ — एड़ियों को उठाकर अंगुलियों पर खड़े होने के पश्चात् एक पैर को उठाकर आगे व पीछे की ओर झुलाइए। दूसरे पैर पर शरीर को संतुलित रखना है।

प्रकारान्तर २ — कलाइयों को सिर के ऊपर कैंचीनुमा बनाकर (क्रास रखकर) खड़े होइए। कमर से जमीन के समानान्तर शरीर को आगे की ओर झुकाइए। झटिति धड़ को एड़ियों पर उठाकर रीढ़ में खिंचाव पैदा करें और हाथों को दोनों बगल सीधे फैलाइए। वापस एड़ियों पर लौटते हुए शरीर को सीधा करें एवं हाथों को ऊपर कैंचीनुमा में लौटाइए।

उठते समय श्वास लें और नीचे आते समय अथवा सामने झुकते हुए श्वास छोड़ें। दस बार दुहराइए। शीर्षासन आदि सिर के बल किए जाने वाले आसनों के बाद अवश्य करना चाहिए।

लाभ — मलाशय एवं आमाशय की मांसपेशियों को विकसित करता है। आंतों को फैलाता है। मेरुदण्ड और स्नायु के विकास के लिए अवरोधकों को दूर करता है। यह आसन भी शंख–प्रक्षालन क्रिया के आसन समूह में से प्रथम है।

(३) तिर्यक् ताड़ासन

विधि — ताड़ासन में खड़े हो जाइए। एड़ियों को उठाकर अंगुलियों पर खड़े होकर पहले दाईं ओर फिर बाईं ओर क्रमशः झुकिए। बिना पैरों को मोड़े व हिलाए केवल कमर से झुकनी चाहिए। ऊपर उठते समय श्वास लें, झुकते हुए श्वास रोकें, नीचे की ओर आते समय श्वास छोड़ें। दस बार दुहराइए। ध्यान का केन्द्र — आज्ञा-चक्र अथवा श्वास पर।

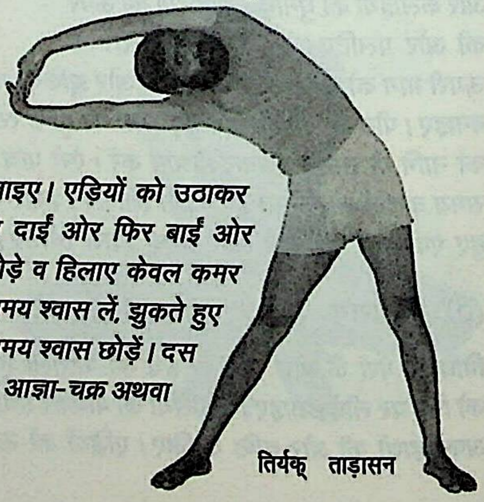

तिर्यक् ताड़ासन

लाभ — ताड़ासन के प्रायः सभी लाभ इससे प्राप्त होंगे। यह शंख-प्रक्षालन आसन समूह का द्वितीय आसन है।

(४) त्रिकोणासन

विधि — पैरों के बीच दो-तीन फुट का फासला छोड़कर सीधे खड़े हो जाइए। कन्धों की ऊँचाई तक दोनों भुजाओं को बगल में फैलाइए। अपने दाएं हाथ को दाएं कान से सटाते हुए ऊपर की ओर सीधा उठाइए। श्वास लेकर उसमें खिंचाव पैदा करें। सांस छोड़ते हुए धीरे-धीरे बाईं ओर झुकिए। बाएं हाथ की हथेली को जमीन पर टिकाइए। दाएं हाथ की हथेली को जमीन की ओर मोड़िए, इससे दाएं हाथ में खिंचाव के साथ दायां बगल भी खिंचेगा। श्वास लेते हुए आरम्भिक स्थिति में लौटिए। यह क्रिया दाईं ओर से भी करें। दस बार दुहराइए। ध्यान का केन्द्र — मणिपुर-चक्र।

लाभ — स्नायविक विकार एवं तनाव, निराशा, आलस्य आदि को दूर करता है। कब्ज़ को दूर कर भूख बढ़ाता है। बढ़ती उम्र के बच्चों के लिये विशेष लाभकारी है।

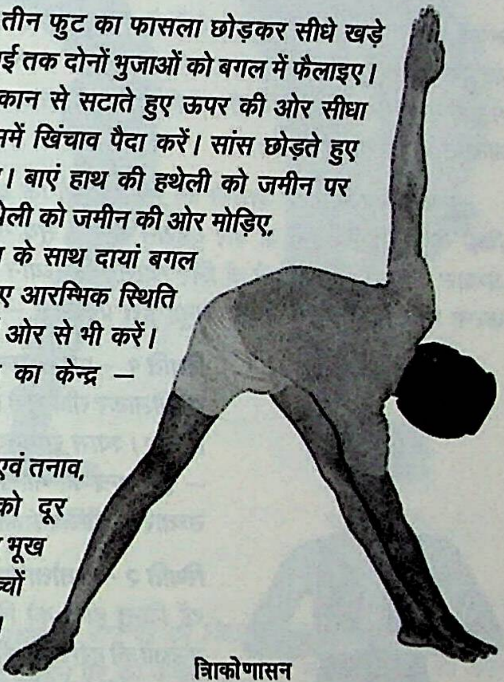

त्रिकोणासन

प्रकारान्तर १ — त्रिकोणासन की आरम्भिक स्थिति में खड़े होइए। शरीर को धीरे-धीरे दाहिनी ओर झुकाते हुए दाहिने हाथ से पंजे को स्पर्श करें और बाएं हाथ को बाईं बगल पर रखिए। घुटनों को न मोड़ें।

प्रकारान्तर २ — पूर्ववत् खड़े हो जाइए किन्तु हाथों को पीछे की ओर ले जाइए। दाएं हाथ से बाएं हाथ की कलाई को पकड़िए। शरीर को कमर से झुकाते हुए नाक से घुटने को छूने का प्रयास करें। क्रमशः एक बार दाएं घुटने और दूसरी बार बाएं घुटने को छुएं। हर बार वापस सीधे (प्रथम अवस्था में) खड़े हो जाएं।

प्रकारान्तर ३ — खड़े होकर भुजाओं को बगल में सीधे फैलाइए। शरीर को कमर से इतना झुकाएं कि समकोण बन जाए। धड़ को (घुटनों को मोड़े बिना) घुमाइए और बाएं हाथ से दाएं पैर का स्पर्श करें। दृष्टि आकाश की ओर फैले हुए दाएं हाथ की अंगुलियों पर रहे। इसी क्रिया को वापस सीधी अवस्था में लौटकर दूसरी ओर भी

करें। ऐसे २० बार दुहराइए। उठते हुए श्वास लें, घूमते समय कुम्भक करें और झुकते समय श्वास छोड़ें।

(५) सूर्य नमस्कार

संपूर्ण शरीर के सभी जोडों, मांसपेशियों एवं आन्तरिक अंगों की मालिश करने का यह एक अद्भुत एवं अत्यन्त प्रभावशाली अभ्यास है। यद्यपि योग-परम्परा में इसे आसनों में नहीं माना गया है। तथापि योग-विधियों के पूर्व इसका अभ्यास करने से योगाभ्यास अत्यन्त सरल हो जाता है।

सूर्य नमस्कार बारह आसनों का समूह है जो कि बारह मास के राशि चक्र के चिह्नों के सदृश है। इन्हें दो बार दुहराने से एक सूर्य नमस्कार पूरा होता है। इस अभ्यास का पूर्ण लाभ उठाने के लिए श्वास, चक्र, ध्यान एवं मन्त्र प्रयोग साथ-साथ करना चाहिए। वे बारह आसन समूह इस प्रकार हैं —

प्रार्थनासन

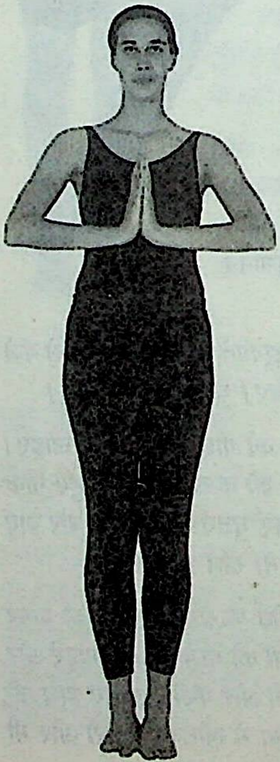

स्थिति १ — प्रार्थनासन — प्रार्थना की मुद्रा में पंजों को मिलाकर सीधे खड़े होइए। पूरे शरीर को शिथिल छोड़िए। श्वास सामान्य रहे। **ऊँ हां—मित्राय नमः** — इस मन्त्र को मौखिक अथवा मानसिक रूप से उच्चारण कीजिए। अनाहत-चक्र पर ध्यान करें।

स्थिति २ - हस्तोत्तानासन — उसी स्थिति में खड़े रहें किन्तु हाथों को सिर के ऊपर उठाइए। दोनों भुजाओं की दूरी कंधों की चौड़ाई के बराबर हो। सिर और ऊपरी धड़ को थोड़ा पीछे झुकाते हुए भुजाओं को यथासम्भव पीछे की ओर झुकाइए। थोड़ी देर रुकिए। **ऊँ ह्रीं रवये नमः** — इस मन्त्र का उच्चारण करें। श्वास लीजिए। विशुद्धि-चक्र पर ध्यान करें।

स्थिति ३ — पादहस्तासन — सामने की ओर झुकते हुए हाथ को (न हो सके तो अंगुलियों को) जमीन पर दोनों पैरों के बगल में टिकाइए। माथे से घुटनों को स्पर्श करें। पैरों को न मोड़ें। जोर भी न लगाएं। श्वास छोड़ते हुए इस अभ्यास को करें। **ऊँ हूं सूर्याय नमः** — इस मन्त्र का जप करें। स्वाधिष्ठान-चक्र पर ध्यान करें।

हस्तोत्तानासन

पादहस्तासन

स्थिति ४ — अश्वसंचालनासन — बाएं पैर को जितना सम्भव हो सके उतना पीछे फैलाइए। इसे करते समय दाहिने पैर को केवल घुटनों से मोड़िए। हाथों को अपने स्थान पर और स्वयं स्थिर व सीधा रहें। सिर को पीछे की ओर झुकाइए। कमर को धनुषाकार मोड़िए। दृष्टि को भ्रूमध्य पर टिकाइए। श्वास लेते हुए इस अभ्यास को करें। ऊँ ह्रैं भानवे नमः — इस मन्त्र का उच्चारण करें। आज्ञा-चक्र पर ध्यान करें।

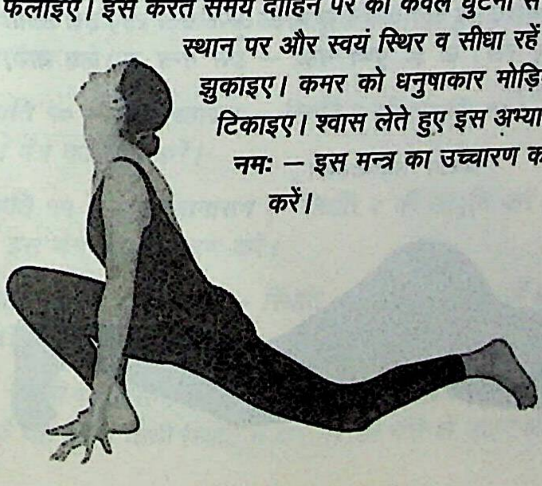

अश्वसंचालनासन

स्थिति ५ — पर्वतासन — दाएं पैर को सीधा करके बाएं पंजे के पास रखें। नितम्बों को ऊपर उठाइए और सिर को भुजाओं के बीच में से अन्दर की ओर लाइए। दोनों पैर एवं भुजाएं पर्वताकार में सीधी रहें। एड़ियों को जमीन से स्पर्श कराने का प्रयास कीजिए। पूरी क्रिया को श्वास छोड़ते हुए करें। *ॐ ह्रौं खगाय नमः* — इस मन्त्र का उच्चारण करें। विशुद्धि-चक्र पर ध्यान केन्द्रित करें।

पर्वतासन

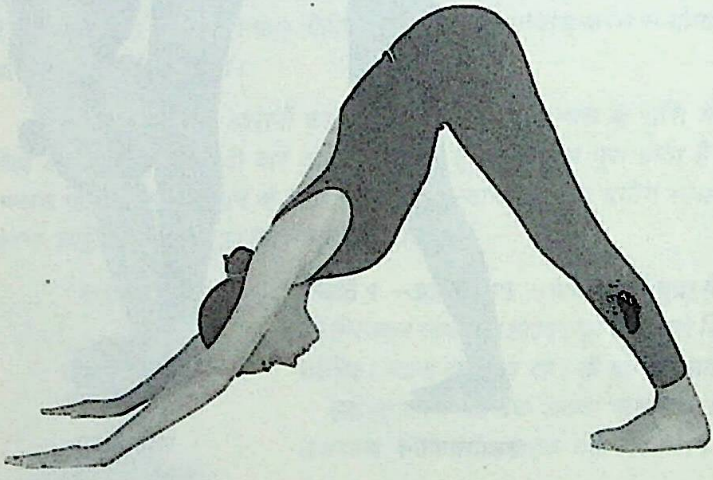

स्थिति ६ — अष्टांग नमस्कारासन — शरीर को भूमि पर इस प्रकार लेटा दीजिए कि दोनों पैरों की अंगुलियां, दोनों घुटने, सीना, दोनों हथेलियां तथा ठुड्डी भूमि का स्पर्श करें। नितम्ब व आमाशय का भाग जमीन से थोड़ा ऊपर उठा रहे। इस क्रिया के दौरान कुम्भक लगाए रखें। **ॐ हः पूष्णे नमः** — इस मन्त्र का जप करें। मणिपुर-चक्र पर ध्यान हो।

अष्टांग नमस्कारासन

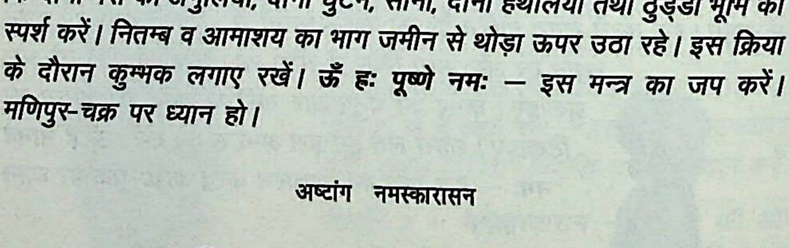

स्थिति ७ — भुजंगासन — हाथों को सीधे करते हुए कमर से ऊपरी भाग के शरीर को ऊपर उठाइए। सिर को पीछे की ओर यथासम्भव झुकाइए। श्वास लेते हुए क्रिया करें। **ऊँ ह्रां हिरण्यगर्भाय नमः** — इस मन्त्र का जाप करें। ध्यान का केन्द्र — स्वाधिष्ठान-चक्र।

भुजंगासन

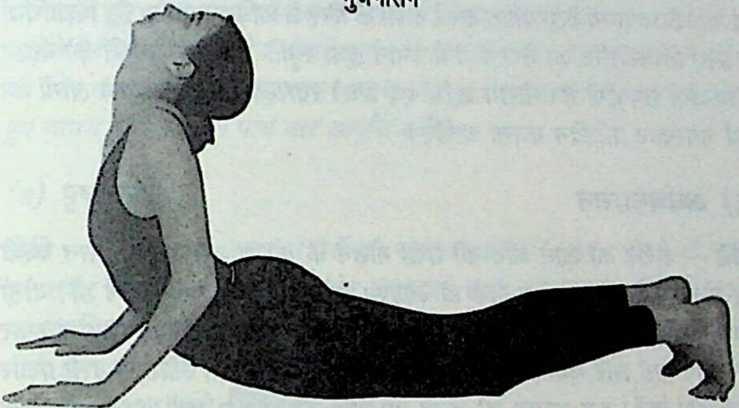

स्थिति ८ — पर्वतासन — स्थिति ५ की आवृत्ति करें। केवल मन्त्र में अन्तर है शेष क्रिया ५वीं स्थिति के समान करें। ***ऊँ ह्रीं मरीचये नमः*** — इस मन्त्र का उच्चारण करें।

स्थिति ६ — अश्वसंचालनासन — दायां पैर मोड़िए और दाएं पंजे को हाथों के पास भीतर में जमाइए। स्थिति ४ की आवृत्ति करें। ***ऊँ ह्रूं आदित्याय नमः*** — इस मंत्र का जाप करें।

स्थिति १० — पादहस्तासन — स्थिति ३ की आवृत्ति करें। ***ऊँ ह्रैं सावित्रे नमः*** — इस मंत्र का जाप करें।

स्थिति ११ — हस्तोत्तानासन — स्थिति २ की आवृत्ति करें। ***ऊँ ह्रौं अर्काय नमः*** — इस मंत्र का उच्चारण करें।

स्थिति १२ — प्रार्थनासन — स्थिति १ की भाँति करें। ***ऊँ ह्रः भास्कराय नमः*** — इस मन्त्र का जाप करें।

इन्हीं १२ आसनों को थोड़े रूपान्तर से दुहराने पर एक सूर्य नमस्कार पूरा होगा। फर्क यह है कि चौथी स्थिति में दाएं पैर को पीछे ले जाइए और नवीं स्थिति में बाएं

पैर को मोड़िए और बाएं पंजे को हाथों के पास भीतर में जमाइए।

लाभः — आध्यात्मिक लाभ के लिये तीन से बारह चक्र तक धीमी गति से कर सकते हैं। शारीरिक लाभ के लिए थोड़ी तेजी अर्थात् मध्यम गति से तीन से मात्र बारह चक्र अथवा बिना थकान के जितना चक्र कर सकें उतना अभ्यास करें। इससे शरीर की समस्त प्रणालियों में संतुलन स्थापित होता है। विशेषतः बैठे रहकर कार्य करने वाले एवं अधिकतर समय बैठे व्यतीत करने वालों के लिए अत्यधिक लाभप्रद है। विद्यार्थियों के लिए विचारशक्ति को तेज व पैनी बनाने तथा स्मृति-शक्ति एवं स्फूर्ति को बढ़ाने में अत्यन्त उपयोगी है। नीरोग शरीर एवं अच्छे स्वास्थ्य की इच्छा वाले लोगों को सूर्य नमस्कार प्रतिदिन करना चाहिए।

(६) अर्धचन्द्रासन

विधि — शरीर को आधे चाँद की तरह मोड़ने के कारण इसे अर्धचन्द्रासन कहते हैं। दोनों पैरों को सटाकर खड़े हो जाइए। हथेलियां नमस्कार मुद्रा में हों। दोनों हाथों को सिर के ऊपर कानों से सटाकर सीधे तानिए। श्वास लीजिए। श्वास रोककर धीरे-धीरे बाईं ओर यथासम्भव झुकें। श्वास छोड़ते हुए वापस लौटिए। इसी प्रकार दाईं ओर करें। इस आसन को करते हुए आगे की ओर न झुकें। ध्यान का केन्द्र — मणिपुर-चक्र। पांच बार आवृत्ति करें।

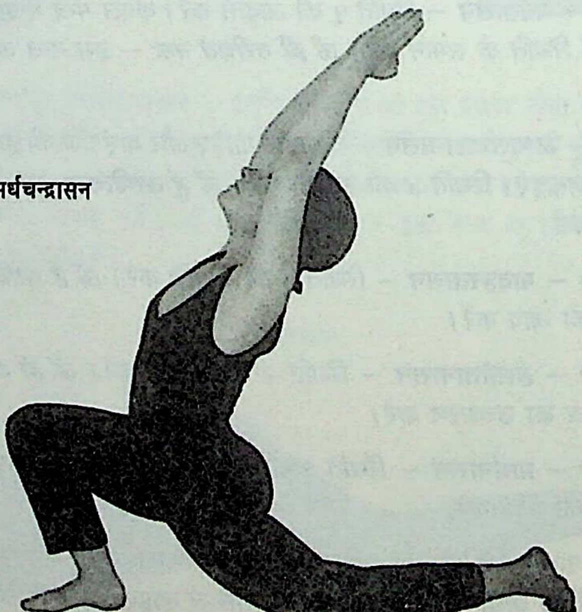

अर्धचन्द्रासन

लाभ —पूरे ढाँचे को मजबूत एवं लचीला बनाता है। विशेषतः बड़ी आंत, रीढ़ की माँसपेशियां, स्नायुमण्डल, नितम्ब, घुटने, जंघाएं एवं पसलियों पर प्रभाव पड़ने से इन्हें पुष्ट करता है और उनमें स्थित रोग एवं दर्दादि दूर करता है।

प्रकारान्तर — दोनों पैरों को सटाकर खड़े हो जाइए। श्वास छोड़ते हुए पूरे शरीर को मोड़ते हुए दोनों हाथों को पैरों के बगल में रखिए। किन्तु जमीन पर न जमाइए। दाहिने पैर को पीछे की ओर खींचते हुए गर्दन को पीछे की ओर और पीठ को भीतर की ओर कमान की तरह झुकाइए। श्वास लेते हुए यथासम्भव करें। श्वास छोड़ते हुए वापस सीधे होइए। पांच बार आवृत्ति करें।

(७) पृष्ठासन

विधि — एक फुट के अन्तर से पैरों को रखकर खड़े हो जाइए। हाथों को उठाते हुए शरीर को कमर से पीछे की ओर झुकाइए। हाथों को घुमाकर पैरों के टखनों को पकड़िए। सिर को पीछे झुकाइए। शरीर का संतुलन बनाए रखते हुए यथासम्भव पूरे शरीर को विशेषतः पीठ एवं सिर को जमीन की ओर लाने का प्रयत्न करते हुए झुकाइए। वापस खड़े हो जाइए। श्वास लेकर आसन करना एवं छोड़ते हुए वापस खड़े होना चाहिए।

इस आसन को हृदय, रक्तचाप, पेट के अल्सर एवं पीठ के विशेष दोष वाले रोगी न करें।

ध्यान का केन्द्र — मणिपुर-चक्र अथवा पीठ की मांसपेशियों पर।

लाभ — पीठ एवं उदर संस्थान को मजबूत करता है।

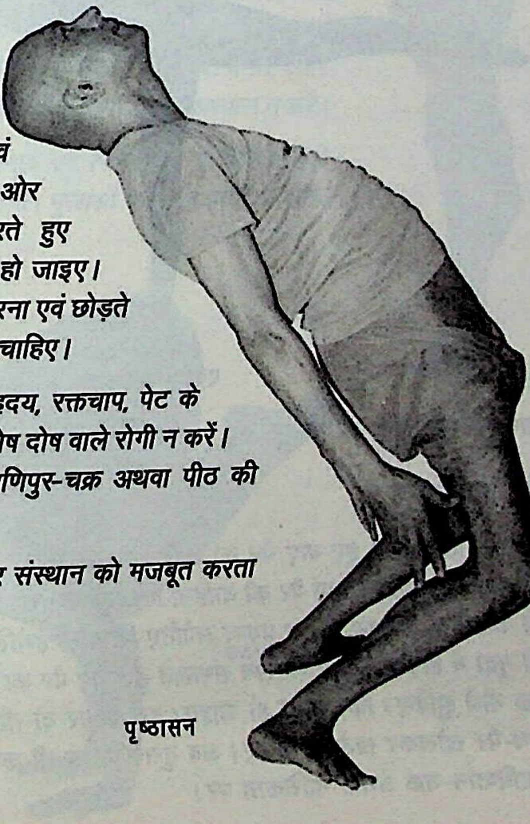

पृष्ठासन

(८) एकपादासन

विधि – दोनो पैरों को सटाकर सीधे खड़े रहिए। दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में बांधकर सिर के ऊपर सीधा तानिए। धीरे-धीरे सामने झुककर कमर, सिर और दोनों हाथों को एक सीधी रेखा में ले जाइए। अब शरीर के संतुलन को बनाए रखते हुए बाएं पैर को भी सीधी रेखा में शामिल करें। अर्थात् दाहिना पैर खम्बे के समान हो और उस पर बाई एड़ी, घुटना, नितम्ब, पीठ, सिर एवं दोनों हाथ एक सीध में जमीन के समानान्तर हों। आराम से यथासम्भव ऐसे ही रुकें और वापस खड़े होइए। इसी प्रकार दूसरे पैर से अभ्यास करें। पांच बार दुहराइए। हाथों को उठाते समय श्वास लें, झुकते हुए श्वास छोड़ें, अन्तिम अवस्था में स्वाभाविक श्वास रहे और वापस आते हुए श्वास लें। ध्यान का केन्द्र – शरीर के संतुलन पर।

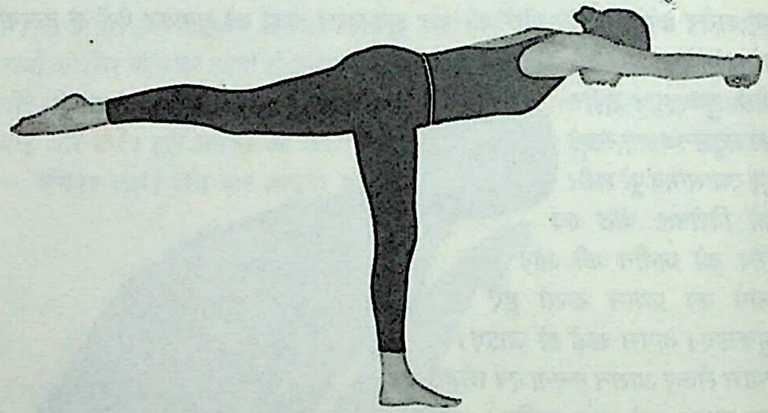

एकपादासन

लाभ – पूरे शरीर को मजबूत एवं संतुलित तथा शिथिल करता है।

(९) गरुड़ासन

विधि – खड़े रहते हुए बाएं पैर को दाहिने पैर के ऊपर रखें फिर दाहिने घुटने को पीछे से लपेटकर बाएं पैर की दाहिनी पिण्डली के सहारे रखें। अब दोनों हाथों को कोहनियों के मध्य से इस प्रकार लपेटिए कि दोनों हथेलियां प्रार्थना (नमस्कार) की मुद्रा में हों। शरीर का संतुलन संभालते हुए बाएं पैर का अंगूठा जमीन को छूने तक नीचे झुकिए। फिर ऊपर हो जाइए। इस प्रकार दो-तीन बार दुहराइए। फिर हाथ-पैर खोलकर खड़े हो जाइए। अब दूसरे पैर से भी करें। ध्यान का केन्द्र – स्वाधिष्ठान-चक्र अथवा नासिकाग्र पर।

लाभ — अण्डकोषवृद्धि, कमर दर्द, स्लिपडिस्क, गठिया, साइटिका, पैरों की हड्डी एवं जोड़ों के दर्द, हाथ-पैर के वात, पैरों की गिल्टियां एवं गुदा और मूत्राशय के सकल दोष दूर होते हैं।

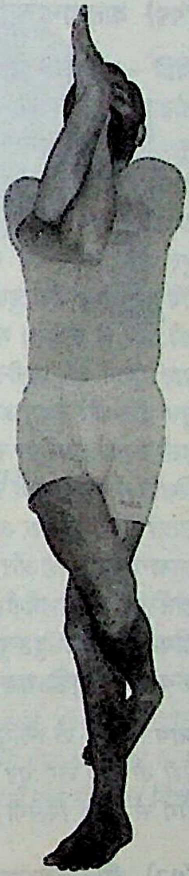

गरुड़ासन

(१०) बकध्यानासन

विधि — पैरों को दूर-दूर रखकर उकड़ूं बैठिए। हथेलियों को पैरों के सामने भूमि पर टिकाइए। कोहनियों को आगे की ओर थोड़ा झुकाइए। घुटनों को भुजाओं के बाहर की ओर रखें। धीरे-धीरे सामने की ओर झुकते हुए पैरों को जमीन से ऊपर उठाइए। आवश्यकता पड़े तो घुटनों को ऊपरी भुजाओं पर रख लें। पूरे शरीर के भार को हथेलियों पर संतुलित कर लें। सिर को थोड़ा उठाए रखिए। इस अवस्था में अन्तःकुम्भक लगाकर यथाशक्ति स्थिर रहें। एक से पांच बार आवृत्ति करें। नासिकाग्र पर दृष्टि बनाए रखें। उच्च रक्तचाप एवं मस्तिष्क के रोगी इसका अभ्यास न करें।

लाभ — मानसिक तनाव एवं चिन्ता दूर होती है। नाड़ी संस्थान में स्थिरता होगी। भुजाओं एवं कलाइयों को शक्ति प्रदान करता है।

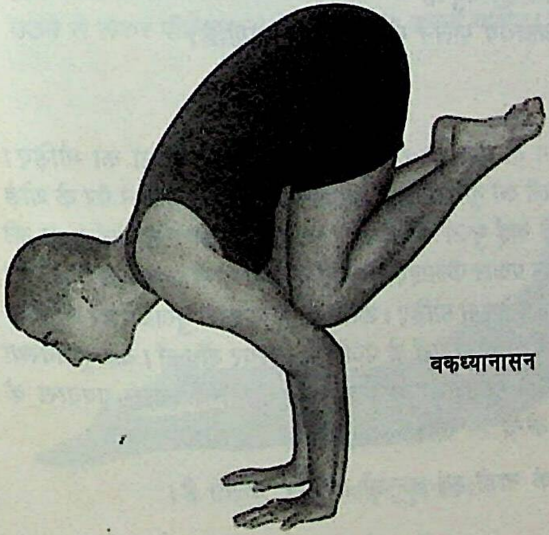

वकध्यानासन

(११) वातायनासन

विधि — सीधे खड़े होकर बाएं घुटने को मोड़कर बाएं पैर को दाहिनी जांघ के मूल में अर्द्ध-पद्मासन के समान रखें। दोनों हाथों को प्रार्थना की मुद्रा में रखें छाती के सामने। दाहिने पैर को मोड़ते हुए और शरीर को सीधा रखते हुए (बिना आगे या पीछे झुकाए) नीचे जमीन की ओर ले जाइए। यदि संभव हो तो बाएं घुटने को जमीन पर टिकाइए। पुनः धीरे-धीरे प्रथम अवस्था में आइए। इसी प्रकार दूसरे पैर से भी करें। प्रथम स्थिति में पूरक, नीचे उतरते एवं ऊपर उठते समय कुम्भक, अन्तिम अवस्था में सामान्य श्वास रहे और वापस सीधे खड़े होने पर श्वास छोड़ें। प्रत्येक पैर से पांच-पांच बार दुहराइए। ध्यान का केन्द्र — विशुद्धि-चक्र।

वातायनासन

लाभ — पैरों के स्नायु मजबूत होने से पैरों के वात रोग दूर होते हैं। मधुमेह रोग से मुक्ति मिलेगी। ब्रह्मचर्य पालन में अत्यन्त उपयोगी है।

(१२) अष्टावक्रासन

विधि — पैरों को लगभग दो फुट दूर रखते हुए खड़े होइए। घुटनों को मोड़िए। पैरों के मध्य से बाईं हथेली को भूमि पर रखें। दाहिनी हथेली को दाहिने पैर के थोड़े सामने रखें। बाएं पैर को बाईं भुजा पर रखिए। भुजाओं के मध्य से बाईं भुजा की ओर से दाहिने पैर को इस प्रकार फैलाइए कि बाईं कोहनी दोनों जांघों के नीचे रहे। अब दोनों हाथों को कोहनी प्रदेश से मोड़िए। शरीर के पूरे भार को भुजाओं पर संतुलित कीजिए। आवश्यकता पड़े तो दोनों पैरों के पंजों को परस्पर बाँध लें। यह पूर्णावस्था है। शरीर के दूसरी ओर से भी इसका अभ्यास करें। सामान्य श्वास-प्रश्वास के साथ करें। ध्यान का केन्द्र — आज्ञा-चक्र अथवा स्वाधिष्ठान-चक्र।

लाभ — समस्त शरीर के नाड़ी एवं तन्तुओं को पुष्ट करता है।

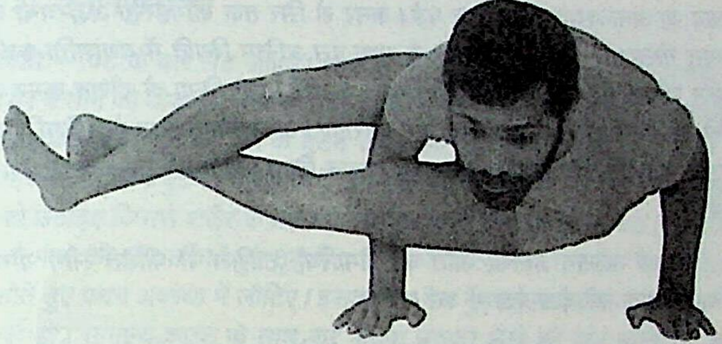

अष्टावक्रासन

पेट के बल किए जाने वाले आसन

(१) भुजंगासन

विधि – पेट के बल लेट जाइए तथा पैरों को सीधा व लम्बा फैलाइए। हथेलियों को कन्धों के नीचे जमीन पर रखिए। माथे को जमीन से छूने दीजिए। पूरे शरीर को ढीला छोड़ें। धीरे-धीरे सिर एवं कन्धों को जमीन से ऊपर उठाइए। ऐसा करते वक्त श्वास लीजिए। सिर को जितना पीछे की ओर ले जा सकें, ले जाइए। दोनों हाथ सीधा होने तक ही नहीं बल्कि हाथों का सहारा लिए बिना पीठ के सहारे ऊपर उठने से लेकर पीछे झुकने तक की क्रिया करनी चाहिए। ध्यान रखें पीठ पर विशेष

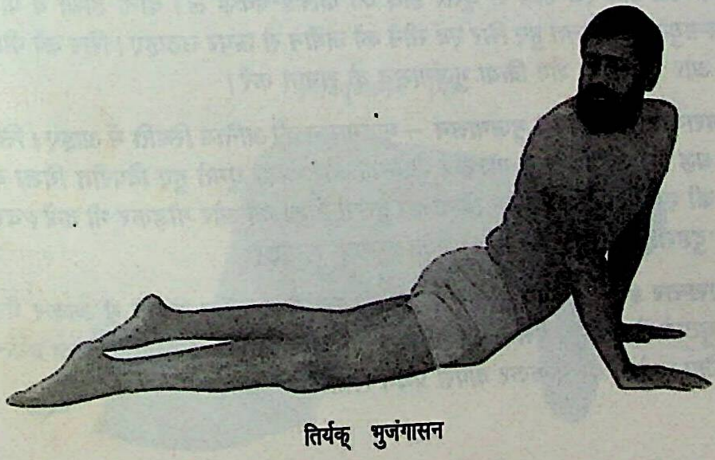

तिर्यक् भुजंगासन

तनाव या अनावश्यक खिंचाव न पड़े। कमर से सिर तक का हिस्सा अर्द्ध-चन्द्र के समान गोलाकार हो। अब कुम्भक के साथ इस अन्तिम स्थिति में यथाशक्ति रुकें। श्वास छोड़ते हुए आराम से पहली स्थिति में लौटें। पूरी क्रिया के दौरान कमर के नीचे का हिस्सा स्थिर रखें। पांच बार दुहराइए। आध्यात्मिक लाभ हेतु विशुद्धि या आज्ञा–चक्र पर और शरीरिक लाभ हेतु श्वसन-क्रिया अथवा मणिपुर-चक्र पर ध्यान रखें।

पेट के अल्सर, हर्निया, आंत की बीमारियों, टांसिल से पीड़ित लोग योग्य योग-प्रशिक्षक की देख-रेख में करें।

लाभ – सर्वाइकल, स्लिपडिस्क, पीठ दर्द, मधुमेह, गुर्दे सम्बन्धी रोग, खाँसी, पेट सम्बन्धी रोग, दमा आदि रोगियों के लिए लाभदायक है। महिलाओं के विशेषतः प्रदर, कष्टदायक एवं अनियमित मासिक धर्म, अण्डाशय, गर्भाशय सम्बन्धी रोग दूर होते हैं। सामान्य रूप से मेरुदण्ड संस्थान को लचीला, स्वस्थ एवं पुष्ट करता है। साधकों को कुण्डलिनी जागरण में एवं पेट की सफाई में अत्यन्त उपयोगी है।

प्रकारान्तर १ – स्फिंक्स की आकृति – पेट के बल लेटकर हाथों को कन्धों के नीचे रखने के बदले हथेलियों से कुहनियों तक के भाग को सिर के बगल में सामने की ओर फैलाकर जमीन पर रखें। श्वास लेते हुए एवं सिर को ऊपर उठाते हुए नाभि से शरीर के ऊपरी भाग को भी उठाकर पीछे की ओर यथासम्भव मोड़िए। इस स्थिति में श्वास रोककर यथाशक्ति रखें। श्वास छोड़ते हुए प्रथम स्थिति में लौटिए। पांच बार दुहराइए।

प्रकारान्तर २ – सर्पासन – पेट के बल लेटकर हाथों को पीठ के ऊपर उल्टा करके रख लें। एक हाथ से दूसरे हाथ की कलाई पकड़ लें। दोनों हाथों व पीठ के स्नायुओं को तानते हुए सिर एवं सीने को जमीन से ऊपर उठाइए। सिर को पीछे की ओर झुकाइए। शेष क्रिया भुजंगासन के समान करें।

प्रकारान्तर ३ – तिर्यक भुजंगासन – भुजंगासन की अन्तिम स्थिति में आइए। सिर एवं धड़ को एक दिशा में मोड़कर पीछे की ओर थोड़ा घूमते हुए विपरीत दिशा के पैर की एड़ी को देखिए। इस क्रिया को दूसरी दिशा की ओर मोड़कर भी करें। दस बार दुहराइए। ध्यान रखें मुड़ते वक्त कुम्भक लगाएं।

प्रकारान्तर ४ – पूर्णभुजंगासन – भुजंगासन की अन्तिम स्थिति में आकर पैरों को घुटनों से मोड़िए। पैरों की अंगुलियों से सिर के पिछले हिस्से को छूने का प्रयत्न कीजिए। थोड़ी देर रुककर वापस प्रथम स्थिति में लौटिए।

(२) उत्तानपृष्ठासन

विधि – पेट के बल लेट जाइए। हाथों से एक-दूसरे की कोहनियों को पकड़ लें। सिर व सीने को थोड़ा सा उठाकर सीने के निचले भाग में रख लीजिए। भुजाएं मजबूती से जकड़ी रहें। तने हुए पैरों के घुटने से निचला भाग भी जमीन पर जमा रहे। इस आसन के दौरान घुटने एवं कोहनियां अपने स्थान से नहीं हटनी चाहिए। अब नितम्बों को उठाइए जिससे शरीर के धड़ भाग का भार हाथों और घुटनों पर पड़े। उदर भाग को पीछे की ओर खींचते हुए ठुड्डी व सीने को जमीन पर रखें। फिर आगे की ओर होते हुए प्रथम अवस्था में लौटिए। इसको दस बार दुहराइए। एकाग्रता अनाहत-चक्र पर हो। सामान्य श्वास के साथ करें अथवा उठकर पीछे की ओर जाते हुए श्वास लें एवं नीचे आते हुए श्वास छोड़ें।

लाभ – नितम्ब प्रदेश, कन्धों व पीठ के लिए अत्युत्तम है।

उत्तानपृष्ठासन (१)

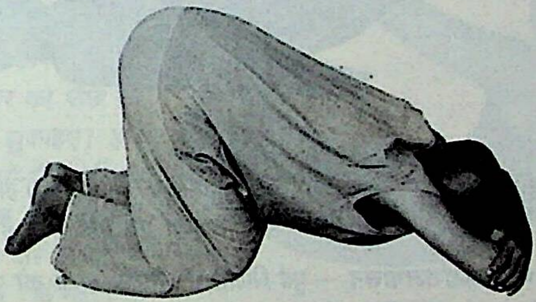

उत्तानपृष्ठासन (२)

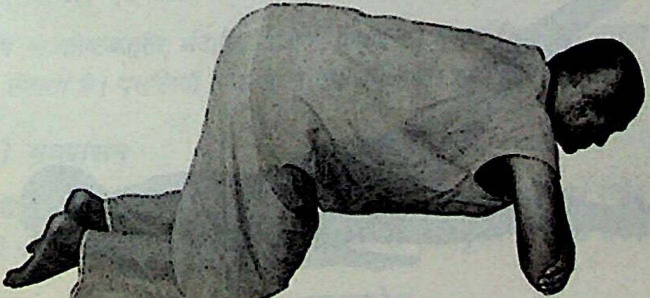

(३) शलभासन

विधि – हाथों को जांघों के नीचे रखिए। श्वास लेते हुए पैरों को खींचिए और हाथों को तानिए। बिना मोड़े पैरों को यथाशक्ति ऊपर उठाइए। कुछ देर तक कुम्भक लगाकर इस स्थिति में रहें। श्वास छोड़ते हुए आराम की प्रथम स्थिति में लौटिए। पांच बार कीजिए। ध्यान का केन्द्र – विशुद्धि-चक्र अथवा स्वाधिष्ठान-चक्र पर। इस आसन को पेप्टिक अल्सर, हर्निया व आंत के भयंकर रोग से पीड़ित तथा उच्च रक्तचाप एवं हृदय रोग के रोगी न करें।

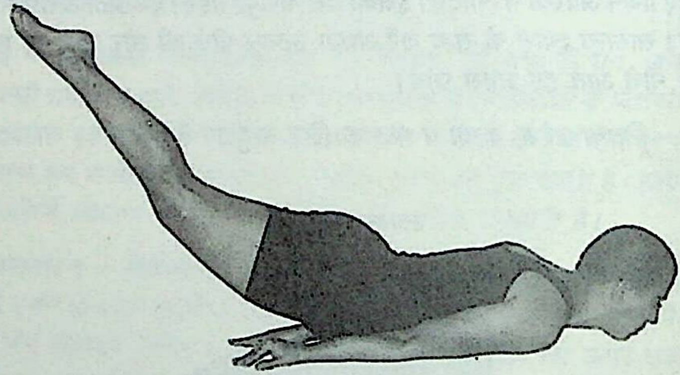

शलभासन

लाभ – रीढ़ के विकार, पेट के विकार, वात-पित्त-कफ की विषमता आदि दूर होते हैं। फेफड़े, हृदय एवं शरीर के निचले भाग सशक्त एवं पुष्ट होते हैं।

प्रकारान्तर १ – अर्द्धशलभासन – पूर्व स्थिति में लेटकर हाथों को पूर्ववत् जांघों के नीचे रखें। फर्क इतना है कि अब आप केवल एक पैर को उठाएंगे और वापस रखेंगे। फिर दूसरे पैर से करेंगे। ऐसे दस बार करें। शेष क्रिया एवं लाभादि पूर्ववत्

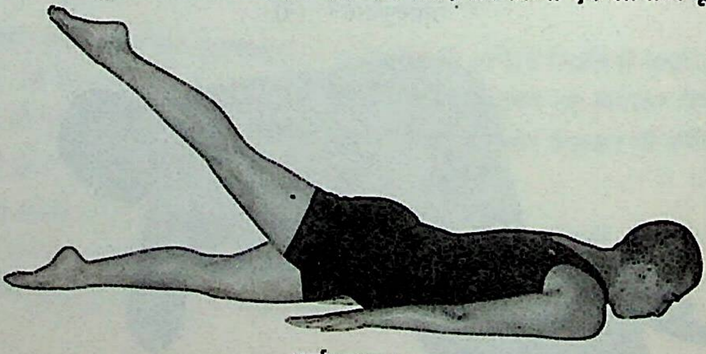

अर्द्धशलभासन

ही हैं।

प्रकारान्तर २ – पूर्णशलभासन दोनों पैरों को एक साथ शलभासन के समान ऊपर उठाइए। अब बिना हाथ हिलाए या उठाए ठुड्डी, हाथों व कन्धों पर जोर देते हुए पैरों को शीघ्रतापूर्वक इस प्रकार उठाइए कि पैर की अंगुलियों से सिर को स्पर्श करें अथवा पंजों को सिर पर रख दें। यह अन्तिम अवस्था धीरे-धीरे अभ्यास द्वारा साध लेनी चाहिए। जोर-जबरदस्ती नहीं करनी है। वापस लौटते वक्त झटके से न उतारें, धीरे–धीरे सावधानी से पैरों को उतारें। अन्तिम अवस्था में सामान्य श्वास के साथ यथासम्भव रुकें। पैरों को ऊपर ले जाते व नीचे लाते वक्त श्वास रोक लें।

(४) धनुरासन

विधि – पेट के बल लेटिए। पैरों को घुटनों से मोड़िए। दोनों पैरों के टखनों को हाथों से पकड़िए। हाथों को सीधा कीजिए जिससे पैरों के स्नायुओं में खिंचाव हो। ऐसे करते हुए आप जांघों के साथ सिर और सीने को भी जमीन से यथासम्भव ऊपर की ओर उठाइए। सिर को पीछे की ओर थोड़ा झुकाइए। इस अवस्था में आगे-पीछे झूलिए। अन्तिमावस्था में कुम्भक लगाएं। पांच बार दुहराइए। ध्यान का केन्द्र – विशुद्धि-चक्र पर अथवा अनाहत-चक्र पर आध्यात्मिक लाभ के लिए एवं शारीरिक लाभ के लिए स्वाधिष्ठान या मणिपुर-चक्र पर।

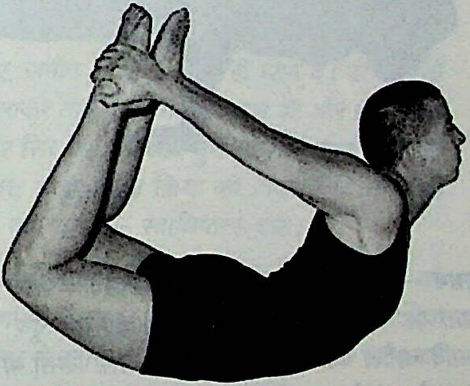

धनुरासन

लाभ – कोष्ठबद्धता, मंदाग्नि, अजीर्ण, जिगर की कमजोरी को दूर करता है। चर्बी को हटाता है। पसलियों और आंतों को यथास्थान स्थापित करता है।

(५) मयूरासन

विधि – उकडूं बैठकर हथेलियों को दोनों घुटनों के बीच भूमि पर रखें। अंगुलियां पैरों की ओर हों। कोहनियों को सटाकर या एक-दूसरे के पास उदर के निम्न

भाग पर रखें। धीरे-धीरे सामने झुकिए। ऊपरी भुजाओं एवं कोहनियों पर उदर प्रदेश एवं शरीर के भार को टिकाइए। पैरों को पीछे की ओर सीधा करके तानिए। पैरों को जमीन से ऊपर उठाकर पूरे शरीर को एक सीध में जमीन के समानान्तर साधिए। संपूर्ण शरीर का संतुलन हथेलियों पर हो। इस पूर्णावस्था में यथासम्भव रुकें। पुनः पहली अवस्था में धीरे-धीरे लौटिए। शरीर को उठाते वक्त श्वास छोड़ें, पूर्णावस्था में बहिःकुम्भक एवं वापस लौटते हुए श्वास लीजिए। यदि पूर्णावस्था में सामान्य श्वास के साथ रुकना चाहें तो रुक सकते हैं किन्तु ध्यान रहे स्नायुओं विशेषतः उदर में किसी प्रकार का तनाव या दर्द न हो। ध्यान का केन्द्र — मणिपुर-चक्र अथवा संतुलन पर।

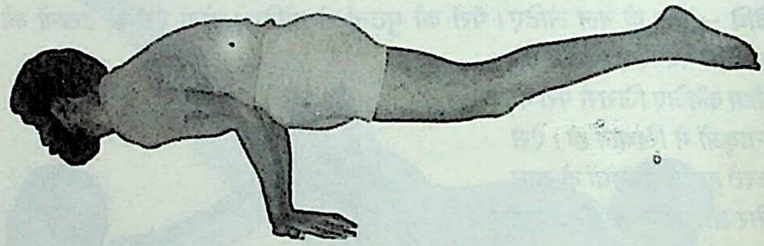

मयूरासन

लाभ — मयूरासन का अधिक लाभ उठाने के लिए दो बातें ध्यान में रखें। पहली बात यह कि — कम-से-कम दो सप्ताह तक दूध, चर्बीयुक्त पदार्थ, मांस, मदिरा आदि नशीले पदार्थ एवं देर से पचने वाला किसी भी प्रकार का गरिष्ठ भोजन तथा मसाले का सेवन पूर्णतः बन्द कर दें। दूसरी बात एक माह तक साग, फल, हरी सब्जी, चावल आदि सामान्य सुपाच्य सादा-सरल भोजन करें एवं प्रति सप्ताह लघु शंख-प्रक्षालन और कुंजल क्रिया का अभ्यास करें।

इस प्रकार एक माह तक पथ्यापथ्य एवं सफाई कर लेने के पश्चात् विषैले पदार्थों से मुक्ति पाने के लिए इस आसन का अभ्यास करें। शरीर सुडौल, मजबूत एवं कुण्डलिनी जागरण के योग्य बनता है। विशेषतः फोड़े, फुंसी आदि सब प्रकार के चर्म रोग के लिए रामबाण है। उदर विकार उनमें भी प्रमुखतः मधुमेह में अत्यन्त उपयोगी है। रीढ़ के विकार और पेट के कीड़े नष्ट होते हैं। वात-पित्त-कफ की विषमता दूर होने से सर्वरोगनाशक है। इस आसन के हंसासन एवं लोलासन प्रभेद हैं।

पीठ के बल किए जाने वाले आसन

(१) मकरासन II

इसी अध्याय के *ध्यान के आसन* नामक खण्ड में हमने अपने पूज्य गुरुदेव परमहंस स्वामी सत्यानन्द सरस्वतीजी के मत के अनुसार 'शिथिलीकरण आसन समूह' के अन्तर्गत पेट के बल लेटकर किए जाने वाले मकरासन I का वर्णन पृष्ठ ७६ में किया है।

लेकिन पीठ के बल लेटकर किए जाने वाले आसन के रूप में हिमालय के सन्तों में प्रसिद्ध परम्परा के अनुसार वर्णन कर रहा हूँ। यद्यपि इसी को प्रकारान्तर से पूज्य गुरुदेव भी वर्णन करते हैं जिसको हमने इसी अध्याय के अन्तर्गत "वातनिरोधक अभ्यास" नामक "पवनमुक्तासन" के द्वितीय समूह के क्रमांक ४ में हिलना-डुलना नाम से वर्णन किया है।

विधि —पीठ के बल लेटिए। एड़ी व पंजों को सटाकर रखें। घुटने मोड़कर दोनों एड़ियों को नितम्बों के पास लाइए, जमीन से थोड़ा ऊपर ही रहने दें। दोनों हाथों को कंधों की सीध में दाएं-बाएं फैलाकर तानिए। हथेलियां ऊपर की ओर हों। श्वास भरते हुए घुटनों को दाईं ओर और सिर को बाईं ओर घुमाकर बाएं कान को पृथ्वी पर लगाएं। श्वास छोड़ते हुए वापस आइए। इस क्रिया को विपरीत दिशा से भी करें। दस बार दुहराइए। ध्यान का केन्द्र – स्वाधिष्ठान-चक्र।

इसमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि पूरी क्रिया के दौरान पंजे जमीन को न छुएं। घुटनों को जब दाएं-बाएं मोड़ते हैं तब घुटनों से जमीन को छूने की कोशिश करें। हाथों को उठाना या अपने स्थान से हटाना भी नहीं। रीढ़ को यथाशक्ति मरोड़कर खिंचाव पैदा करना चाहिए।

मकरासन II

लाभ – श्वास सम्बन्धी रोग एवं मधुमेह में अत्यन्त उपयोगी है। कब्ज़ आदि उदर सम्बन्धी रोग दूर होते हैं। रीढ़ के दोष मिटता है और रक्तचाप संतुलित रहता है। पूरे शरीर की समस्त मांसपेशी, तन्तु एवं स्नायुमण्डल की मालिश हो जाने से पूरा शरीर पुष्ट एवं लचीला होता है।

प्रकारान्तर – पीठ के बल सीधा लेटिए। दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर दाहिने एड़ि को बायीं जांघ के मूल में स्थापित करें। दोनों हाथों को सिर के ऊपर फैलाकर तानिए। हथेलियाँ ऊपर की ओर हों। श्वास भरते हुए मुड़े हुए घुटने को बायीं ओर झुकायें और जमीन को छूने की कोशिश करें। साथ ही सिर को दाइं ओर घुमाकर दाएं कान को पृथ्वी पर लगाएं। श्वास छोडते हुए वापस आइये। इस क्रिया को विपरीत दिशा से भी करें।

(२) चक्रासन

विधि – पीठ के बल लेटकर घुटनों को मोड़िए। एड़ियों को नितम्बों से सटाकर जमीन पर रखें। दोनो पैर करीब एक से डेढ़ फुट दूर हों। हथेलियों को जमीन पर कनपटियों के बगल में इस प्रकार उल्टा घुमाकर रखिए कि अंगुलियां कंधों की ओर हों। एक लम्बी गहरी श्वास लेकर कुम्भक लगाकर धीरे-धीरे पूरे धड़ को ऊपर उठाइए। सिर को भी धीरे-धीरे सरकाते हुए आधे शरीर के भार को सिर के ऊपरी भाग पर डालें। अब हाथों और पैरों को सीधे तानते हुए शरीर को पूरी गोलाई में ऊपर उठाइए। यथासम्भव ऊपर की ओर खींचे हुए कुछ क्षण रुकिए। धीरे-धीरे श्वास छोड़ते हुए पहले सिर पर थामते हुए वापस लेटी हुई स्थिति में लौटिए।

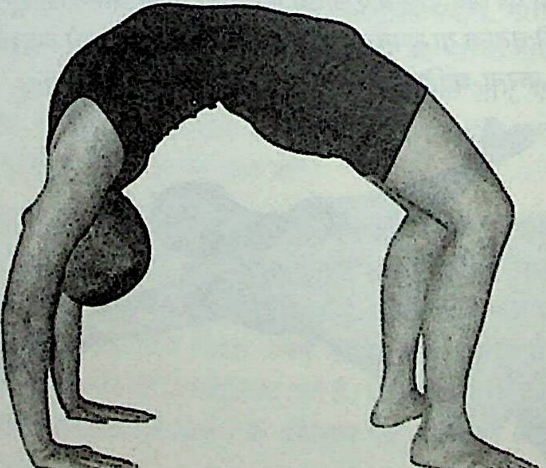

चक्रासन

इसकी पूर्ण अवस्था में हाथों व पैरों को अधिक-से-अधिक नजदीक लाने की कोशिश करनी चाहिए। अन्तिम अवस्था में हाथ और पैर सटाए हुए सामान्य श्वास लेते हुए यथाशक्ति रुक सकते हैं।

उच्च रक्तचाप, ह्रदय रोग, पेट के अल्सर, अस्वस्थ आंत, अस्थि दोष, नेत्र दोष और ऊँचा सुनने वाले रोगी इसे न करें। ध्यान का केन्द्र — मणिपुर-चक्र अथवा श्वसन-क्रिया या स्वाधिष्ठान-चक्र।

लाभ — यह आसन सभी नाड़ियों एवं ग्रन्थियों के लिए लाभदायक है। स्त्रियों के प्रजनन सम्बन्धी कई रोगों को समूल नष्ट करता है। मस्तिष्क के सिरदर्द, माइग्रेन आदि अनेक रोग दूर होते हैं। लकवा रोग में लाभदायक है। शारीरिक एवं मानसिक कमजोरियां दूर होती हैं।

(३) सर्वाङ्गासन

विधि — पीठ के बल सीधे लेटिए। दोनों हाथ जमीन पर बाजू में तथा हथेलियां नीचे की ओर खुली रहें। हाथों का सहारा लेकर दोनों पैरों को धीरे-धीरे ऊपर उठाइए। हाथों को कोहनियों से मोड़िए और हथेलियों से दबाते हुए पीठ को सीधा कीजिए। धड़ एवं पैर ग्रीवा से समकोण बने और शरीर संतुलित रहे, ऐसे अपने आपको स्थिर कर लें। ठुड्डी का स्पर्श छाती से होने तक पीठ को सीधा कर सकें तो अत्युत्तम होगा। आरम्भ में श्वास लेकर कुम्भक कीजिए। ऊपर उठते एवं नीचे उतरते वक्त कुम्भक करें। बीच की अवस्था अर्थात् उठी हुई अवस्था में स्वाभाविक श्वास यदि आवश्यकता पड़े तो ले सकते हैं। ध्यान का केन्द्र आध्यात्मिक लाभ हेतु विशुद्धि-चक्र पर अन्यथा चुल्लिका ग्रन्थि या श्वसन-क्रिया पर।

सर्वाङ्गासन

उच्च रक्तचाप, ह्रदय रोग, चुल्लिका ग्रन्थि, यकृत की समस्या और तिल्ली बढ़े हुए रोगियों को इस आसन को नहीं करना चाहिए।

सर्वाङ्गासन के बाद मत्स्यासान अवश्य

करना चाहिए। इस आसन में रहते हुए पैरों को तानना, मूलबन्ध एवं जालन्धर-बंध लगाना, धीरे-धीरे पैरों को सिर की ओर पृथ्वी के समानान्तर झुकाना, पद्मासन लगाना, एक पैर को घुटनों से मोड़ना, पैरों को हल्का घुमाना और कन्धरासन किया जा सकता है।

ध्यान रहे झटके से कोई क्रिया नहीं करनी है और उतरते वक्त पहले कमर के भाग तक धीरे-धीरे जमीन पर लेटकर कुछ क्षण रुकने के पश्चात् पैरों को जमीन पर लेटाने से अधिक लाभ होगा।

लाभ — जैसा नाम वैसा काम। शरीर के समस्त अंगों पर प्रभाव डालता है और शरीर का समुचित विकास करता है। मस्तिष्क में रक्तप्रवाह अधिक होने से मानसिक कमजोरियां और मनोवैज्ञानिक रोगों को दूर करता है। दमा, खाँसी, हाथी पांव, बवासीर, हाईड्रोसिल, प्रदर, मधुमेह आदि अनेकों रोग दूर होते हैं। विशेषतः आँख, कान, नाक एवं गला सम्बन्धी रोग, स्वप्नदोष, ब्रह्मचर्य खण्डन, बाँझपन, बच्चादानी की गड़बड़ी दूर होते हैं। स्मरण-शक्ति एवं मेधा-शक्ति बढ़ती है।

(४) विपरीतकरणी मुद्रा

विधि — यह आसन सर्वाङ्गासन की तरह ही है किन्तु सरल है। जिनकी गर्दन व पीठ की मांसपेशियां कठोर हैं तथा जो धड़ को सीधा नहीं कर सकते, उन्हें आरम्भ में इस आसन को करना चाहिए।

अन्तर यह है कि इसमें ठुड्डी का स्पर्श छाती से नहीं होता। धड़ जमीन से उठाकर ४५° (अंश) के कोणाकार में रखा

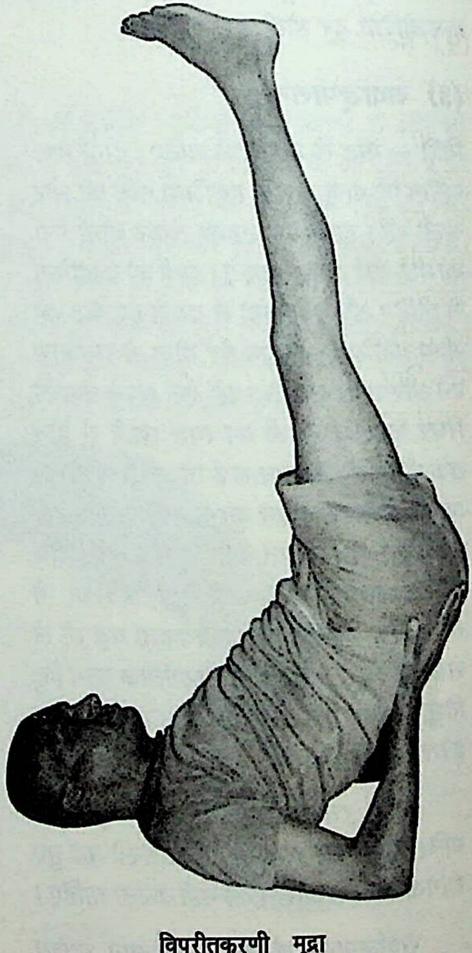

विपरीतकरणी मुद्रा

जाता है न कि सर्वाङ्गासन के समान ६०° (अंश) के कोण के समान। कुण्डलिनी जागरण सम्बन्धी क्रियाओं में इसका अधिक उपयोग है। श्वास, ध्यान, लाभ आदि शेष सारे क्रिया-कलाप सर्वांगासन के समान ही हैं।

अतिरिक्त लाभ यह है कि ललना-चक्र से स्रावित अमृत जो जठराग्नि में जाकर नष्ट होता था उसकी रक्षा होती है। अतः यह एक मुद्रा है क्योंकि शरीर के अन्दर नाभिमण्डल को सूर्य एवं जिह्वा आदि से युक्त मुँह को चन्द्र माना गया है। इस आसन में स्वाभाविक स्थिति (सूर्य नीचे, चन्द्र ऊपर) को तोड़कर उल्टा किया जाता है (सूर्य ऊपर, चन्द्र नीचे)। इसलिए इसे **विपरीतकरणी** कहते हैं। अम्लता, रक्ताल्पता, मधुमेह, मस्तिष्क के विकार, यौन ग्रन्थि के विकार आदि में इसका विशेष उपयोग है।

(५) हलासन

विधि — पीठ के बल लेटिए। हाथों को नितम्बों के बगल में रखें। हथेलियां ऊपर की ओर खुली रहें। पैरों को सीधे तानिए। दोनों पंजे व एड़ी को सटाकर रखिए। लम्बी गहरी श्वास लेकर पैरों को सीधे तने हुए ही श्वास छोड़ते हुए धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठाइए। हाथों के बल उठने की कोशिश न करें किन्तु उदर की मांसपेशियों पर जोर डालते हुए पैरों को उठाइए। पैरों को सिर के पीछे ले जाकर अंगूठों को जमीन पर रखें। पैरों को कहीं से भी मोड़ना नहीं, अतः कमर व पीठ पूरा उठेगा एवं तुड्डी कण्ठकूप में लगेगा। अपने आप जालन्धर-बन्ध लगेगा। हाथों को कमर पर रखिए और धड़ को सहारा देते हुए यथाशक्ति इस अवस्था में बन्ध लगाए हुए अथवा स्वाभाविक श्वास के साथ रुकें। पहली स्थिति में वापस लौटिए। ध्यान रखें

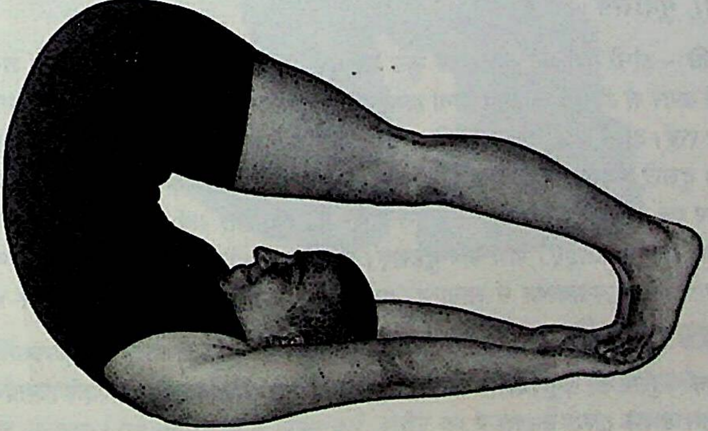

हलासन

लौटते वक्त अन्तःकुम्भक लगाए हुए धीरे-धीरे रीढ़ की गोटियों को एक-एक करके क्रम से रखें कमर तक। कुछ क्षण रुकें। फिर मन्द गति से पैरों को जमीन पर लेटाइए। सामर्थ्य एवं समय के अनुसार पांच बार दुहराइए।

अन्तिम स्थिति में रहते हुए पैरों को फैलाना और सिर पर तने हुए पैरों को हाथों से पकड़ने की क्रिया को भी कर सकते हैं। जो लोग आरम्भ में इस आसन को नहीं कर सकते वे पूर्वाभ्यास के रूप में कमर तक जमीन पर लेटे हुए केवल पैरों को अपने पेट के ऊपर आकाश में उठाएं और उस अवस्था में पैरों को फैलाएं। वापस लौटें। ध्यान का केन्द्र — विशुद्धि-चक्र अथवा मणिपुर-चक्र पर।

लाभ — चर्बी घटाना, मन्दाग्नि दूर करना, पेडू को तनाव रहित करना तथा वृक्कों को स्वस्थ एवं व्यवस्थित करना। हड्डियों के कैल्शियम की रक्षा करता है और समस्त ग्रन्थियों को सक्रिय करता है। फेफड़ों में से दूषित वायु को निकालकर स्वस्थ करता है। बाँझपन को दूर करने में अत्यधिक प्रभावशाली है।

पूर्ण लाभ प्राप्त करने के लिए हलासन और पश्चिमोत्तानासन को एक साथ गत्यात्मक ढंग से लगातार तीन से पांच मिनट करें। लेकिन यह तब करना चाहिए जब रीढ़ की हड्डी पूर्णरूपेण लचीली हो अन्यथा लाभ के बजाए नुकसान होगा।

वृद्ध, दुर्बल, उच्च रक्तचाप, हृदय के रोग, साइटिका और स्लिपडिस्क के रोगी इसे कदापि न करें।

सिर के बल किए जाने वाले आसन

(१) मूर्धासन

विधि —दोनों पैरों को तीन-चार फुट की दूरी पर रखकर खड़े हो जाइए। शरीर को कमर से आगे झुकाइए। दोनों हाथों को अपने सामने २-३ फुट की दूरी में जमीन पर रखें। दोनों हाथों के मध्य भूमि पर सिर के ऊपरी भाग को रखें। यह प्रथम अवस्था है। दूसरी अवस्था में हाथों को उठाकर पीठ पर बांध लीजिए। एड़ियों पर उठिए। सिर एवं पैरों की अंगुलियों पर संपूर्ण शरीर को संतुलित रखें। कुछ रुककर वापस सीधे खड़े हो जाइए। पांच बार दुहराए। झुकते हुए और लौटते वक्त अन्तःकुम्भक लगाएं। सन्तुलनावस्था में सामान्य श्वास रखें। ध्यान का केन्द्र — सहस्रार-चक्र अथवा श्वसन-क्रिया पर हो।

लाभ — सिर को संपूर्ण शरीर का भार वहन करने एवं मस्तिक को अतिरिक्त रक्तप्रवाह सहन करने योग्य बनाता है।

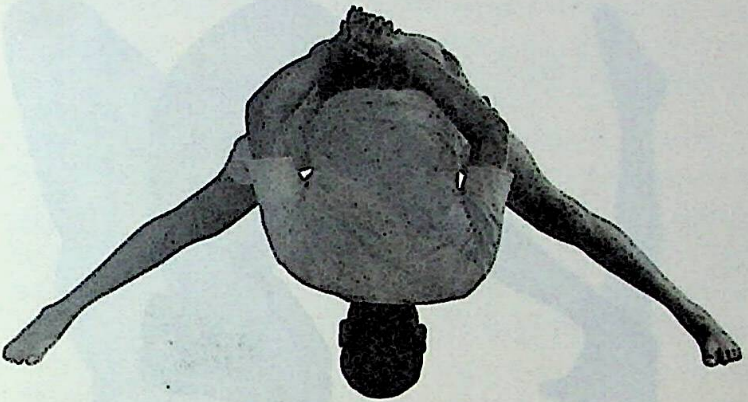

मूर्धासन

(२) शीर्षासन

विधि — इस आसन को क्रमशः छः अवस्थाओं में करना उचित है।

***प्रथमावस्था** — वज्रासन में बैठिए। सामने झुककर कोहनियों को कन्धों के समानान्तर दूरी पर टिकाइए। अंगुलियों को आपस में फंसाकर जमीन पर रखिए। बंधी हुई अंगुलियों के समीप भूमि पर सिर के ऊपरी भाग (शीर्ष) को टिकाइए।*

शीर्षासन (१)

***द्वितीयावस्था** — ठीक से सिर को अपनी हथेलियों के सहारे जमा लें ताकि वजन पड़ने पर पीछे न खिसके और न गिर पाएं। पंजों को जमाए हुए केवल घुटने को ऊपर उठाइए। पैर को बिल्कुल सीधा करें, शरीर का वजन शीर्ष पर डालना शुरु कर दें।*

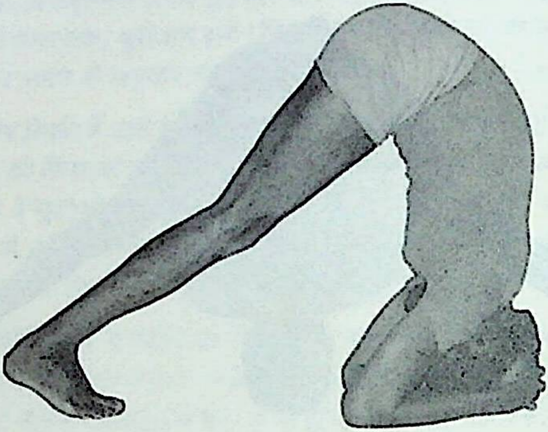

शीर्षासन (२)

तृतीयावस्था — घुटनों को मोड़ते हुए पैरों को धड़ के समीप लाइए। पीठ सीधी तनी रहने दें। जांघों का दबाव उदर एवं छाती के निचले भाग पर हो। अब पंजों को उठाकर धीरे-धीरे शरीर का पूरा वजन शीर्ष पर डालें। शरीर का संतुलन हाथों एवं सिर के सहारे बनाए रखें।

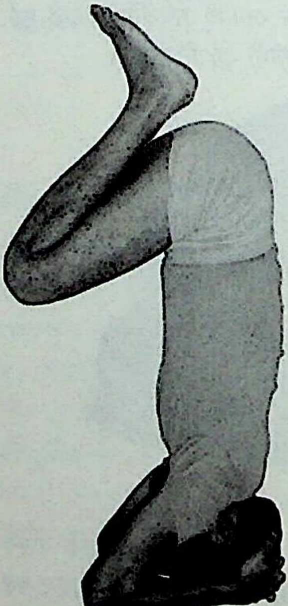

शीर्षासन (४)

चतुर्थ अवस्था — अब नितम्बों को उठाकर सीधा कीजिए। इससे मुड़े पैर धड़ से कुछ दूर होंगे और ऊपर की ओर उठ जाएंगे। संतुलन बनाए रखें।

पञ्चम अवस्था — घुटनों को पूर्णतः सीधी अवस्था में लाइए। किन्तु पैरों को घुटने से निचले हिस्से को मुड़ा हुआ रहने दें। इस अवस्था में शरीर पूरी तरह सीधा एवं उल्टा रहेगा।

अन्तिम अवस्था — अब घुटनों से पैर के निचले भाग को भी सीधा कीजिए। शरीर का भार पूर्णरूप से शीर्ष पर हो। शरीर सीधा है या नहीं यह जानने के लिए दूसरे की मदद लीजिए।

वज्रासन में बैठे हुए लम्बी गहरी श्वास लेकर कुम्भक लगाकर आरम्भ करें। इसी प्रकार वापस उतरते वक्त भी अन्तःकुम्भक लगाएं। किन्तु

शीर्षासन (५)

शीर्षासन (अन्तिम अवस्था)

अन्तिम अवस्था सामान्य श्वसन-क्रिया करते हुए यथाशक्ति स्थिर रहें। सामान्य स्वास्थ्य के लिए तीन-से-पांच मिनट तक करना पर्याप्त है किन्तु आध्यात्मिक लाभ के लिए आधे घण्टे तक कर सकते हैं। ध्यान का केन्द्र — सहस्रार-चक्र अथवा श्वास एवं संतुलन पर। शीर्षासन को अन्य आसनों को करने के पश्चात् अन्त में करना उचित है। शीर्षासन के पश्चात् ताड़ासन एवं शवासन करना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा नुकसान होगा।

उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, चक्कर आने वाले, मिर्गी, बदहजमी, मोतियाबिन्द, समीप दृष्टि-दोष, दिल घबराना आदि बीमारीग्रस्त लोग इसे कभी न करें।

लाभ — ब्रह्मचर्य पालन में अत्यन्त उपयोगी है। अतः संपूर्ण शारीरिक संस्थानों को शक्ति प्रदान करता है। अनेक मनोवैज्ञानिक रोगों, दमा, सिर दर्द, जुकाम, कमजोरी, सभी ग्रंथियों व संस्थानों का असंतुलन दूर होता है।

इस आसन से ऊर्ध्वरेतः होता है जिससे वीर्य ओजस शक्ति के रूप में परिणत होता है। अतः इससे स्मृति एवं मेधा शक्ति बढ़ती है और काल-क्रमेण स्वतः प्राणायाम एवं समाधि लगेगी। इसलिए शीर्षासन के बाद ताड़ासन करके ध्यान में बैठना चाहिए। समस्त रोगों का निवारण करते हुए अनाहत नाद श्रवण आदि आध्यात्मिक अनुभूति होने लगती है। इसके बारे में *योग तत्त्वोपनिषदादि* अनेकों ग्रन्थों में बहुत वर्णन किया है। शब्दों से इसके गुण एवं लाभ के बारे में कहना सम्भव नहीं है। यह आसनों का राजा है।

लेकिन उक्त शारीरिक एवं आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करने के लिए इन नियमों का सख्ती से पालन करना होगा —

१. ब्रह्मचर्य का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है इसलिए गृहस्थ इस आसन को एक मिनट से ज्यादा न करें।

२. पेट बिल्कुल साफ होना चाहिए। कब्ज़ बिल्कुल न हो।

३. सिर के माथे के भाग को जमीन पर लगाएं।

४. शरीर में किसी तरह का कम्पन न हो।

५. झटके से वापस लौटना नहीं।

६. आँखों को सख्ती से बन्द न करें।

७. संपूर्ण क्रिया में धीमी गति एवं सन्तुलन पर ध्यान रखें।

८. खान-पानादि का संयम अर्थात् आत्मसंयम को जीवन में प्रमुख स्थान देकर अध्यात्म के लिए समर्पित होना चाहिए। कहने का तात्पर्य विषय-भोग से पूर्णतया निवृत्त होना होगा।

उक्त नियमों का पालन किए बिना यदि शीर्षासन को अधिक समय करेंगे तो हानिकारक होगा। मस्तिष्क की नस फटना, अन्धा होना, पागल होना इत्यादि अपरिहार्य प्राणघातक एवं जीवननाशक परिणाम होंगे। इसलिए सावधान रहें।

प्रभेद — वृक्षासन, अर्द्ध-वृक्षासन, मुक्तहस्त-वृक्षासन, हस्तवृक्षासन, एकपाद-वृक्षासन, सालम्ब शीर्षासन, निरालम्ब शीर्षासन।

(३) ऊर्ध्वपद्मासन

विधि — शीर्षासन कीजिए। इसी अवस्था में पैरों को धीरे-धीरे मोड़कर पद्मासन लगाइए। कुछ देर रुककर, सामान्य स्थिति में लौटिए।

(४) कपाल्यासन

विधि — शीर्षासन कीजिए। सिर को सामने झुकाकर शरीर के वजन को माथे (कपाल) पर संतुलित कर लें। शीर्षासन में लौटिए। इसके पश्चात् सामान्य स्थिति में आइए।

इन दोनों आसनों के शेष विधि-विधान लाभादि शीर्षासन के समान हैं।

ऊर्ध्वपद्मासन

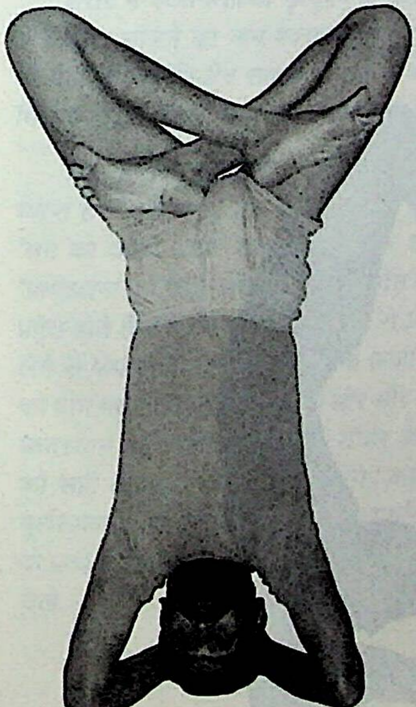

कपाल्यासन

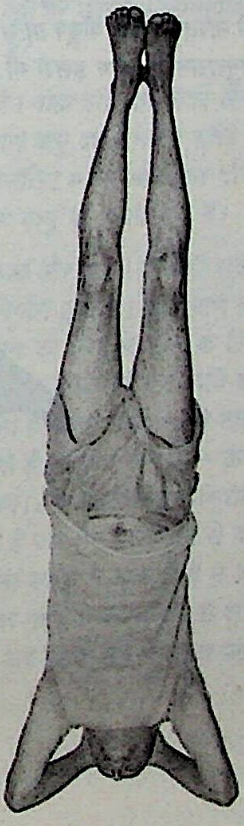

(५) वृश्चिकासन

विधि — शीर्षासन में पीठ और पैरों को कमान की तरह मोड़िए। अब अंगुलियों के बन्धन खोलकर शरीर का संतुलन बनाए रखते हुए धीरे-धीरे दोनों हाथों की कोहनियों के निचले भाग को एक-दूसरे के समानान्तर दूरी पर सिर के दोनों ओर खिसकाइए। सिर के पीछे पैरों को जमीन की ओर मोड़िए। यदि हो सके तो पैरों को सिर पर रख दें। ध्यान रखें सिर को जमीन से कुछ ऊपर उठाए रखें। संपूर्ण शरीर का भार व संतुलन कोहनियों एवं हथेलियों पर होगा। यथाशक्ति रुकने के पश्चात् शीर्षासन में लौटकर सामान्य स्थिति (वज्रासन) में वापस आइए। आसन करने एवं वापस शीर्षासन में लौटने तक अन्तःकुम्भक लगाएं। आसन की अंतिम स्थिति में रुकते वक्त सामान्य श्वास लें। ध्यान का केन्द्र — सहस्त्रार-चक्र, विशुद्धि व मणिपुर-चक्र पर हो। इस आसन के पश्चात् पश्चिमोत्तानासन अवश्य करें।

लाभ — प्राण-शक्ति को पुनर्गठित कर शरीर के ह्रास को रोकता है। नाड़ियों में स्थिरता से मस्तिष्क तथा पीयूष ग्रन्थि को विशेषतः सक्रिय करता है। शीर्षासन, चक्रासन एवं धनुरासन के लाभ इससे भी प्राप्त होते हैं।

वृश्चिकासन

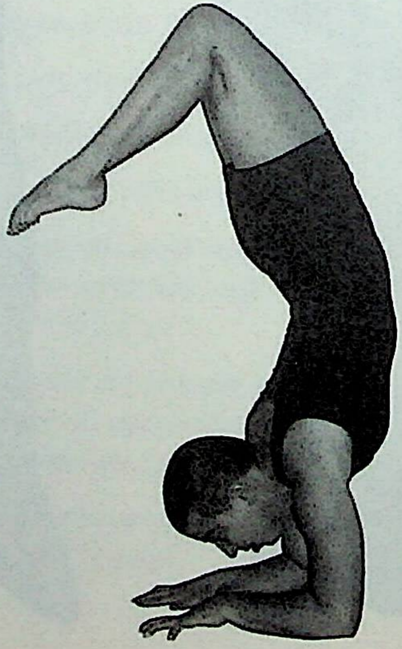

अध्याय ४

प्राणायाम विज्ञान

प्रस्तावना

प्राण का आयाम अर्थात् नियन्त्रणपूर्वक नियमन करते हुए विस्तार करना प्राणायाम है। यह शब्दार्थ है। लेकिन प्रश्न उठता है कि – प्राण क्या है? उसका नियमनपूर्वक विस्तार करने की आवश्यकता एवं उससे लाभ क्या है?

शरीर में श्वसन-क्रिया मृत्युपर्यन्त चलती रहती है। बाह्य वायु को भीतर लेना और बाहर छोड़ने का नाम श्वसन-क्रिया है। किन्तु प्राण वायु वह अन्तरंग शक्ति है जो सजीव और निर्जीव सकल पदार्थों में व्याप्त है। इसलिए श्वास और प्राण दोनों भिन्न वस्तु हैं। श्वास वायु का स्थूल रूप है और प्राण वायु का सूक्ष्म रूप है।

इस सृष्टि के कारणीभूत दो मुख्य द्रव्य हैं – आकाश और प्राण। दोनों ही सर्वत्र व्याप्त हैं। आकाश में प्राण के स्पन्दन से सृष्टि का निर्माण हुआ है। अतः प्राण को "मन का ज्येष्ठ भ्राता" कहा गया है और शास्त्रों में मन को काबू में लाने के लिए "प्राणायाम" का विधान किया है। यह सर्वत्र व्याप्त प्राणशक्ति है जिससे मन आदि सब प्रवृत्त होते हैं उसे हम श्वास के माध्यम से प्राप्त कर लेते हैं। अतः लम्बी-गहरी श्वास लेने से फेफड़ों के तीनों भाग प्राणिक ऊर्जा से भर जाते हैं। वे तीन भाग हैं – ऊपर का भाग गर्दन तक, हृदय के दोनों ओर और नीचे का भाग। इसके अतिरिक्त प्राणशक्ति मध्यस्थान एवं नाभिमण्डल में ही संचार करने लगती है जब हम प्राणायाम से वायु को सही ढंग से इस्तेमाल नहीं करेंगे। क्योंकि सामान्य श्वास में उक्त अंगों में वायु पूर्णरूपेण प्रवेश नहीं कर पाता है। प्राणशक्ति का संचार नाड़ियों के माध्यम से शरीर के प्रत्येक अंग में होता है। यह प्राण का परिचय हुआ। अब इसके बारे में शास्त्र प्रमाण देखें –

ऋग्वेद में –

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरापरावतश्च ।
दक्षं ते अन्य आवातु श्डन्यो वातु यद्रूपः ।।

योगी याज्ञवल्क्य–संहिता में –

प्राणापान समो योगः प्राणायाम इतीरितः ।
प्राणायाम ऽति प्रोक्तो रेचकपूरककुम्भकैः ।।
(६/२)

भगवद्गीता में –

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथाऽपरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ।।
(४/२१)

पातञ्जल योगसूत्र में –

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ।।
(२/४१)

इस प्रकार वेद एवं स्मृत्यादि सकल शास्त्रों में प्राणायाम का वर्णन है।

हमारे शरीर में सात ऐसे केन्द्र हैं जिनसे शरीर के विभिन्न अंगों में प्राणशक्ति का संचार होता है। इन केन्द्रों को 'चक्र' कहते हैं। इनमें से एक चक्र भी यदि असंतुलित हो तो शरीर में रोग होने लगते हैं, अतः इनका कार्य संतुलित हो इसके लिए प्राणायाम आवश्यक है। आध्यात्मिक दृष्टि से मुक्ति के मार्ग का अंग है।

यद्यपि शरीर एवं बाहर व्याप्त प्राणशक्ति एक है तथापि क्रिया अथवा स्थान रूपी उपाधि को लेकर इसको पांच भागों में विभाजित किया है, जिन्हें 'पञ्चप्राण' कहते हैं। प्रत्येक के विशिष्ट कार्य को लेकर 'पञ्च उपप्राण' भी माने हैं। वे इस प्रकार हैं – पञ्चप्राण – प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान तथा पञ्च उपप्राण – नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय।

मानवीय जीवन की अवधि (आयु) श्वसन प्रणाली द्वारा प्राप्त प्राणशक्ति पर निर्भर है। इसलिए अल्प एवं जल्दी श्वास लेने वाले की अपेक्षा दीर्घ एवं धीरे श्वास लेने वाले अधिक काल तक जीवित रहते हैं। इस बात को ऋषियों ने पशु-पक्षियों के अध्ययन से जाना। सर्प, हाथी, कछुआ आदि जानवर लम्बी एवं धीरे श्वास लेने से ज्यादा जीते हैं जबकि अल्प एवं जल्दी श्वास लेने वाले कुत्ता, खरगोश, पक्षी आदि अल्पायु होते हैं। अतः प्राणायाम से केवल पुष्ट शरीर एवं अध्यात्म लाभ ही नहीं बल्कि आयु को भी बढ़ा सकते हैं।

१.	कछुआ	४-५ बार	१ मिनट में	—	आयु २०० वर्ष
२.	सर्प	७-८ बार	१ मिनट में	—	आयु १५० वर्ष
३.	मनुष्य	१५-१६ बार	१ मिनट में	—	आयु १०० वर्ष
४.	घोड़ा	२०-२२ बार	१ मिनट में	—	आयु ४० वर्ष
५.	कुत्ता	२८-३० बार	१ मिनट में	—	आयु १४ वर्ष

स्वर योग के ग्रन्थ में वर्णन किया है कि रेचक के समय नासिका से श्वास की कितनी दूरी होगी तो क्या फल मिलेगा इसका ज्ञान हो जाता है। जैसे — सामान्य रेचक — १२ अंगुल होता है और सामान्य पूरक १० अंगुल होता है। यदि रेचक ११ अंगुल हो तो — प्राणशक्ति स्थिर होती है। १० अंगुल — सुख–शान्ति। ६ अंगुल — कवित्त्व शक्ति। ८ अंगुल — वाक्–सिद्धि। ७ अंगुल — दूरदृष्टि। ६ अंगुल — आकाश गमन। ५ अंगुल — मन के समान वेग से चलने की क्षमता। ४ अंगुल — अष्ट सिद्धि। ३ अंगुल — नवनिधि। २ अंगुल — अनेक रूप धारण। १ अंगुल — अदृश्य होने की शक्ति। १ अंगुल का दशांश — मृत्युजय।

विभिन्न कार्यों एवं मानसिक अवस्थाओं में रेचक की गति ऐसी होती है — सामान्य अवस्था — ६ अंगुल, भावनापूर्ण स्थिति — १२ अंगुल, गायनकाल — १६ अंगुल, भोजन काल — २० अंगुल, चलते समय — २४ अंगुल, सोते समय — ३० अंगुल, कामक्रिया (संभोग) एवं व्यायाम में — ३६ अंगुल।

इसका वर्णन हमने प्राणायाम की आवश्यकता समझाने के लिए किया है। प्राणायाम से श्वास की गति, मात्रा आदि पर नियन्त्रण प्राप्त कर भौतिक एवं आध्यात्मिक सुख प्राप्त कर सकते हैं।

प्राण के माध्यम से ही शरीर एवं आत्मा के मध्य संबंध स्थापित होता है। अतः 'प्राण' जड़–चेतन को जोड़ने वाली शक्ति है। इसके अभाव में जड़ शरीर को मृत घोषित किया जाता है एवं "जीव स्वर्ग चला गया" ऐसा कहा जाता है।

साधकों के लिए प्राणायाम सर्वप्रथम शरीर को स्वस्थ रखता है। दूसरे मन को स्थिर करता है। सुषुम्ना नाड़ी में प्राण प्रवाह का नैरन्तर्यता रहने से आध्यात्मिक मार्ग खुलता है। वीर्य शक्ति का विकास होता है। ब्रह्मचर्य, आहार शुद्धि एवं शरीर शुद्धिपूर्वक प्राणायाम के अभ्यास से मानसिक शक्तियों का विकास होता है। इस छोटे से शरीर में रहकर सृष्टि की समस्त शक्तियों को प्राप्त कर समस्त ब्रह्माण्ड का अनुभव हो सकता है।

निष्कर्ष यह है कि प्राणायाम शरीर के समस्त अंगों पर प्रभाव डालते हुए रक्त

प्रणाली, ग्रन्थि संस्थान, स्नायुमण्डल, प्राणिक नाड़ी मण्डल, प्राणमय कोश एवं सूक्ष्म शरीर को स्वस्थ रखकर सुख-शान्ति देता है।

प्राणायाम सम्बन्धी आवश्यक निर्देश

१. प्राणायाम का अभ्यास शुद्ध एवं खुले हवादार स्थान में करना चाहिए। धूल, धुंआं, सीलन, दुर्गन्ध, गंदे कमरे में नहीं करना चाहिए। बहुत तेज हवा में भी अभ्यास नहीं करना चाहिए।

२. खाली पेट ही अभ्यास करना चाहिए अथवा भोजन करने के चार घण्टे पश्चात् या आधा घंटा पूर्व करना चाहिए।

३. शरीर पर मौसम के अनुकूल वस्त्र हों किन्तु अधिक कसे हुए न हों।

४. प्रातःकालीन अभ्यास अत्युत्तम है। सर्दियों के दिनों में दोपहर या सायंकाल में भी अभ्यास कर सकते हैं।

५. आसन के उपरान्त एवं ध्यानाभ्यास के पूर्व अभ्यास करें।

६. प्राणायाम के समय शरीर को पूरा शिथिल कीजिए।

७. कम्बल पर सूती कपड़े बिछाकर प्राणायाम के लिए ध्यान के किसी आसन में बैठना उचित होगा।

८. गर्मियों की अपेक्षा सर्दियों में अभ्यास अधिक कर सकते हैं।

९. गर्मियों में भस्त्रिका तथा सूर्यभेदी और सर्दियों में शीतली, शीतकारी तथा चन्द्रभेदी का अभ्यास न करें।

१०. दमा, उच्च रक्तचाप, हाइपरटेंशन, हृदयरोग आदि विशेष रोगों से पीड़ित लोगों को विना प्रशिक्षक की देख-रेख के कुम्भक का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

११. प्राणायाम के समय शरीर पर किसी प्रकार का तनाव न पड़े इसलिए सुखदायक स्थिति तक ही कुम्भक लगाएं अन्यथा फेफड़ों पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

१२. अभ्यासी धूम्रपान, तम्बाकू, मांसादि उत्तेजक पदार्थों को त्याग दें।

१३. साधारणतः वातप्रधान प्रकृति वालों को शीतली व शीतकारी, पित्त प्रधान प्रकृति वालों को सूर्यभेदी और कफ प्रधान प्रकृति वालों को चन्द्रभेदी प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

१४. सूर्यभेदी से वायु प्रकोप, उज्जयी से कफ प्रकोप, शीतली व शीतकारी से पित्त तथा भस्त्रिका से त्रिदोष दूर होता है।

१५. स्नान के पश्चात् आसन एवं प्राणायाम करना उचित है नहीं तो अभ्यास के आधा घंटे के बाद स्नान करें।

१६. पसीना आए तो तौलिए से न पोंछकर, हाथों से मालिश करना अच्छा है।

१७. जुकामादि के कारण उखड़े व बन्द श्वास की स्थिति में प्राणायाम का अभ्यास न करें।

१८. बारम्बार अभ्यास को न तोड़ें अन्यथा पूर्ण लाभ नहीं मिलेगा।

प्राणायाम के अभ्यास के लिए श्वसन प्रकिया ठीक से जानना जरूरी है। सामान्यतः दो वर्गों में विभक्त किया है श्वसन प्रक्रिया को — उदर श्वसन और उरः श्वसन।

(१) उदर श्वसन

बैठकर या चित्त लेटकर एक हाथ को नाभि प्रदेश पर रखें। दीर्घ पूरक कीजिए। गुब्बारे की तरह उदर प्रदेश फूल जाता है और ऊपर उठता है। जैसे-जैसे उदर बाहर की ओर फूलता जाता है, वैसे-वैसे ह्रदय-पटल नीचे दबता जाता है। फेफड़े और उदर का विभाजक मांसपेशी-तन्तु ह्रदय-पटल है।

अब दीर्घ रेचक कीजिए। उदर में संकुचन होगा फलतः हाथ मेरुदण्ड की ओर नीचे जाता है। जैसे-जैसे उदर में उतार आता है, वैसे-वैसे ह्रदय-पटल में चढ़ाव आता है।

इस अभ्यास के दौरान छाती व कंधे स्थिर हों।

उदर श्वसन

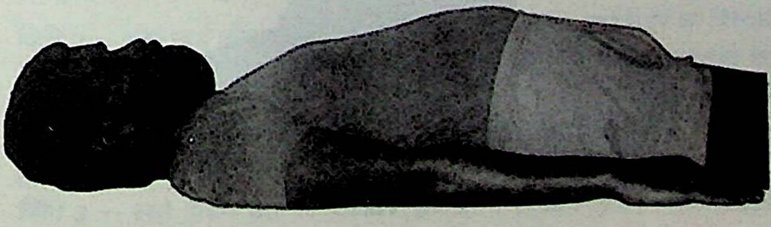

(२) उरः श्वसन

बैठिए या चित्त लेटिए। छाती की पसलियों का विस्तार करते हुए पूरक कीजिए। आवश्यकता पड़े तो हाथ के अंगूठे को कमर के पीछे रखकर शेष अंगुलियों से पेट को दबाए रखिए अथवा हाथों को सिर के ऊपर उसके पीछे की ओर मोड़कर हथेलियों को पुट्ठों पर तानकर रख लें। इस क्रिया में पसलियां ऊपर एवं बाहर की ओर उठ जाती हैं।

रेचक करने के साथ ही पसलियों में उतार आता है। इस क्रिया के दौरान उदर प्रदेश में गति न होने दीजिए।

उपरोक्त दोनों श्वसन प्रक्रियाओं को एक साथ पूर्णरूपेण करना प्रत्येक व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त उपयोगी है। किन्तु मनुष्य का स्वाभाविक प्रत्येक श्वास ऐसा नहीं हो पाता इसलिए प्राणायाम का अभ्यास आयु आरोग्यादि के लिए अति आवश्यक है।

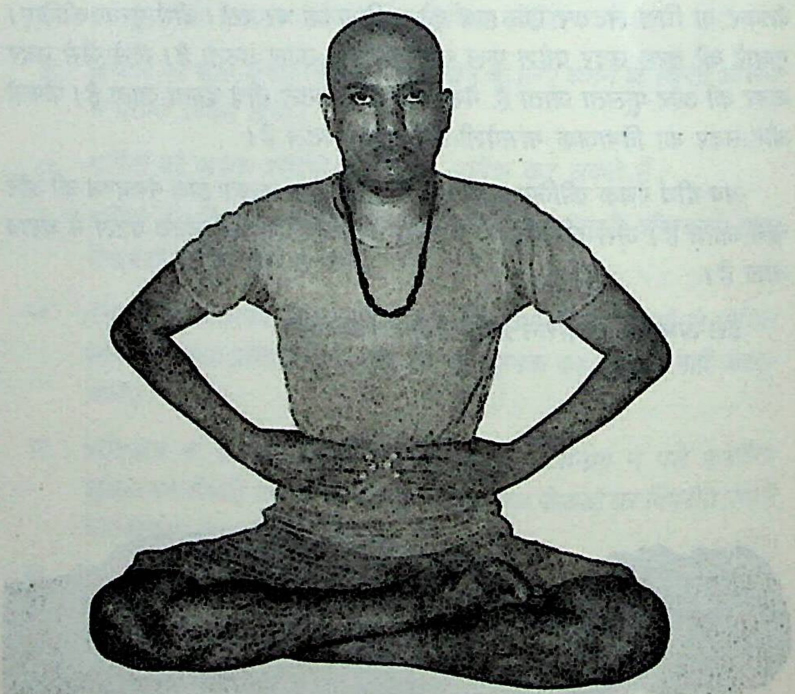

उरः श्वसन

(३) पूर्ण श्वसन या यौगिक श्वसन

क्रमशः उदर एवं छाती का विस्तार करते हुए फेफड़ों में पूर्णरूप से पूरक द्वारा वायु भर लें। इसके पश्चात् क्रमशः छाती एवं उदर को शिथिल करते हुए रेचक करें। अन्त में उदर के स्नायुओं को संकुचित कर फेफड़ों पर दबाव डालते हुए अधिक-से-अधिक वायु का निष्कासन करें। संपूर्ण क्रिया लयबद्ध हो, झटके से न हो।

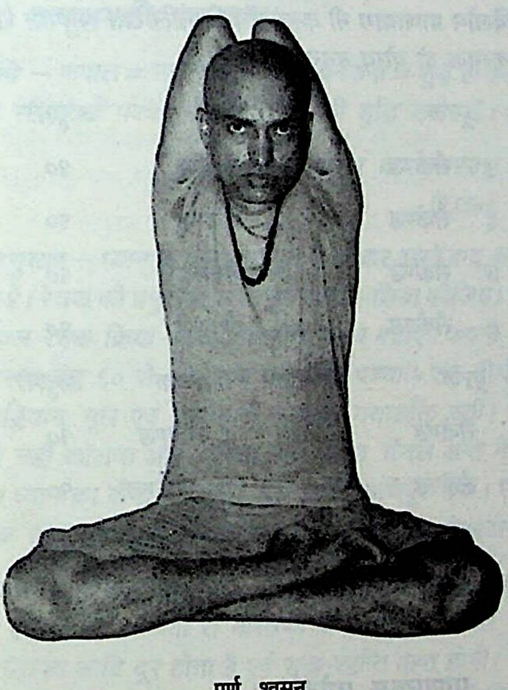

पूर्ण श्वसन

प्राणायाम का वर्णन दो खण्डों में करेंगे। (क) प्राणायाम से पूर्व के अभ्यास। (ख) प्राणायाम प्रभेद।

प्राणयाम से पूर्व के अभ्यास

फेफड़ों की सफाई किए विना प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिए। तीन सरल विधियों के अभ्यास से यह सरलतापूर्वक हो सकता है।

विधि १ — भूमि पर बैठिए या खड़े हो जाइए। पीठ सीधी रहे। बैठे हों तो हाथों को जमीन पर तथा खड़े हों तो जांघ पर रखें। दोनों हाथों को धीमी गति से उठाते हुए उदर से पूरक कीजिए। फिर उदर के स्नायुओं को सिकोड़ते हुए साथ-साथ हाथों को नीचे लाते हुए रेचक कीजिए।

विधि २ — सीधे खड़े होकर हाथों को सिर के ऊपर उठाते हुए तथा उदर का विस्तार करते हुए पूरक कीजिए। हाथों को नीचे की ओर लाते हुए उदर के स्नायुओं को सिकोड़िए तथा रेचक कीजिए। हाथों को ऊपर की तरफ कैंचीनुमा तानिए और नीचे भी अपने सामने हाथों को एक-दूसरे पर कैंचीनुमा रखें।

विधि ३ — खड़े होकर पैरों को दो-तीन फुट दूर रखें। भुजाओं को सिर के ऊपर

उठाइए, हथेलियों को नीचे की ओर मोड़े हुए रखें और दीर्घ पूरक कीजिए। तत्पश्चात् रेचक करते हुए, कमर से धड़ को मोड़ते हुए धीरे या एकदम सामने झुकिए और दस बार 'हा-हा.....' शब्द उच्चारण-पूर्वक श्वास फेंककर फेफड़े से पूर्णतः वायु को बाहर करें। ऐसे दस-पन्द्रह बार दुहराइए जब तक कि फेफड़ों के पूर्ण शोधन का अनुभव न हो।

विधि ४ — *यह चौथी विधि नए साधकों को प्राणायाम के लिए सक्षम व योग्य बनाने के लिए है। इसे* **अनुलोम-विलोम प्राणायाम** *भी कहते हैं। निम्नलिखित अनुपात से पूरक-रेचक अभ्यास द्वारा कुम्भक के योग्य बनना है।*

	पूरक	रेचक	आवृत्ति
प्रथम सप्ताह —	५ सैकेण्ड	५ सैकेण्ड	१०
द्वितीय सप्ताह —	६ सैकेण्ड	६ सैकेण्ड	१०
तृतीय सप्ताह —	७ सैकेण्ड	७ सैकेण्ड	१०
चतुर्थ सप्ताह —	८ सैकेण्ड	८ सैकेण्ड	१०

	पूरक	कुम्भक	रेचक	आवृत्ति
पञ्चम सप्ताह —	६ सैकेण्ड		६ सैकेण्ड	१०
षष्ठ सप्ताह —	१० सैकेण्ड		१० सैकेण्ड	१०
सप्तम सप्ताह —	५ सैकेण्ड	१० सैकेण्ड	१० सैकेण्ड	५
अष्टम सप्ताह —	५ सैकेण्ड	१० सैकेण्ड	१० सैकेण्ड	१०

प्राणायाम प्रभेद

(१) प्लाविनी प्राणायाम

विधि — पद्मासन में बैठकर हाथों को दोनों घुटनों पर रखें। रीढ़ एवं गर्दन सीधी रहे। मुख को गोलाकार में खोलकर श्वास घूंट-घूंटकर अन्दर भरें जिससे पेट गुब्बारे के समान फूल जाए। जब और वायु पीना संभव न हो तो मुँह बंद करके कुछ क्षणों तक वायु को यथाशक्ति रोकें। तत्पश्चात् उड्डियान-बन्ध लगाते हुए अथवा जिह्वा को बाहर निकालकर सामने की ओर झुकाते हुए पूरी तरह वायु को निकाल दें। धीरे-धीरे आवृत्तियां और रोकने के समय को बढ़ाइए। प्रत्येक आवृत्ति के पश्चात् कुछ क्षण सामान्य श्वास के साथ विश्राम करें। ध्यान का केन्द्र — स्वाधिष्ठान-चक्र।

लाभ — यह कुञ्जल का विकल्प है। मौसम परिवर्तन के समय (चैत्र एवं कार्तिक अर्थात् मार्च-अप्रैल, सितम्बर-अक्टूबर) जब शरीर में पित्त बढ़ता है और जठराग्नि मन्द हो जाती है तब यह अति लाभकारी है। पित्त रोग भी दूर हो जाते हैं।

निरन्तर अभ्यास करने से जलस्तम्भन करना, जल पर तैरना एवं विना भोजन के कई दिन तक रहने की क्षमता प्राप्त होती है।

(२) कपालभाति प्राणायाम

विधि — कपाल = मस्तिष्क, भाति = चमकना = शुद्ध होना। पेट की शुद्धि एवं फेफड़ों की सफाई के पश्चात् अब मस्तिष्क की शुद्धि करना है। पतञ्जलि कहते हैं —

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य।
(१।३४)

तदनुसार — ध्यान के किसी आसन में बैठकर आंखें बन्द करके पूरे शरीर को शिथिल छोड़ें। रेचक की प्रमुखता रखते हुए श्वसन-क्रिया कीजिए। पूरक सहज होना चाहिए। केवल रेचक क्रिया में बल लगाकर समय बढ़ाएं। अपनी क्षमता के अनुसार १० से आरम्भ कर ६० से १०० तक रेचक के पश्चात् एक दीर्घ रेचक करके तीनों बन्ध (उड्डियान, मूल एवं जालन्धर) लगाकर यथाशक्ति रुकें। पूरी क्रिया के दौरान नेत्र को नहीं खोलना और कुम्भक नहीं करना, केवल अन्त में बहिःकुम्भक किया जाता है। ध्यान का केन्द्र — आज्ञा-चक्र अथवा मणिपूर-चक्र। एक आवृत्ति से १० आवृत्ति तक बढ़ा सकते हैं और कुम्भक की अवधि को भी बढाएं।

लाभ — भस्त्रिका प्राणायाम के लिए तैयार करता है। यह हठयोग के षट्कर्मों में से एक है। इस क्रिया से मस्तिष्क के सामने का प्रदेश शुद्ध होता है; अतः स्वप्न, मनोराज्य आदि दूर होता है एवं सुख-शान्ति प्राप्त होगी। मस्तिष्क में रक्तजमाव को दूर करने की अत्युत्तम प्रक्रिया है। इसकी विलक्षणता है कि पञ्चमहाभूतों को भी शुद्ध करता है। इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है —

शोधित दोष	प्रभावित अंग	शोधित तत्त्व
१. मस्तिष्क में ट्यूमर, फोड़ा, रक्तजमाव, मस्तिष्क की निष्क्रियता, मस्तिष्क की कोशिकाओं का तनाव आदि।	स्थूल मस्तिष्क	पृथ्वी तत्त्व
२. रीढ़ एवं श्वेत द्रव्यों के रक्त कणों पर प्रभाव पड़ता है।	रीढ़ में संचारित अनु-मस्तिष्कीय द्रव्य	जल तत्त्व

३. संदेशवाहिनी नाड़ियों में रुकावट अथवा मन्द गति व निष्क्रियता।	नाड़ी, ऊतक एवं कोशिकाएं	अग्नि तत्त्व
४. खोपड़ी गुहा के सकल प्रकार के अवरोध।	खोपड़ी गुहा	वायु तत्त्व
५. असंतुलित व असंगत मस्तिष्क को दूर करता है।	मस्तिष्क गुहा की सूक्ष्म ऊर्जा	आकाश तत्त्व

इस प्राणायाम में बन्ध-त्रय के प्रभाव के कारण मूलाधार, स्वाधिष्ठान एवं मणिपूर-चक्र सक्रिय होते हैं। दमा आदि श्वास सम्बन्धी एवं टी॰बी॰ आदि रोग दूर हो जाते हैं क्योंकि इससे श्वसन प्रणाली का भी पेट के साथ-साथ शोधन होता है फलतः अनाहत-चक्र भी सक्रिय होता है। विचार-शक्ति, स्मृति-शक्ति एवं मेधा-शक्ति बढ़ती है। उद्विग्न मन शान्त होता है।

हृदय रोगी, उच्च रक्तचाप, पेट के ट्यूमर, मिर्गी, घबराहट एवं मूर्च्छित होने की बीमारी वाले लोग इसका अभ्यास न करें।

यह ध्यान एवं कुण्डलिनी योग के लिए अच्छी प्रस्तावना है। साधकों को इसका नित्य अभ्यास करना चाहिए।

(३) सूर्यभेदी प्राणायाम

विधि — किसी ध्यान के आसन में बैठिए। कमर, पीठ व गर्दन सीधी रहे। दाएं हाथ की पहली दोनों अंगुलियों को अंगूठे के मूल में लगाकर अथवा ऊपर की ओर फैलाकर अनामिका से बाईं नासिका छिद्र को बन्द करें। आँखों को कोमलता से बन्द करके प्रसन्न मुद्रा में रहें। बायां हाथ बाएं घुटने पर ज्ञानमुद्रा में रखें। अब दाईं नासिका से श्वास को धीरे-धीरे गहरा भरें ताकि पैर के नाखून से चोटी तक भरने का अनुभव हो। दाएं अंगूठे से दाहिने नासिका छिद्र को बन्द कर लें। श्वास रोके रखें। जालंधर एवं मूलबन्ध लगाएं और अन्तःकुम्भक करें। यथाशक्ति कुम्भक के पश्चात् धीरे-धीरे दाहिनी नासिका से ही रेचक करें। १ आवृति से आरम्भ कर १० आवृत्ति तक करें और कुम्भक की अवधि को बढ़ाएं। ध्यान का केन्द्र — आज्ञा-चक्र अथवा विशुद्धि-चक्र पर।

लाभ — इस प्राणायाम से पिंगला नाड़ी क्रियाशील होती है। कंठ, जिह्वा, स्वर के दोष दूर होते हैं। पौरुष शक्ति बढ़ती है। कफ सम्बन्धी रोग समाप्त हो जाते हैं। रक्तदोष, चर्मरोग, पेट के कीड़े, मन्दाग्नि, निम्न रक्तचाप एवं मस्तिष्क के कुछ दोष मिट जाते हैं। आज्ञाचक्र, विशुद्धि-चक्र एवं कुण्डलिनी जागरण में अत्यन्त उपयोगी है। इससे

शरीर की दुर्बलता, क्षीण होना एवं मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। इसे सर्दी के मौसम में करना अच्छा है।

(४) चन्द्रभेदी-प्राणायाम

विधि — उक्त प्राणायाम के ठीक विपरीत है। पद्मासन में बैठें। पीठ, कमर व गर्दन सीधी रहे। आँखों को बन्द करके प्रसन्न मुद्रा में बैठें। बाएं हाथ को बाएं घुटने पर ज्ञानमुद्रा में रखें। पूर्ववत् दाहिने हाथ की पहली दो अंगुलियों को अंगूठे के मूल में लगाकर अथवा ऊपर की ओर फैलाकर दाहिने अंगूठे से दाएं नासिका छिद्र को बन्द करें। धीरे-धीरे बाईं नासिका से गहरा श्वास लें और दाहिनी अनामिका अंगुली से बाएं नासिका छिद्र को बन्द करें। अन्तःकुम्भक लगाकर मूलबन्ध और जालन्धर-बन्ध का अभ्यास करें। यथाशक्ति रुकें। इसके पश्चात् बाईं नासिका से ही धीरे-धीरे रेचक करें। एक आवृत्ति से आरम्भ कर २० आवृत्ति तक करें। कुम्भक की अवधि को भी बढ़ाएं। प्रत्येक आवृत्ति के बाद सामान्य श्वास के साथ कुछ क्षण विश्राम कर सकते हैं। इसे गर्मी के मौसम में करना अच्छा है। कपालभाति के समान सूर्यभेदी उच्च रक्तचाप आदि रोगी के लिए वर्जित है। चन्द्रभेदी ठीक उसके विपरीत दमा, निम्न रक्तचाप आदि रोगियों के लिए वर्जित है। ध्यान का केन्द्र बिन्दु विसर्ग पर।

लाभ — शरीर की थकावट व अधिक उष्णता दूर होती है। पित्ताधिक्य एवं उच्च रक्तचाप और हरपीज जैसे रोग ठीक होते हैं। मन को शान्ति मिलती है और शरीर में अमृत का संचार होता है। यह ललना–चक्र एवं बिन्दुविसर्ग चक्र को विशेषतः सक्रिय करता है। अधिक गर्मी के कारण जिनका ब्रह्मचर्य नष्ट होता है, उनके लिए यह अत्यन्त लाभदायक है।

लेकिन इसका अधिक अभ्यास करना वर्जित है अन्यथा हानि होगी।

(५) उज्जयी प्राणायाम

विधि — खड़े होकर, लेटकर, चलते-चलते अथवा पद्मासनादि ध्यान के आसन में बैठकर आँखें हल्का बन्द कर लें और हाथों को घुटनों पर ज्ञानमुद्रा में रखें। खेचरी मुद्रा लगाएं अर्थात् मुँह में ही जिह्वा को पीछे की ओर मोड़कर ऊपरी तालू को स्पर्श करके रखें। गले में स्थित स्वर-यन्त्र को संकुचित करते हुए श्वास भरें। श्वसन क्रिया गहरी, धीमी तथा छोटे बच्चे के कोमल खर्राटे की भाँति हो। पेडू थोड़ा पिचकाएं रखें ताकि श्वास कण्ठ से हृदय और हृदय से कण्ठ तक हो। इस क्रिया में पसलियों और पेडू पर विशेष प्रभाव न पड़े ऐसी श्वसन-क्रिया करें। पूरे अभ्यास में मूलबन्ध पूर्णरूपेण लगा रहेगा और हल्का सा उड्डियान-बन्ध एवं जालन्धर-बन्ध भी। इसका

अभ्यास यथाशक्ति पन्द्रह मिनट से कई घंटों तक कर सकते हैं। ध्यान का केन्द्र विशुद्धि-चक्र पर।

लाभ — सरल होते हुए भी संपूर्ण शरीर पर सूक्ष्म प्रभाव डालता है। मन चिन्तामुक्त होकर शान्त होता है। अनिद्रा के रोगी बिना खेचरी मुद्रा लगाए शवासन में अभ्यास करें। उच्च रक्तचाप, हृदय रोगी, टाँसिल, खाँसी, धातु-दोष, नाड़ी दोष, जलोदर, कफ, दमा, टी॰बी॰, फुफ्फुस, जुकाम, गला-नाक-कान के रोग, उदर रोग, मिर्गी, आमवात, मन्दाग्नि आदि अनेकों रोगों को ठीक करता है। मस्तिष्क की गर्मी मिटती है। शरीर एवं मुख-कान्ति बढ़ती है। स्वर सुरीला होता है। भावनात्मक शक्ति का मानसिक व शरीरिक शक्ति के साथ संतुलन होने से ध्यान की अवस्था प्रगाढ़ होती है। इससे बुढ़ापा एवं मृत्यु तक पर विजय प्राप्त कर सकते हैं इसीलिए इसका नाम उज्जयी है।

(६) भ्रामरी प्राणायाम

विधि — किसी आरामदायक आसन में बैठें। मेरुदण्ड, सिर, कमर व गर्दन सीधी रहे। नेत्र बन्द करें और शरीर को शिथिल छोड़ें। संपूर्ण अभ्यास के दौरान मुँह बन्द रखें। दोनों नासिका छिद्र से पूरक करें और मूलबन्ध का अभ्यास पांच क्षण के लिए करें। बन्ध को मुक्त कर कान के दोनों छिद्रों को अंगूठों से बन्द कर लें। मुँह बन्द रखते हुए दांतों को थोड़ा अलग रखें। अब भ्रमर या मधुमक्खी के समान गुंजन करते हुए धीरे-धीरे रेचक करें। ध्वनि अखण्ड हो। मस्तिष्क में ध्वनि की तरंगों के प्रभाव पर ध्यान दें। ध्यान का केन्द्र सहस्रार-चक्र हो। पांच से आरम्भ कर अधिक से अधिक आवृत्ति कर सकते हैं।

लाभ — मानसिक तनाव, चिन्ता, क्रोध, विक्षेप, अनिद्रा, मिर्गी आदि को दूर करता है। रक्तचाप व गले के रोगों को नियन्त्रित करता है। स्वर में मधुरता लाता है। आध्यात्मिक ध्वनि (नाद) के प्रति जागरूकता लाता है। रक्त एवं मज्जा तन्तु शुद्ध होते हैं। वीर्य शुद्ध होकर ऊर्ध्वगामी होता है। प्राण दीर्घ एवं सूक्ष्म होता है। फलतः समाधि लगने में अत्यन्त उपयोगी है।

भ्रामरी प्राणायाम

(७) भस्त्रिका प्राणायाम

विधि — स्वर्ण की मल-शुद्धि सोनार धौंकनी से जैसे करता है उसी प्रकार शरीर की मलशुद्धि करने के लिए धौंकनी के समान श्वास-प्रश्वास की गति को वेगपूर्वक लेना और छोड़ने की क्रिया को भस्त्रिका कहते हैं।

प्रथम अवस्था — ध्यान के किसी सुखप्रद आसन में बैठिए। सिर, मेरुदण्ड, गर्दन व कमर तक पूरा सीधा रहें। नेत्र बंद हों। बाएं हाथ को बाएं घुटने पर रखिए। दाहिने हाथ के अंगूठे को दाहिने नथुने के पास व अनामिका को बाएं नथुने के पास रखें, तर्जनी एवं मध्यमा को भ्रूमध्य पर और कनिष्ठिका को खुला रख लें। अब अंगूठे से दाहिने नथुने को बन्द कीजिए और बाएं नथुने से शीघ्रतापूर्वक २० बार श्वास लीजिए। उदर का आकुंचन व प्रसार के साथ लययुक्त हो। तत्पश्चात् एक लम्बा पूरक कीजिए, मूल एवं जालन्धर बन्धों का यथाशक्ति अन्तःकुम्भक के साथ अभ्यास करें। क्षमतानुसार रुककर बन्धों को खोलकर रेचक करें। इसी प्रकार दाहिने नथुने से भी करें। तीन आवृत्ति दुहराइए।

भस्त्राका प्राणायाम

द्वितीय अवस्था — ध्यान के किसी सुखप्रद आसन में बैठकर दोनों हाथों को घुटनों पर ढीला रखें। दोनों नासिका छिद्रों से एक साथ बीस बार पूर्ववत् लययुक्त गति से उदर का आकुंचन व प्रंसारण के साथ करें। दीर्घ पूरक कर अन्तःकुम्भक लगाएं। जालन्धर एवं मूलबन्धों का अभ्यास करें। यथासम्भव रुकने में मदद के लिए हाथों को कड़क सीधा करके स्थिर रखें। तत्पश्चात् बन्धों को खोलिए, हाथ को ढीला छोड़कर रेचक कीजिए। ऐसी तीन आवृत्ति करें। ध्यान का केन्द्र — आज्ञाचक्र व श्वास पर।

बलपूर्वक अभ्यास न करें। बेहोशी या हांफने लगें तो समझ लें कि क्रिया ठीक से नहीं हो रही है। पूरी क्रिया में मुख विकृत न हो शरीर हिलना नहीं चाहिए। शरीर सुदृढ़ किन्तु शिथिल रहे और चेहरा स्वाभाविक या प्रसन्न मुद्रा में होना चाहिए। उच्च रक्तचाप आदि के रोगी बिना योग्य योग-शिक्षक की देख-रेख के इसे न करें।

लाभ — फेफड़ों में स्थित अनावश्यक वायु एवं जीवाणुओं को निष्कासित करने का यह सरलतम उपाय है। दमा, प्लूरसी, क्षयरोग, उदर के रोग आदि सब निवृत्त हो जाते हैं। गले की सभी प्रकार की बीमारियां, विशेषतः कफ को दूर करता है। समस्त नाड़ियों को शुद्ध करने की यह अत्युत्तम प्रक्रिया है। यह सुषुम्ना नाड़ी के द्वार पर स्थित कफादि अवरोधकों को दूर करता है। फलतः तीनों ग्रन्थियों (ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि) का भेदन कर कुण्डलिनी जागरण में अत्यन्त सहयोगी है। इसे ठण्ड के मौसम में करना लाभप्रद है।

(८) शीतली प्राणायाम

विधि — ध्यान के किसी भी आसन में बैठिए। हथेलियों को घुटनों पर रखें। रीढ़ एवं गर्दन सीधी रहे। नेत्र को हल्के से बन्द कर लें। जिह्वा को मुँह से बाहर निकालकर दोनों किनारों से इस प्रकार मोड़िए कि एक नलिका के समान हो जाए। इस नलिका जैसी जिह्वा से धीरे-धीरे गहरी-लम्बी श्वास लें। अन्तःकुम्भक का अभ्यास करते हुए जालन्धर-बन्ध लगाइए। यथाशक्ति रुकने के बाद नाक से धीरे-धीरे रेचक करें। तीन आवृत्ति से आरम्भ कर आवश्यकता के अनुसार बढ़ा सकते हैं। लेकिन उच्च रक्तचाप वाले रोगी को कम-से-कम ६ और अधिक-से-अधिक ६० आवृत्तियां करनी चाहिए। ध्यान का केन्द्र अनाहत-चक्र अथवा विशुद्धि-चक्र पर हो।

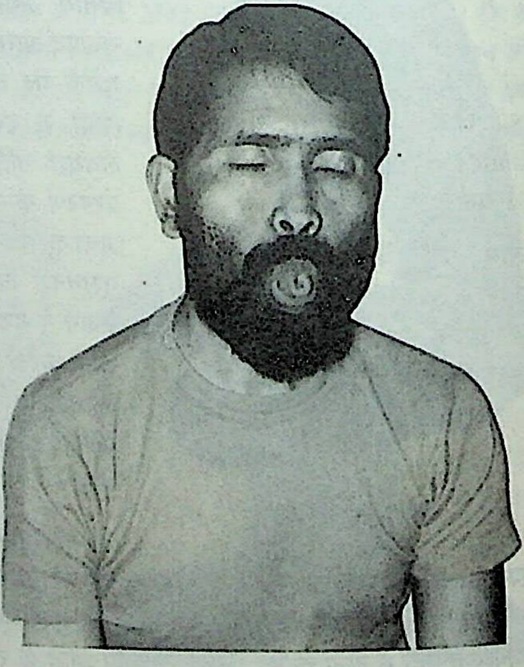

शीतली प्राणायाम

लाभ — स्नायुओं को शीतलता एवं मन को स्थिरता और शान्ति प्रदान करता है। प्यास को कम करता है और रक्त को शुद्ध करता है। शरीर की अतिरिक्त गर्मी दूर होती है। हरपीज, प्लीहा, वात (गुल्म), अपच, पित्तदोष, पुराने रोगों की जलन, टी.बी., ज्वर, रक्तपित्त,

पेचिश, अम्लपित्त, मुँह के छाले, नेत्र व त्वचा के रोग, गले के रोग, उच्च रक्तचाप आदि दूर होते हैं। कफ प्रधान रोगी को बिना कुंभक किए इस क्रिया को करना चाहिए। शरीर में स्थित विषाक्त पदार्थ घटता है। निद्रा और आलस्य पर नियन्त्रण होता है। बल एवं सौन्दर्य बढ़ता है।

निम्न रक्तचाप के रोगी के लिए वर्जित है। इसे गरमी के मौसम में करना अधिक लाभप्रद है।

(९) शीतकारी प्राणायाम

विधि — शीतली प्राणायाम के समान प्रक्रिया है। फर्क केवल मुँह की स्थिति में है। जिह्वा को मोड़कर उसके अग्र भाग से ऊपरी तालु को स्पर्श करें। दांतों की पंक्ति को एक-दूसरे पर रखिए होठों को पूर्णरूपेण फैलाइए। धीरे-धीरे दांतों के बीच में से पूरक कीजिए। मधुर लयबद्ध 'सी' जैसी ध्वनि निकालनी चाहिए। शेष क्रिया शीतली के समान करें।

लाभ —शीतली में कहे सब लाभों के अतिरिक्त इससे मुँह की दुर्गन्ध एवं पायरिया दूर होता है।

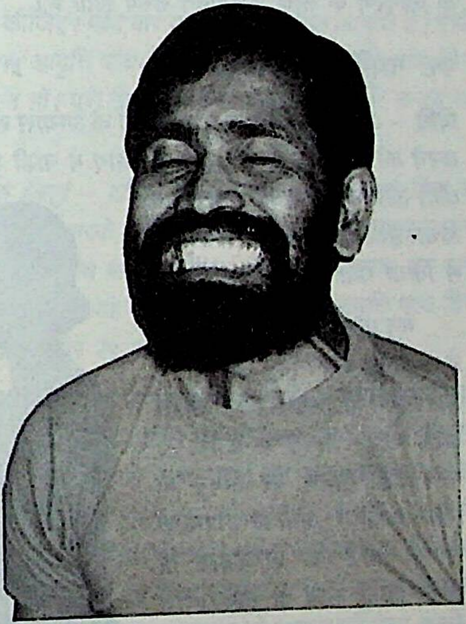

शीतकारी प्राणायाम

(१०) मूर्छा प्राणायाम

विधि — इसका अभ्यास करने के लिए स्थिर आसन में बैठें जैसे — पद्मासन या सिद्धासन। सिर को पीछे मोड़कर आकाशी मुद्रा में बैठें। धीरे-धीरे एवं लम्बा गहरा श्वास लेते हुए पूरक कीजिए। अन्तःकुम्भक लगाकर शाम्भवी मुद्रा करते हुए स्थिर रहें। यदि आवश्यकता पड़े तो हाथों से घुटनों को दबाते हुए भुजाओं को एकदम सीधा कीजिए। पूरे शरीर को शिथिल कर, मुद्रा को हटाकर रेचक कीजिए। मानसिक

रूप से शान्ति एवं हल्केपन का अनुभव करें। कुछ क्षण विश्राम कर दुहराइए। तीन से पांच आवृत्ति कर सकते हैं। तीनों बन्धों के साथ धीरे-धीरे कुम्भक की अवधि बढ़ाने से अधिक लाभ होगा।

इसे ध्यान के पूर्व, आसनों के उपरान्त व निद्रा के पूर्व कर सकते हैं। ध्यान का केन्द्र– सहस्रार-चक्र पर।

लाभ – मन को शान्त एव अन्तर्मुखी बनाने में अत्यन्त उपयोगी। नेत्र-ज्योति एवं स्मृति-शक्ति बढ़ती है। सिर दर्द, अनिद्रा और स्नायु की दुर्बलता दूर होती है। शक्ति के जागरण के साथ ऊर्ध्वगमन संभव होता है।

११. नाड़ी शोधन प्राणायाम

विधि – अभी तक बताए गए प्राणायामों के अभ्यास से साधक नाड़ी-शोधन प्राणायाम करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। योग में नाड़ी शुद्धि के दो प्रकार बताए हैं – धौति और मनु प्राणायाम। धौति पर विचार इसी प्रकरण के द्वितीय अध्याय में किया गया है (पृष्ठ ३७ देखें)।

मनु प्राणायाम भी दो प्रकार का है – समनु और निर्मनु जिसे सगर्भ और निगर्भ भी कहते हैं। मन्त्र सहित करने पर – समनु या सगर्भ एवं मन्त्र रहित करने पर निर्मनु या निगर्भ कहते हैं। अन्य प्राणायामों के समान श्वास की लयबद्धता तो रहेगी किन्तु साथ ही साथ इससे श्वास सूक्ष्म होता जाता है जो कि आध्यात्मिक लाभ के लिए अति आवश्यक है।

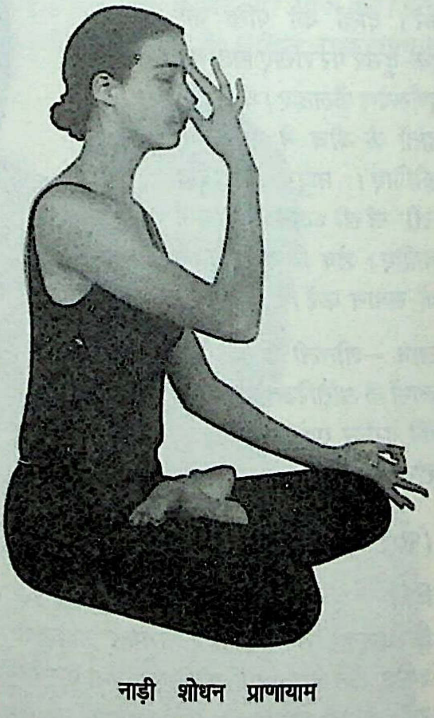
नाड़ी शोधन प्राणायाम

विधि – वज्रासन को छोड़कर ध्यान के किसी भी आसन में बैठें। गर्दन व रीढ़ सीधी रहे। नेत्र बन्द रखें। बाएं हाथ को बाएं घुटने पर ज्ञानमुद्रा में रखें। संपूर्ण शरीर को शिथिल छोड़कर शारीरिक एवं मानसिक रूप से प्राणायाम के लिए तैयार हो जाइए।

प्रथम अवस्था — (१५ दिन के लिए) — दाहिने हाथ को मुख के सामने ले जाएं। तर्जनी एवं मध्यमा को भ्रूमध्य पर रखें। पूरे अभ्यास के दौरान वे स्थिर हों ऐसा रख लें। अंगूठे को दाहिनी नासिका छिद्र के बगल में और अनामिका को बाएं नथुने के पास रख लें ताकि आवश्यकता के अनुसार उन छिद्रों को बन्द कर सकें व खोल सकें। छोटी अंगुली को बाहर की ओर फैला दें।

अंगूठे से दाहिने नथुने को बन्द करें। बाएं नथुने से पूरक कीजिए। उसी से रेचक कीजिए। पूरक एवं रेचक की गति सामान्य व बराबर हो। पांच बार दुहराइए। अब बाएं नासिका छिद्र को बन्द करें। दाहिने नासिक छिद्र को खोलकर उससे सामान्य गतियुक्त पूरक—रेचक बराबर कीजिए। पांच बार दुहराइए। यह एक आवृत्ति है। ऐसी पांच आवृत्ति पांच दिन, फिर १५ आवृत्ति पांच दिन, तत्पश्चात् २५ आवृत्ति पांच दिन करें। बलपूर्वक श्वसन-क्रिया न हो। पूरी क्रिया में किसी प्रकार की ध्वनि, तनाव या कष्ट नहीं होना चाहिए।

द्वितीय अवस्था (१५ दिन के लिए) — दाहिने छिद्र को बन्द करके बाएं छिद्र से पूरक करें। अब बाएं छिद्र को बन्द करके दाहिने छिद्र से रेचक करें। पश्चात् पुनः बाएं से पूरक, दाएं से रेचक करें। पांच बार दुहराइए। अब दाएं से पूरक एवं बाएं से रेचक करें। ऐसे पांच बार दुहराइए। यह एक आवृत्ति हुई। पांच आवृत्ति पांच दिन तक करें। १५ आवृत्ति पांच दिन और २५ आवृत्ति पांच दिन करें।

तृतीय अवस्था (१५ दिन के लिए) — दाहिने नासिका छिद्र को बन्द करके बाएं नासिका छिद्र से पूरक करें। अब बाएं को बन्द कर दाहिने को खोलकर रेचक करें। पश्चात् दाहिने नासिका छिद्र से पूरक करके बाएं से रेचक करें। यह एक चक्र हुआ। फिर बाएं से पूरक करके दाएं से रेचक करें। ऐसे चक्र को चलाएं। लेकिन अब पूरक एवं रेचक की लम्बाई की ॐ अथवा अन्य किसी मन्त्र से गणना कीजिए। दोनों बराबर हों। सुखपूर्वक जितनी गिनती तक पूरक एवं रेचक किया जा सके उतना ही करें। धीरे—धीरे अवधि बढ़ाएँ किन्तु दोनों का अनुपात समान रहे। ध्यान रहे ऐसा करने में किसी प्रकार का तनाव, कष्ट, थकान आदि न हो। पूरक में धीरे से गिनकर रेचक में जल्दबाजी करना उचित नहीं है। १० चक्र से आरम्भ कर ५० चक्र तक १५ दिन में बढ़ाने की कोशिश करें।

चतुर्थ अवस्था (दक्षता प्राप्ति तक) — पूर्ववत् पूरक-रेचक का चक्र करें किन्तु अब साथ में अन्तःकुम्भक को जोड़ दें। आरम्भ में उक्त विधि से पूरक की संख्या पूर्ति के बाद दोनों नथुने बन्द करके केवल पांच की गिनती तक कुम्भक करें। फिर उक्त विधि से ही रेचक करें। यह एक चक्र हुआ। ऐसे पांच आवृत्ति से शुरू कर २५ आवृत्ति तक करें।

कुछ दिन के उपरान्त पूरक : कुम्भक : रेचक का अनुपात १ : २ : २ कीजिए अर्थात् पांच गिनती में पूरक करेंगे तो १० गिनती तक कुम्भक एवं १० गिनती में रेचक करना होगा। धीरे–धीरे अनुपात को क्रमशः बढ़ाएं १ : ४ : २, १ : ४ : ४, १ : ६ : ४, १ : ६ : ६ और अन्त में १ : ८ : ६ तक पहुंचना चाहिए। अन्तिम अनुपात की २५ आवृत्ति करने की क्षमता आने पर अग्रिम अवस्था में जाएं।

पञ्चम अवस्था (पूर्ण नाड़ी-शोधन) – अब बहिःकुम्भक को भी जोड़ना है। दाएं से पूरक, अन्तःकुम्भक, बाएं से रेचक, बहिःकुम्भक। फिर बाएं से पूरक, अन्तःकुम्भक, दाएं से रेचक, बहिःकुम्भक। यह एक आवृत्ति या चक्र हुआ। आरम्भ में इस चक्र का अनुपात १: ४ : २ : २ होना चाहिए। अनुपात को इस क्रम से बढ़ाएं २ : ८ : ४ : ४, ३ : १२ : ६ : ६, ४ : १६: ८ : ८, ५ : २० : १० : १०, ६ : २४ : १२ : १२, ७ : २८ : २४ : २४ और अन्त में ८ : ३२ : १६ : १६।

प्रत्येक अनुपात की १० आवृत्ति करने की क्षमता आए बिना अगले अनुपात की ओर न बढ़ें।

इस अन्तिम अवस्था के उच्च अभ्यास में कुम्भकों के दौरान जालन्धर–बन्ध और मूलबन्ध का अभ्यास कर सकते हैं।

	पूरक	कुम्भक	रेचक	कुम्भक	आवृत्ति
सामान्य –	८	३२	१६	१६	५
कनिष्ठ –	१२	४८	२४	२४	१०
मध्यम –	१६	६४	३२	३२	क्षमतानुसार
उत्तम –	२०	८०	४०	४०	करें

आवृत्तियां एवं अनुपात को बढ़ाने के लिए सर्दी के मौसम अर्थात् सितम्बर से मार्च अत्युत्तम है। अन्य छः मास मार्च के अन्त में जो अवस्था एवं अनुपात हो उसी अवस्था एवं अनुपात का अभ्यास बनाए रखें। गर्मियों में केवल प्रातः और सर्दियों में तीनों समय अभ्यास कर सकते हैं। ब्रह्मचर्य का पालन आध्यात्मिक जीवन के लिए अति आवश्यक है।

लाभ – प्राण के सभी मार्ग खुलते हैं, अतः ध्यान एवं कुण्डलिनी जागरण के लिए उपयोगी है। विषैले तत्त्वों को निकालकर रक्त शोधन भी करता है। मन को स्थिरता एवं शान्ति प्रदान करता है। मस्तिष्क के सभी केन्द्र विकसित होते हैं, फलतः स्मृति आदि शक्तियों में वृद्धि होती है।

अध्याय - ५

मुद्रा एवं बन्ध विज्ञान

प्रस्तावना

चित्त को प्रकट करने वाले भाव विशेष को 'मुद्रा' कहते हैं। उच्च कोटि के भारतीय नृत्य एवं पूजा में आंतरिक भावों एवं संवेदनाओं का संकेत करने के लिए जैसी मुद्राऐं होती हैं ठीक वैसे योग में आध्यात्मिक भावों एवं संवेदनाओं के संकेत के लिए मुद्राऐं होती हैं।

मुद्राओं द्वारा शरीरगत अनैच्छिक प्रतिक्रियाओं पर नियन्त्रण प्राप्त कर सूक्ष्म शरीर स्थित प्राणशक्ति को स्वेच्छापूर्वक अध्यात्म लाभ के लिए प्रवाहित कर लिया जाता है।

आसन, प्राणायाम, बन्ध — इस त्रिवेणी संगम में विशेषता लाकर एक अभ्यास के रूप में प्रयोग करना ही मुद्रा है। अतः योग के अभ्यासों में मुद्रा विज्ञान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से लेकर समाधि तक की दौड़ में आवश्यक बाह्य जगत् के साथ असम्बन्ध, इन्द्रियों की अन्तर्मुखता, धारणा एवं ध्यान की स्थिति निर्मित करने में मुद्राओं की अहम् भूमिका है। *घेरण्ड-संहिता* सबसे प्राचीन ग्रन्थ है जिसमें मुद्राओं पर विचार किया गया है।

यद्यपि मुद्राएं बहुत हैं फिर भी साधना के लिए अत्यन्त आवश्यक मुद्राओं को दो खण्डों में विचार करेंगे। (क) — साधारण मुद्राएं (ख) — यौगिक मुद्राएं। तत्पश्चात् तीसरे खण्ड में बन्धों पर विचार करेंगे। (ग) — बन्ध विज्ञान।

साधारण मुद्रा विज्ञान

हमारा शरीर पञ्च तत्त्वों से बना हुआ है। वे हैं — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। इन तत्त्वों का हाथ की अंगुलियों व अंगूठे के द्वारा तथा स्वर (श्वास का सूक्ष्म रूप)

आदि से नियन्त्रण किया जा सकता है। अतः यहां मुद्रा का प्रकरण होने से तत्त्वों का हाथ से सम्बन्ध जानना जरूरी है — अंगूठा — अग्नि तत्त्व, तर्जनी — वायु तत्त्व, मध्यमा — आकाश तत्त्व, अनामिका — जल तत्त्व और कनिष्ठिका — पृथ्वी तत्त्व।

पृथ्वी-मुद्रा

(१) पृथ्वी-मुद्रा

छोटी अंगुली मोड़कर उसके अग्रभाग को अंगूठे के अग्रभाग से गोलाकार बनाते हुए लगाने पर पृथ्वी-मुद्रा बनती है। अन्य अंगुलियां सीधी रहेंगी। दोनों हाथों से करने से ज्यादा लाभ होगा। इससे विटामिनों की कमी व पृथ्वी तत्त्व की कमी दूर होती है। फलतः दुबलापन दूर होता है।

(२) जल-मुद्रा

अनामिका अंगुली को पूर्ववत् अंगूठे से स्पर्श करने पर यह मुद्रा बनती है। इससे पेशाब सम्बन्धी बीमारी व प्यास लगने में लाभ होता है। जल तत्त्व की कमी से उत्पन्न रोग दूर होते हैं।

जल-मुद्रा

वायु-मुद्रा

(३) वायु-मुद्रा

तर्जनी अंगुली को मोड़कर अग्रभाग को अंगूठे के मूल प्रदेश पर लगाकर अंगूठे से मुड़ी हुई तर्जनी को हल्के से दबाए रखने पर यह मुद्रा बनती है। इससे सभी प्रकार के वायु विकार — गठिया, कम्पन, डकार, हिचकी, उल्टी आदि ठीक होते हैं।

(४) प्राणवायु-मुद्रा

अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को मोड़कर उनके अग्रभाग से अंगूठे का स्पर्श एक-साथ करने पर यह मुद्रा बनती है। इससे प्राण की कमी व नेत्र दोष दूर होते हैं।

प्राणवायु-मुद्रा

अपान वायु-मुद्रा

(५) अपान वायु-मुद्रा

तर्जनी को मोड़कर अंगूठे के मूल में लगाकर, अनामिका और मध्यमा को अंगूठे से स्पर्श करके कनिष्ठिका को सीधी रखने पर यह मुद्रा बनती है। अपान वायु के बिगड़ने से होने वाले रोग जैसे हृदयरोग, बवासीर आदि में अत्यन्त उपयोगी है।

(६) शून्य-मुद्रा

मध्यमा को मोड़कर उसके अग्रभाग को अंगूठे के मूल में रखकर अंगूठे से उसे हल्का दबाए रखने पर यह मुद्रा बनती है। इससे कान के दर्द, बहरेपन आदि आकाश तत्त्व सम्बन्धी रोग दूर होते हैं।

शून्य-मुद्रा

यौगिक मुद्रा विज्ञान

(१) ज्ञान-मुद्रा

यह त्रिगुणात्मक जगत् पर विजय प्राप्त कर जीव-ब्रह्म एकत्व का प्रतीक है। ध्यान के किसी आसन में बैठकर दोनों हाथों की तर्जनियों को मोड़कर अंगूठे के मूल से लगाते हुए तर्जनी का ऊपरी (प्रथम) कोष्ठ का भाग उल्टा विश्राम करें। शेष तीन अंगुलियों को एक-दूसरे से कुछ दूरी पर फैलाकर शिथिल रखें। दोनों हाथों को घुटनों पर सीधा तनाव रहित रखें। हथेलियों को जमीन की ओर करें।

ज्ञान-मुद्रा (चिन्मुद्रा)

इससे नाड़ियों के प्रवाह की दिशा बदलती है। लम्बी अवधि तक स्थिर अवस्था में रहने की क्षमता प्राप्त होगी। अतः ध्यान के लिए तथा विक्षिप्त मन को शान्त करने के लिए उपयोगी है।

प्रकारान्तर – चिन्मुद्रा – अंगुलियों को ज्ञान-मुद्रा जैसे ही रखें। फर्क इतना है कि हथेलियों को ऊपर की ओर करें।

(२) नासिकाग्र (दृष्टि) मुद्रा

ध्यान के किसी आसन में बैठें। रीढ़, गर्दन, सिर सीधा रहे। नासिका के अंतिम सिर (अग्रभाग = कोन) पर आंखों की दृष्टि को एकाग्र करें। उतनी ही देर तक दृष्टि जमाए रखें जब तक आँखों में तनाव न हो। एक मिनट से लेकर धीरे-धीरे क्षमता के अनुसार अधिक से अधिक समय तक करें। दीर्घ अवधि करना हो तो श्वास सामान्य रहे अन्यथा कुम्भकों का प्रयोग कर सकते हैं।

नासिकाग्र (दृष्टि) मुद्रा

मूलाधार-चक्र को जाग्रत् करने में उपयोगी है। साधक को अन्तर्मुखी होने,

आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करने तथा एकाग्रता को बढ़ाने में यह सर्वोत्तम साधन है। इसके *प्रकारान्तर* हैं काकी मुद्रा, मांडूकी मुद्रा और भूचरी मुद्रा।

(३) शाम्भवी-मुद्रा

ध्यान के किसी आसन में बैठें। पीठ सीधी रहे। हाथों को घुटनों पर ज्ञान व चिन्मुद्रा में रखें। सामने किसी बिन्दु पर दृष्टि को एकाग्र कीजिए। धीरे-धीरे अधिक से अधिक ऊपर देखने की कोशिश करें। सिर स्थिर रहेगा केवल दृष्टि ऊपर की ओर जाएगी। अन्त में दृष्टि को भ्रूमध्य पर स्थापित करें। विचारों को रोककर ध्यान करें। अधिक समय तक अन्तिमावस्था में रहें। इससे आज्ञा-चक्र जाग्रत् होता है। इससे निम्न एवं उच्च चेतना परस्पर सम्बन्धित होते हैं। आँखों को स्वस्थ रखता है। तनाव व चिन्ता से मुक्त होकर मन शान्त होता है। इसका *प्रकारान्तर* है आकाशी मुद्रा।

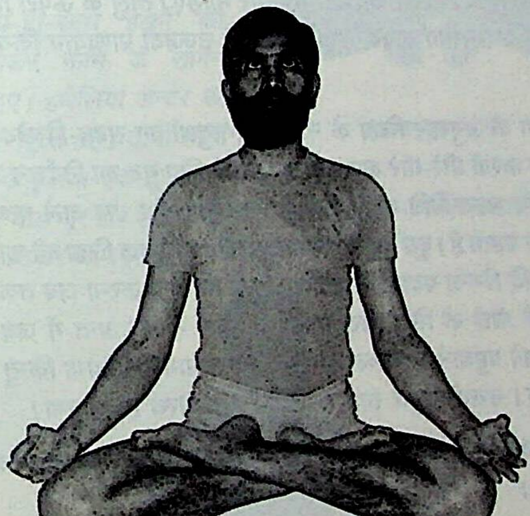

शाम्भवी-मुद्रा

(४) अश्विनी-मुद्रा

ध्यान के किसी आसन में बैठकर नेत्र बन्द कीजिए। शरीर को शिथिल छोड़ें एवं हाथों को ज्ञान व चिन्मुद्रा में घुटनों पर रख लें। गुदाद्वार की मांसपेशियों को कुछ क्षण के लिए संकुचित व प्रसारित करें। अधिक-से-अधिक आवृत्तियां करें।

जब उक्त अभ्यास में दक्षता प्राप्त कर लें तब थोड़ा अन्तर करें — गुदाद्वार को संकुचित करते हुए पूरक करें। संकुचन बनाए रखते हुए यथाशक्ति अन्तःकुम्भक का अभ्यास करें। रेचक कीजिए। पश्चात् स्नायुओं को शिथिल छोड़ें। सुविधानुसार पुनरावृत्ति करें।

इससे प्राणशक्ति का ह्रास रुकता है अर्थात् शक्ति संचय होती है। बवासीर, गुदा का बाहर आना, गर्भाशय के बाह्यगत होने की दशा में लाभप्रद है। अपच भी दूर होता है।

(५) खेचरी-मुद्रा

इस मुद्रा की राजयोग एवं हठयोग में भिन्न-भिन्न पद्धति बताई गई है। राजयोग के अनुसार मुँह बन्द करके जिह्वा के अग्रभाग से तालु का स्पर्श करें। अधिक जोर न देते हुए यथासम्भव जिह्वाग्र को पीछे की ओर मोड़िए। तालु के ऊपरी छिद्र के भीतर प्रवेश करके यथासम्भव ऊपर जाइए। साथ में उज्जयी प्राणायाम किया जा सकता है।

हठयोग के अनुसार जिह्वा के नीचे के स्नायुओं का संबंध-विच्छेद प्रति सप्ताह थोड़ा-थोड़ा करके धीरे-धीरे करना होगा। इसके लिए गुरु का निर्देशन आवश्यक है। क्योंकि इसमें शल्य विधि के लिये केले का धागा, तीव्र धार वाले पत्थर आदि का प्रयोग करना पड़ता है। दूध दुहने के समान लम्बी अवधि तक जिह्वा की मालिश मक्खन, घी, तेल आदि स्निग्ध पदार्थों से कीजिए। यह तब तक करना जब तक जिह्वा पलट कर तालु के पीछे के छिद्र द्वारा भ्रूमध्य से स्पर्श न हो। अन्त में जब आप भ्रूमध्य तक जिह्वा को पहुंचाने में सफल होंगे तब श्वास मार्ग बन्द होगा किन्तु ललना-चक्र जाग्रत् होगा। उसके अमृत स्राव से साधक समाधिस्थ हो जाएगा।

श्वास आरम्भ में सामान्य रहे किन्तु अभ्यास बढ़ने के साथ श्वास की गति धीमी करनी होगी।

संपूर्ण शरीर पर इस मुद्रा का अत्यधिक सूक्ष्म प्रभाव है। भूख-प्यास पर नियन्त्रण पाता है। इससे भी प्राणशक्ति के संचय द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत् किया जाता है। इसको सिद्ध कर लेने पर स्थूल-सूक्ष्म शरीर के सम्बन्ध पर विजय प्राप्त कर लेता है। योगशास्त्र सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थों में इसका बहुत वर्णन है।

(६) प्राण-मुद्रा

ध्यान के किसी भी आसन में बैठिए। सिर, गर्दन, रीढ़ सीधी रहे। हाथों को अपने सामने

जमीन को स्पर्श करते हुए रखें। हथेलियाँ एक दूसरे के बगल में अंगूठों को स्पर्श करते हुए रखकर नेत्रों को बन्द अथवा खुला रखें। तत्पश्चात् –

प्राण-मुद्रा (१)

(क) क्षमता अनुसार लम्बा रेचक कीजिए। बाह्य कुम्भक करते हुए मूलबन्ध लगाएं। मूलाधार-चक्र पर ध्यान कीजिए।

(ख) मूलबन्ध को शिथिल छोड़कर उदर का विस्तार करते हुए धीरे-धीरे लम्बा पूरक कीजिए। साथ-ही-साथ हाथों को उठाकर नाभि के सामने लाइए। हथेलियां अन्दर की ओर खुली रहें। दोनों हाथों की अंगुलियां एक-दूसरे की ओर थोड़ा दूर हों। ऐसा करते वक्त मन से अनुभव करें कि प्राणशक्ति मूलाधार से उठकर मणिपूर-चक्र तक पहुंच रही है।

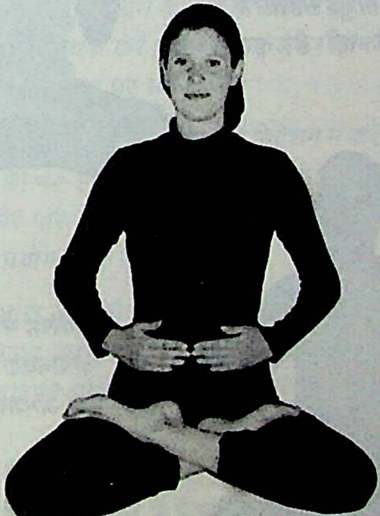

प्राण-मुद्रा (२)

(ग) छाती का विस्तार करते हुए पूरक करते जाइए। साथ ही हाथों को ऊपर उठाइए और छाती के सामने लाइए। हथेली एवं अंगुलियों का रुख पूर्ववत् रहे। अब आप प्राणशक्ति को मणिपूर चक्र से अनाहत की ओर चढ़ते हुए अनुभव करें।

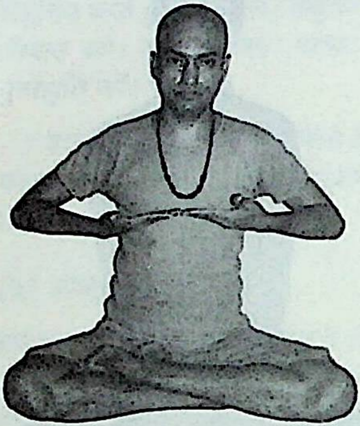

प्राण-मुद्रा (३)

(घ) कोहनियों को नीचे की ओर मोड़ते हुए हथेलियों को अपनी ओर करके कन्धों तक उठाते हुए फेफड़ों में और अधिक वायु भरने की कोशिश करें। अनुभव करें कि प्राणशक्ति अनाहत से उठकर विशुद्धि-चक्र में पहुंच गई है।

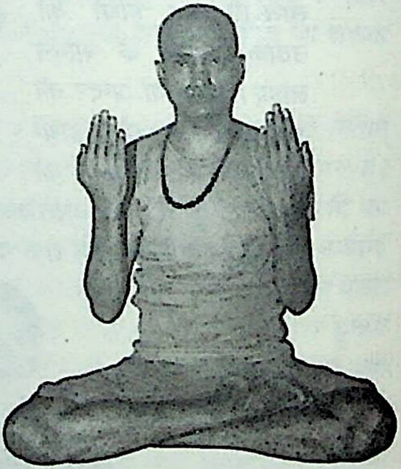

प्राण-मुद्रा (४)

(च) हाथों को धड़ के दोनों बाजू में फैलाते हुए अनुभव करें कि प्राणशक्ति आज्ञा-चक्र में पहुंचकर तरंगों के समान प्रसारित होती हुई सहस्रार में विलीन हो रही है। इस अवस्था में फैले हुए हाथ कानों के समकक्ष होंगे और अन्तर्कुम्भक का अभ्यास जारी रहेगा।

प्राण-मुद्रा (५)

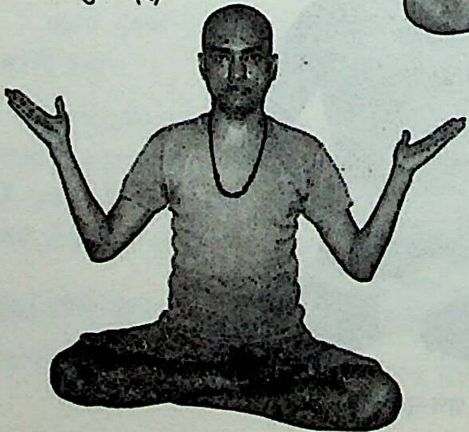

अब सहस्रार में ध्यान केन्द्रित कर ज्योतिःपुञ्ज का अनुभव करें। विना तनाव के जब तक कुम्भक में सुखपूर्वक रह सकें तब तक रोकते हुए अनुभव करें कि समस्त विश्व में आपके शरीर द्वारा शान्ति की तरंगें, प्राणशक्ति व चेतनता फैलकर चराचर में व्याप्त् हो रही है।

तत्पश्चात् विपरीत क्रम से रेचक करते हुए व्यापक शक्ति का अपने में प्रवेश होकर मूलाधार में स्थित होने का अनुभव करते हुए पांचों अवस्थाओं को करें।

इससे होने वाले लाभ की जितनी भी चर्चा करें वह थोड़ी ही होगी। इससे व्यष्टिभाव से उठकर समष्टिभाव के अनुभव के साथ समग्रता एवं विश्व-प्रेम जाग्रत् होता है, जो कि वेदान्तानुभूति के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

(७) वज्रोली-मुद्रा

किसी भी ध्यान के आसन में बैठकर हाथों को घुटनों पर रखें। नेत्रों को बन्द करके धीरे-धीरे पूरक करते हुए शरीर को शिथिल छोड़ें। मूत्रत्याग क्रिया को कुछ समय तक रोकने के लिए जैसे जोर लगाते हैं ठीक उसी प्रकार अन्तःकुम्भक लगाकर उदर के निम्न प्रदेश में कुछ दबाव डालते हुए मूत्रप्रणाली का संकोच कीजिए एवं प्रजननेन्द्रिय को ऊपर को खींचिए। यदि आवश्यकता महसूस हो मूलबन्ध लगा सकते हैं। कम-से-कम चार-पांच बार इन्द्रिय का संकोच विकास करने के पश्चात् बन्ध एवं कुम्भक खोलकर धीरे-धीरे रेचक करें। कुछ क्षण रुककर सामर्थ्यानुसार दुहराइए। संपूर्ण क्रिया में स्वाधिष्ठान-चक्र पर ध्यान करें।

इसका उच्च कोटि का अभ्यास योग्य गुरु के निर्देशन में करना उचित है क्योंकि इसमें रबर या चाँदी की १२ इन्ची लम्बी नली का प्रयोग किया जाता है। जिससे पानी, दूध, घी, मधु और पारा को खींच लिया जाता है। जब इसमें दक्षता प्राप्त हो जाए, विना नली का प्रयोग किए किया जाता है।

इससे वज्रनाड़ी द्वारा वीर्य को ऊर्ध्वरित करके वीर्य को वज्र के रूप में परिणत कर लिया जाता है। फलतः ब्रह्मचर्य पालन एवं कुण्डलिनी जागरण करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है। स्वप्नदोषादि दोष साधक के पास भूल से भी नहीं आते।

(८) योनि-मुद्रा

किसी आरामदायक ध्यान के आसन में बैठकर धीरे-धीरे पूरक कीजिए। इस मुद्रा के लिए पद्मासन या सिद्धासन अत्युत्तम है। श्वास रोकिए। अन्तःकुम्भक लगाकर हाथों

को उठाकर मुँह के सामने लाइए। कान के छेद को अंगूठों से, आँखों को तर्जनियों से तथा नासिका के छिद्र को मध्यमा अंगुलियों से बन्द कीजिए। अनामिका एवं छोटी अंगुलियों को ऊपर और नीचे के होठों पर रखते हुए मुँह बन्द कर दीजिए। बिन्दु-चक्र पर ध्यान करते हुए आन्तरिक नाद को ग्रहण करने का प्रयास कीजिए। यथाशक्ति कुम्भक करने के पश्चात् केवल नासिका के ऊपर से अंगुलियों को थोड़ा उठाकर धीरे-धीरे रेचक कीजिए। कुछ क्षण रुककर क्षमतानुसार आवृत्ति करें।

यह प्रत्याहार के लिए शक्तिशाली क्रिया है। इससे बिन्दु-चक्र सक्रिय होता है और उससे उत्पन्न विभिन्न सूक्ष्म ध्वनियों का अनुभव करता है। इसी नाद के आनन्दानुभव के कारण साधक अन्तर्मुखी होते जाते हैं।

(६) नवमुखी-मुद्रा

ध्यान के किसी भी आसन में बैठकर धीमी एवं लम्बी श्वास लेते हुए शरीर को शिथिल कीजिए। श्वास के साथ चेतना को मन से चक्रों का नाम लेकर मूलाधार से सहस्रार तक पहुंचाएं। अन्तःकुम्भक लगाएं। योनि-मुद्रा में कही विधि से कर्ण, नेत्र और मुँह को बन्द कर लें। मूलबन्ध एवं वज्रोलि-मुद्रा का अभ्यास करें। सहस्रार-चक्र पर ध्यान करें। यथाशक्ति कुम्भक में रहने के बाद केवल नासिका छिद्र एवं मूलबन्ध व वज्रोलि-मुद्रा खोलकर धीरे-धीरे रेचक कीजिए। कुछ विश्राम के बाद पुनरावृत्ति करें। आवृत्तियां सामर्थ्यानुसार करें। रेचक क्रिया के दौरान चेतना को वापस मूलाधार में लाइए अथवा पूरे शरीर में व्याप्त होने का अनुभव करें।

यह मुद्रा षट्चक्रभेदन द्वारा दशम द्वार का भेदन करने में उपयोगी है। दशम द्वार को ब्रह्मरन्ध्र, ब्रह्मद्वार, उच्च चेतना आदि नामों से कहा गया है। इसके अतिरिक्त योनि-मुद्रा के लाभ अधिक प्रभावशाली ढंग से हासिल कर सकते हैं।

(१०) महामुद्रा

पैरों को सामने सीधा फैलाकर बैठिए। दाहिने पैर को इस प्रकार मोड़िए कि दाहिने पैर की एड़ी गुदाद्वार के नीचे हो। थोड़ा सामने की ओर झुककर दोनों हाथों की अंगुलियों से बाएं पैर के अंगूठे को पकड़ लें। पूरे शरीर को शिथिल करें। दीर्घ पूरक कीजिए। थोड़ा सिर को पीछे झुकाकर कुंभक लगाकर मूलबन्ध एवं शाम्भवी-मुद्रा का अभ्यास करें। अपनी चेतना को मानसिक रूप से मूलाधार, विशुद्धि, आज्ञा चक्रों पर घुमाइए। प्रत्येक चक्र पर एक या दो क्षण रुकें। यथासम्भव चेतना को घुमाते रहें। सामर्थ्यानुसार कुम्भक के पश्चात् सिर को सीधा करें, मूलबन्ध एवं शाम्भवी-मुद्रा को निवृत्त कर धीरे-धीरे रेचक करें। सामर्थ्यानुसार आवृत्ति करें।

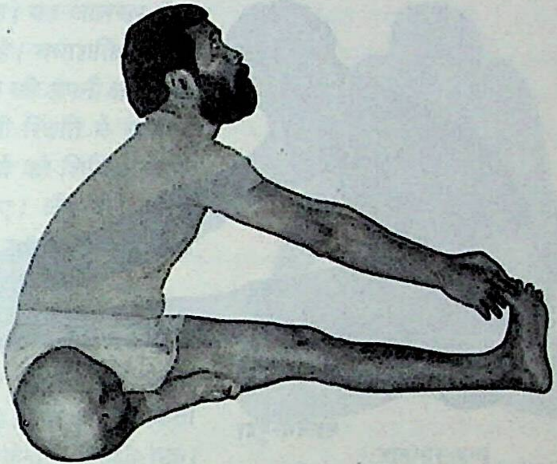

महामुद्रा

पुनः इस क्रिया को पैर बदलकर उतनी ही आवृत्ति करें। इसमें जोर-जबरदस्ती से कुछ नहीं करना है।

शरीर एवं मन को ध्यान के योग्य बनाता है और प्राणशक्ति को शरीर में सही ढंग से संचालित करता है। उदर की अव्यवस्था को दूर करता है।

(११) महाबेध-मुद्रा

महामुद्रा की स्थिति में बैठिए। पूर्ण पूरक करके पूर्ण रेचक करें। सिर को सामने की ओर झुकाए रखें। नासिकाग्र दृष्टि कीजिए। तीनों बन्ध लगाइए। क्रमशः चेतना को मूलाधार, मणिपूर एवं विशुद्धि-चक्र पर घुमाइए। प्रत्येक चक्र पर एक-दो क्षण रुकें। आरामदायक स्थिति तक बाहर कुम्भक में रहकर चेतना को दौड़ाते रहें। तत्पश्चात् क्रमशः उड्डियान, मूल एवं जालन्धर-बन्ध को खोलकर धीरे-धीरे पूरक कीजिए।

बेध का अर्थ है बेधना = छेदना = भेदन करना। अतः —

भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।।

इस उपनिषद् की उक्ति का अनुभव करने में यह अत्यन्त उपयोगी है।

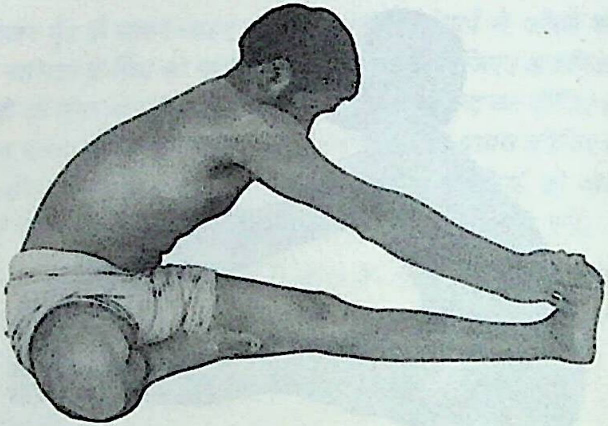

महावेध-मुद्रा

बन्ध विज्ञान

योगाभ्यास की यह अत्यन्त शक्तिशाली एवं महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। यह शरीर के समस्त अंगों एवं नाड़ियों को नियन्त्रित करने में उपयोगी है। बन्ध का अर्थ है बांधना या कड़ा करना। यह आन्तरिक अंगों की मालिश के लिए अति आवश्यक है। यद्यपि यह एक शारीरिक क्रिया होने से शारीरिक कार्य को संयमित करके स्वास्थ्य में उन्नति लाता है तथापि शरीर में व्याप्त मन के विचारों एवं आत्मिक तरंगों में प्रवेश कर चक्रों पर सूक्ष्म प्रभाव डालता है। फलतः आध्यात्मिक उन्नति एवं सुषुप्त शक्तियों को जाग्रत् करता है। तात्पर्य यह है कि सुषुम्ना नाड़ी के अवरोधों को दूर करके उसमें प्राणशक्ति के स्वतन्त्र प्रवाह द्वारा ग्रन्थिभेदन करते हुए योग का परम लक्ष्य आत्मानुभूति करने में उपयोगी है।

इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए आसन, प्राणायाम एवं मुद्राओं के साथ इनका अभ्यास किया जाता है। इस प्रकार यौगिक क्रियाओं के परस्पर समन्वय से आध्यात्मिक शक्तियों को जाग्रत कर लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

(१) जालन्धर-बन्ध

पद्मासन या सिद्धासन में बैठकर अथवा खड़े होकर इसका अभ्यास कर सकते हैं। हाथों को घुटनों पर रखें। संपूर्ण शरीर को शिथिल करके आंखें बन्द कर लें। दीर्घ पूरक के बाद अन्तःकुम्भक लगाएं। सिर को सामने झुकाकर ठुड्डी को छाती पर दबाइए। हाथों को सीधा करके बल डालते हुए स्थिर हो जाइए। दोनों कन्धों को एक साथ थोड़ा ऊपर की ओर खिंचाव करते हुए कुछ सामने रखिए। फलतः पूरा शरीर कड़क

व स्थिर होगा। यह जालन्धर बन्ध का स्वरूप है। यथाशक्ति अर्थात् श्वास रोकने की अपनी क्षमता के अनुसार इसी स्थिति में रुकिए। कंधों व हाथों को शिथिल करके सिर उठाइए। धीरे-धीरे रेचक कीजिए। कुछ क्षण विश्राम करके पुनरावृत्ति करें।

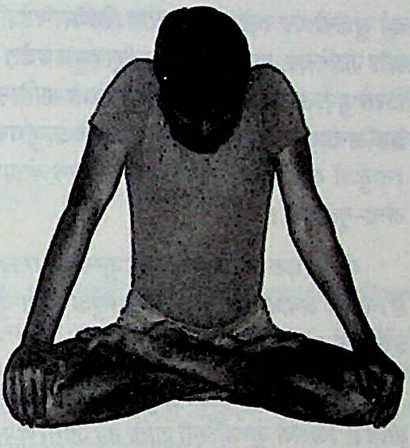
जालन्धर-बन्ध

पूर्ण पूरक करके विना अन्तःकुम्भक लगाए पूर्ण रेचक करके भी यह क्रिया की जा सकती है। ध्यान का केन्द्र — विशुद्धि-चक्र।

उच्च रक्तचाप, हृदयरोगी, अन्तःमस्तिष्क दाब, माईग्रेन आदि के रोगी योग्य शिक्षक के निर्देशन में ही करें।

इससे ग्रीवा प्रदेश में स्थित रंध्र की नाड़ियां, मस्तिष्क को रक्त प्रदान करने वाली ग्रीवा, शिरा, चुल्लिका तथा उपचुल्लिका ग्रंथियों पर प्रभाव पड़ता है। फलतः शरीर की रचना व विकास, प्रजनन क्रियाएं संयमित होती हैं और मानसिक तनाव, चिन्ता, क्रोधादि मनः सम्बन्धी-रोग दूर करने में सहयोग मिलता है। इससे रक्त प्रवाह की अधिकता व न्यूनता से होने वाले रोगों पर नियंत्रण प्राप्त कर सकते हैं।

मूलबन्ध

(२) मूलबन्ध

ध्यान के किसी भी आसन में बैठें जिसमें घुटने जमीन को स्पर्श करते रहें। अतः सिद्धासन सर्वोत्तम है। इस आसन में स्वतः मूलाधार प्रदेश पर दबाव पड़ता है। अतः मूलबन्ध का अभ्यास अनायास हो सकता है। नेत्र बन्ध करके हथेलियों

को घुटनों पर रखें। पूरा शरीर शिथिल रहे। दीर्घपूरक करके अन्तःकुम्भक लगाएं और जालन्धर-बन्ध लगाएं। अब मूलाधार प्रदेश के स्नायुओं में आकुंचन-प्रसारण क्रिया करते हुए ऊपर की ओर खींचिए। यह अन्तिम अवस्था है। अपनी क्षमतानुसार जब तक अन्तःकुम्भक लगाए रखेंगे तब तक आकुंचन-प्रसारण क्रिया जारी रखें। तत्पश्चात् स्नायुओं को शिथिल करके बन्ध खोलने के पश्चात् धीरे-धीरे रेचक करें। ध्यान का केन्द्र-मूलाधार।

दीर्घ रेचक के पश्चात् बहिःकुम्भक लगाकर इस क्रिया का अभ्यास कर सकते हैं। लम्बी अवधि तक करने के इच्छुक विना कुम्भक लगाए सामान्य श्वास के साथ इसे कर सकते हैं।

इस क्रिया से अपान वायु का योग प्राणवायु से होता है, फलतः ऊर्जा उत्पन्न होती है, जिससे कुण्डलिनी शक्ति का जागरण सुलभ होता है। अतः ब्रह्मचर्य का पालन एवं ओज शक्ति को जाग्रत करने में सहायक है। बवासीर, अपच आदि रोगों में उपयोगी है। गुदाद्वार की मांसपेशियों एवं कटिबंध प्रदेश की नाड़ियों और आंतों के वक्र प्रदेशों को उत्प्रेरित कर मजबूत करता है। मन को आध्यात्मिक साधना के योग्य बनाता है।

(३) उड्डियान-बन्ध

जिसमें घुटने जमीन को स्पर्श करते हों ऐसे ध्यान के आसन में बैठिए। पद्मासन अथवा सिद्धासन उत्तम हैं। हथेलियों को घुटनों पर रखें। दीर्घ रेचक करके बहिःकुम्भक लगाकर जालन्धर-बन्ध लगाइए। अब उदर की मांसपेशियों को अधिक-से-अधिक ऊपर तथा भीतर की ओर संकुचित कीजिए। आरामदायक स्थिति तक अभ्यास करें। क्रमशः उदर को एवं जालन्धर-बन्ध को शिथिल कीजिए। कुछ क्षण विश्राम कर दुहराइए। ध्यान का केन्द्र – मणिपूर-चक्र।

खाली पेट ही इसका अभ्यास करना चाहिए। दिल की बीमारी, जठर या पेट में घाव और गर्भवती स्त्री के लिए वर्जित है।

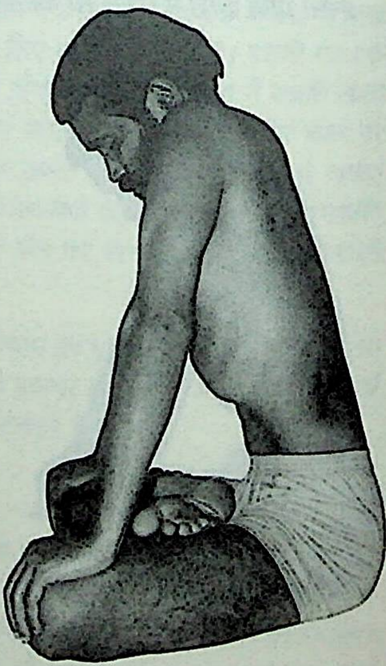

उड्डियान-बन्ध

उदर एवं जठर की सभी बीमारियों में लाभकारी है। चिन्ता एवं परेशानी से युक्त मन को स्थिर करता है। अनुकम्पी एवं परानुकम्पी तंन्त्रिकाओं को उत्तेजित करता है। फलतः समस्त अंगों विशेषतः उदरस्थ अंगों की मालिश होती है। शरीर के प्राणशक्ति का केन्द्र मणिपूर-चक्र संयमित रूप से कार्य करता है। यह सषुम्ना नाड़ी की ओर प्राणशक्ति के प्रवाह को प्रोत्साहित करता है।

(४) महाबंध

यह उक्त तीनों बन्धों का समन्वय है। पूर्ण रेचक करके क्रमशः जालन्धर, उड्डियान एवं मूलबंध लगाइए। तत्पश्चात् क्रम से अपनी चेतना को मूलाधार, मणिपूर व विशुद्धि-चक्र पर घुमाइए। इसकी पुनरावृत्ति क्षमतानुसार करें यानी जब तक कुम्भक को सुखपूर्वक रोके रहेंगे। तत्पश्चात् पहले मूलबंध क्रमशः उड्डियान एवं जालन्धर-बन्ध को हटाकर पूरक करें। कुछ क्षण विश्राम कर दुहराइए।

द्वितीय प्रकरण

चित्त-शुद्धि-प्रकरण

योग का परम लक्ष्य जीवब्रह्मैक्यत्व की अनुभूति के लिए केवल शरीर शुद्धि एवं कुण्डलिनी जागरण परिपूर्ण नहीं है। इसके लिए चित्त शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है। जब तक वासनाओं के क्षय के लिए कोई साधना नहीं की जाए तब तक समस्त योग प्रकिया केवल ऋद्धि-सिद्धियों को प्रदान कर साधक को माया में पुनः फंसा सकती है। अतः वासना क्षय जिसको बीजनाश कहते हैं उसके लिए इस प्रकरण को आरम्भ किया गया है। योगसूत्रकार पतञ्जलि ने *कैवल्यपाद* में स्पष्ट कहा है –

तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः।
हानमेषां क्लेशवदुक्तम्।।
(४/१७-१८)

तात्पर्य यह है कि अविद्या रूपी खेती और वासना रूपी बीज का क्षय किए बिना मुक्ति नहीं हो सकती। इसके लिए चित्तशुद्धि अति आवश्यक है। क्रमशः सकाम कर्मत्याग एवं आहारशुद्धि से प्रथमतः मन की चंचलता को दूर करके, मन को योगनिद्रा एवं त्राटकादि द्वारा काबू में करके प्रार्थना एवं अन्तर्मौन के अभ्यास से परब्रह्म परमात्मा की ओर वृत्तियों को प्रेरित करने के पश्चात् ध्यानाभ्यास करेंगे तो अवश्य समाधि अर्थात् मुक्ति हासिल कर सकते हैं। अतः इस प्रकरण को सात अध्यायों में विभक्त कर चित्तशुद्धि की प्रक्रिया को दर्शाया गया है– (६) निष्काम कर्मयोग विज्ञान, (७) युक्ताहार विज्ञान, (८) योगनिद्रा विज्ञान, (६) प्रत्याहार

विज्ञान, (१०) त्राटक विज्ञान, (११) धारणा विज्ञान, और (१२) ध्यान विज्ञान।

इनमें से ६ से ८ अध्याय प्रत्याहार की तैयारी के लिये हैं। नौवाँ प्रत्याहार (योगाङ्ग) का है। दसवाँ अध्याय प्रत्याहार एवं धारणा की कड़ी है। अन्तिम दो अध्याय धारणा एवं ध्यान (योगाङ्गद्वय) सम्बन्धी हैं।

अध्याय ६
निष्काम कर्मयोग विज्ञान

चित्तशुद्धि की लम्बी यात्रा में निष्काम कर्मयोग पहला साधन है। प्रायः लोग अपने शरीर के बाहरी रूप एवं वाणी को बहुत चिकना-चुपड़ा, सुन्दर व मीठा (मधुर) रखते हैं परन्तु मन को शुद्ध करने की बात जब आती है तब सब विफल होते हैं। इसके दो कारण हैं – एक तो वे इसका महत्त्व नहीं समझते और दूसरा धर्म विरुद्ध कामनाएं।

गीता के अनुसार महत्त्व को समझें एवं काम त्याग की प्रकिया को जानें। संसार में जितने भी जीव हैं वे सदैव कर्म करते रहते हैं। काया, वाचा, मनसा, किसी-न-किसी तरह क्षण भर भी कर्म किए बिना कोई जीवित नहीं रह सकता –

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
(३/५)

अतः कर्मों से बचना संभव नहीं। इसलिए यह विचार करें कि किस प्रकार के कर्म से बन्धन (पुनर्जन्म) होगा और किस प्रकार के कर्म से हम मुक्ति की ओर बढ़ सकते हैं।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ।।
(५/१२)

गीता के इस वचन से स्पष्ट है कि सकाम कर्म बन्धन का कारण है और निष्काम कर्म मुक्ति का साधन है। इसलिए भगवान् का आदेश है –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
(२/४७)

कर्म में निष्काम भाव लाने के लिए यह जानना जरूरी है कि कर्म कैसे होते हैं ताकि

उसके मूल स्रोत को शुद्ध कर सकें। वे ऐसे हैं –

१. *सदृशं चेष्टते स्वस्या, प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।*
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।। (प्रकृति = स्वभाव)
(३/३३)

२. *प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।।* (प्रकृति = माया)
(३/२७)

३. *कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।*
(३/५)
इन्द्रियणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्।। (प्रकृति = माया)
(५/९)

(1) साधक का अपने अज्ञानवश जो स्वभाव है वह, (2) त्रिगुणात्मिका माया के करण और (3) इन्द्रियों का विषय की ओर दौड़ने का रुझान। इन कारणों में शुद्धि लाने के लिए भगवान् प्रथमतः स्वभाव में परिवर्तन लाने के लिए कहते हैं –

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ।।
(३/३८)

और

रागद्वेषविमुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।।
(२/६३)

अर्थात् सुख-दुःख, लाभालाभ, जयाजय एवं रागद्वेष से रहित होकर कर्म करने का अभ्यास करना चाहिए। यह भी तब संभव है जब अपना कर्त्तव्य समझकर करें, इस सम्बन्ध में भगवान् कहते हैं –

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।।
(३/१०)

यही वैदिक सनातन धर्म है। इसी का पालन कर जनकादियों ने लक्ष्य प्राप्त किए –

कर्मणैव हि संसिद्धमास्थिता जनकादयः ।।
(३/१०)

दूसरी बात यह विवेक करना है कि जब माया के गुणों द्वारा भगवान् ही सबका कर्त्ता है तो अपने कर्तृत्वभाव को पकड़े रहने की अपेक्षा त्यागने का दृढ़ संकल्प करना ही उचित है। अतः कहा —

अहंकारविमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते।
(३/२७)

तीसरी बात यह है कि कामनाओं को त्यागना चाहिए। इस सम्बंध में कहते हैं —

जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।
(३/४३)

और
त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।।
(१६/२२)

इतना ही नहीं वास्तविक संन्यास तो कामनापूर्वक कर्म का त्याग है।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
(१८/२)

अन्तिम बात यह है कि मन को बुरे कर्मों से हटाना ।

संसार में देखा गया है कि कामनाओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति धर्म का उल्लंघन, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, बेईमानी आदि करता है। क्रोध से हिंसा, मोह से पक्षपात और लोभ से चोरी करता है। जब निम्न उपायों को अपनाएंगे तो यह नहीं होगा। वे उपाय हैं —

(1) कर्त्तव्य समझकर कर्म करना। (2) कर्तृत्वभाव और काम को त्यागकर निष्काम भाव से करना। (3) कुसंगति का त्यागकर वेदों में निषिद्ध कर्मों को त्यागना। (4) ईश्वरार्पण बुद्धि से ईश्वर की प्रसन्नता के लिए करना। (5) समाज की भलाई करना और (6) ज्ञान की वृद्धि करना।

अतः निरभिमानी होकर निष्काम भाव से अनासक्तिपूर्वक कर्म करना निष्काम कर्म-योग है, जो कि अध्यात्म मार्ग की पहली सीढ़ी है।

अध्याय ७

युक्ताहार विज्ञान

सांसारिक लोगों में विशेषतः आजकल के लोगों का कहना है कि इस आधुनिक भ्रष्टाचार प्रधान भौतिकवादी समाज में निष्काम कर्मयोग असंभव है। लेकिन ऐसा कहना केवल एक बहाना है। वैदिक सनातन धर्म का निष्ठापूर्वक पालन करने से भी सुख–शान्ति प्राप्त हो सकती है। यदि कहो कि आधुनिक वैज्ञानिक युग के भौतिक सुख साधनों को जुटाने के लिए सब कुछ करना पड़ता है और मन इनके विना मानता नहीं तो इसका जवाब हम देते हैं।

सर्वप्रथम यह बताइये कि आप मन के मालिक हैं या मन आपका मालिक है। यदि मन मालिक है तो उसे मनाने व खुश रखने के लिए उसके अनुसार करना पड़ेगा। लेकिन बात ऐसी नहीं है। इसलिए आप मन को उपाय से वशीभूत कर सकते हैं। वे उपाय हैं — सन्तोष, अभ्यास वैराग्य, मैत्र्यादि और युक्ताहार।

(१) सन्तोष — *जेहि विधि राखे राम तेहि विधि रहिए* अर्थात्

यदृच्छालाभेन संतुष्टः ।। गी॰ ।।

सन्तोषादनुत्तम सुखलाभः।। यो.सू॰ २/४२ ।।

(२) अभ्यास वैराग्य — *अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः* ।। यो.सू॰ १/११ ।।

अभ्यासेन च कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।। गी॰ ।।

(३) मैत्र्यादि — *मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषय भावनातश्चित्तप्रसादनम्* ।। यो.सू॰ १/३३ ।।

(४) युक्ताहार — *अपरे नियताहाराः* ।। गी॰ ४/३० ।।

तात्पर्य यह है कि — अपने पूर्व जन्मों में कृतकर्म की वजह से प्रारब्ध कर्मानुसार एवं भगवत्कृपा से जो प्राप्त है उससे सन्तोष कर लेना और अधिक के लिए प्रयास

न करना। नित्य निरन्तर शास्त्र चिन्तन और दीन-दुःखी के मनन द्वारा मन को समझाकर सांसारिक दौड़ से अलग करना, यही अभ्यास और वैराग्य है।

सुखी को देखकर जलना नहीं अपितु मैत्री की भावना करना, दुःखी को देखकर घृणा नहीं करना अपितु दया व करुणा की भावना करना, पुण्यशील धार्मिक को देखकर ईर्ष्या या द्वेष न करना अपितु प्रसन्न होना और पापी को देखकर निन्दा या विरोध नहीं करना चाहिए बल्कि उसकी उपेक्षा करनी चाहिए।

अन्ततः युक्ताहार है। जैसे कि कहावत है — "जैसा खावे अन्न वैसा बने मन"। इसलिए मन को नियन्त्रित करने का अत्युत्तम उपाय है रसनेन्द्रिय पर पाबन्दी लगाना। *महाभारत* और *भागवत* में कहा है ***जिते रसं जितं सर्वं***। गीता में कहते हैं —

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।। ६/१७ ।।

मतलब यह है कि अपने आहार, विहार, निद्रा, जाग्रत् एवं चेष्टा को संयमित कर किये गए योग से दुःखों का नाश होता है।

छः कि॰ मी॰ से ज्यादा घूमना नहीं, छः घण्टा से ज्यादा सोना नही, आठ से दस घण्टे से ज्यादा इन्द्रियों का प्रयोग कर जाग्रत् रहना नहीं अर्थात् छः घण्टा निद्रा और आठ घण्टा से दस घण्टा जाग्रत दोनों मिलकर १४/१६ घण्टा हुआ, शेष समय ध्यानादि योगाभ्यास/आध्यात्मिक साधना में व्यतीत करना और धर्म के अनुरूप कर्म करना चाहिए। युक्ताहार का मतलब है सात्त्विक संयमित भोजन करना। इसका अर्थ केवल रोटी-दाल-भात में सीमित न करें क्योंकि 'आहार' शब्द का अर्थ है **आह्रियन्ते शब्दादि विषयं इति आहारः**। अर्थात् सभी इन्द्रियों के विषय को आहार कहते हैं। इसलिये (१) कानों से भगवद् चर्चा, भजन, शास्त्रादि के अतिरिक्त आवश्यक व्यवहार से सम्बन्धित सात्विक बातों को ही सुनना। (२) आंखों से भगवान की मूर्ति, सन्त-महात्माओं, अपने से श्रेष्ठ व ज्येष्ठ धार्मिक लोगों एवं साधकों के अतिरिक्त व्यवहार के लिए अत्यन्त आवश्यक सात्विक वस्तुओं का ही दर्शन करें। (३) त्वगिंद्रिय से आध्यात्मिक साधनोपयोगी पदार्थ के अतिरिक्त व्यवहारार्थ अति आवश्यक सात्विक वस्तुओं का ही स्पर्श करना। पत्नी-बच्चे आदि का भी स्पर्श धर्मानुरूप ही करना चाहिए। (४) नाक से भगवान की पूजा-पदार्थ व साधना सम्बन्धी पदार्थों के अलावा व्यवहारोपयोगी सात्विक सुगन्धित अति आवश्यक पदार्थों को ही सूँघना। (५) रसनेन्द्रिय के विषय में तो अत्यन्त सावधानी की अपेक्षा है। इसलिए अन्नादि भोजन विषयक कुछ आवश्यक ध्यान में रखने योग्य बातें इस प्रकार हैं।

भूख लगने पर ही भोजन करना चाहिए। मात्रा भी यथेष्ट न हो अपितु आधा

आमाशय अन्न से भरें, चौथाई पानी से और शेष चौथाई हवा के लिए छोड़ें। बुजुर्ग कहते थे पानी खावो-रोटी पीयो – तात्पर्य है कि अन्नादि ठोस पदार्थों को खूब चबाकर तरल बनाकर निगलें और दूधादि तरल पदार्थों को घूंट-घूंट-कर धीरे-धीरे पीना चाहिए। भोजन करते समय मन को शान्त एवं मौन रखना चाहिए।

यद्यपि भोजन की मात्रा एवं तालिका बनाने में कठोर नियम लागू नहीं हो सकता क्योंकि आयु, काम, मौसम, रुचि, सामग्री की उपलब्धि, शारीरिक स्थिति, आर्थिकादि परिस्थिति, रोग एवं साधन के स्तर पर भोजन का परिमाणादि निर्भर करता है तथापि मौसम के आधार पर त्याज्य व ग्राह्य पदार्थों को संक्षेप में दिखाया जा रहा है।

(१) हेमन्त ऋतु – कफ प्रधान होने से कफनाशक पदार्थ ग्रहण करें।

(२) शिशिर ऋतु – वातप्रधान होने से वातनाशक पदार्थ ग्रहण करें।

(३) वसन्त ऋतु – कफप्रधान होने से कफनाशक पदार्थ ग्रहण करें।

(४) ग्रीष्म ऋतु – पित्तप्रधान होने से पित्तनाशक पदार्थ ग्रहण करें।

(५) वर्षा ऋतु – पित्तप्रधान होने से पित्तनाशक पदार्थ ग्रहण करें।

(६) शरद ऋतु – वातप्रधान होने से वातनाशक पदार्थ ग्रहण करें।

अर्थात् जिस ऋतु में जो तत्त्व प्रधान हों उस तत्त्व की वस्तुओं को ग्रहण न करें। इस प्रकार वात-कफ-पित्त को संतुलित करने वाले भोजन करने चाहिए।

भोजन सात्त्विक होना योगाभ्यासी एवं साधक के लिए अति आवश्यक है। इस सन्दर्भ में भगवान कहते हैं –

आयुः सत्त्व बलारोग्य सुख प्रीति विवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धा स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विक प्रियाः ।।
(१७/८)

[अर्थात् आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले एवं रस, चिकने तथा शरीर में बहुत समय तक स्थिर रहने वाले, स्वभाव से मन को प्रिय हो ऐसे आहार सात्त्विक पुरुष को प्रिय होते हैं।]

भोजन के एक घण्टे पहले, भोजन के बीच में (थोड़ा) और भोजन के एक घण्टे बाद ही पानी पीना चाहिए। भोजन के आरम्भ में और अन्त में नहीं पीना चाहिए। भोजन को सलाद अथवा भिगोकर फुलाया हुआ या अंकुरित दालों से आरम्भ करना अच्छा होता है। भोजन के अन्त में छाछ, मट्ठा, पतली लस्सी पीना अच्छा है। मौसम के फलों को भोजन के साथ खाना उचित नहीं। यौगिक भोजन समय सारणी इस प्रकार

होना अच्छा है — प्रातः छः बजे अल्पाहार दूध या लस्सी के साथ, १० बजे भोजन, १२ बजे फल, २ बजे पेय पदार्थ, सायं ६ बजे भोजन, रात्रि ८-९ बजे के बीच दूध, १० बजे सो जाना, प्रातः ३ बजे उठना। आवश्यकता पड़े तो दोपहर एक घण्टा विश्राम कर सकतें हैं किन्तु नींद नहीं लेना। भोजन का परिमाण (मात्रा) आपकी पचाने की शक्ति पर निर्भर होना चाहिए। अपने शरीर के अनुकूल चीजों को ही ग्रहण करना और भोजन की तैयारी, पकाना व खाने तक की पूरी प्रक्रिया में स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए।

भोजन की गुणवत्ता के समान भोजन बनाने, परोसने व खाने वाले का भाव भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अतः भगवन्नाम स्मरण करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता के साथ पवित्र भावना से भोजन करना श्रेष्ठ एवं स्वास्थ्यवर्धक ही नहीं बल्कि साधना में भी सहयोगी होगा।

दिन के भोजन के पश्चात् सीधे लेटकर आठ श्वास, दाईं करवट १६ श्वास और बाईं करवट ३२ से ६४ श्वास तक लेटें। तत्पश्चात् वज्रासन में कुछ समय बैठकर अपने कार्य में लग सकते हैं। रात्रि के भोजन के पश्चात् वज्रासन में बैठकर जप ध्यानादि करते हुए अन्त में शवासन में लेटकर योगनिद्रा करके सोना अच्छा है।

एक भोजन में अनेक प्रकार के व्यंजन व मसालेदार, तले या भुने हुए पदार्थ ग्रहण करना हर दृष्टिकोण से हानिकारक है।

अध्याय ८

योगनिद्रा विज्ञान

प्रस्तावना

योगाभ्यासी की निद्रा विशेष प्रकार की होती है जिसे "योगनिद्रा", "सजग निद्रा" अथवा "चेतन निद्रा" कहते हैं। निद्रा बेहोशी या विश्राम है किन्तु योगनिद्रा चेतनता एवं पूर्ण विश्राम है।

सफल योगनिद्रा से गहरी नींद प्राप्त होगी और थोड़े ही समय में नींद पूरी होगी। फलतः ताजगी, स्फूर्ति तथा शक्ति पूर्णतया प्राप्त होगी। इससे मन तनाव रहित, शान्त एवं प्रसन्न होता है इसलिए शीघ्र ही पूर्ण विश्राम प्राप्त होता है। योगनिद्रा मानवमात्र का विशेषतः योगाभ्यासी एवं साधक के दैनिक जीवन का अंग बननी चाहिए ताकि वह योग का पूर्ण लाभ उठा सके।

विधि

इसकी संक्षिप्त विधि यह है कि आप शवासन में लेटकर पैरों को थोड़े अन्तर में एवं हाथों को बगल में जमीन पर हथेलियों को ऊपर की ओर आरामदायक स्थिति में रखें। तत्पश्चात् इस क्रम से मानसिक क्रिया आरम्भ करें।

(१) संकल्प, (२) शरीर के विभिन्न अंगों पर चेतना को दौड़ाएं, (३) विभिन्न भावों को जाग्रत् करें — गर्म-ठण्डा, भारी-हल्का, (४) श्वास क्रिया पर ध्यान, (५) चेतना को चक्रों पर दौड़ाना, (६) विभिन्न विपरीत वस्तुओं की कल्पनापूर्वक सुख-दुःख को महसूस करना, (७) आत्म चिन्तन, (८) पञ्च तत्त्वों पर ध्यान करके तत्पश्चात् संकल्प को दुहराकर शान्तिपाठ करने के बाद धीरे-धीरे शरीर के अंगों को हिलाकर एवं आंखों को खोलकर सामान्य स्थिति में लौटिए अथवा सो जाइए।

योगनिद्रा के दौरान न सोएं तो अच्छा होगा और अधिक लाभ होगा।

लाभ

योगनिद्रा से ज्ञानवृद्धि एवं चित्तशुद्धि होती है। इससे मानसिक तनाव, शरीर की टूटन व थकान शीघ्र दूर हो जाती है। हृदय रोग, उच्च रक्तचाप तथा मानसिक रोग व परेशानियों को दूर करने में यह अत्यन्त प्रभावशाली है। शरीर की समस्त प्रणालियों में आपसी ताल-मेल हो जाने से शरीर संतुलित रहता है। मन को अन्तर्मुखी बनाने का यह सर्वश्रेष्ठ साधन है। अतः प्रत्याहार का यह उत्कृष्ट साधन है।

अध्याय ६

प्रत्याहार विज्ञान

विवेक और वैराग्य के साधन निष्कामकर्म योग और युक्ताहार के अभ्यास द्वारा साधक मन को अन्तर्मुख करने की कोशिश करता है तथा साधक को योगनिद्रा मन को शिथिल कर सरलतापूर्वक वश में लाने में उपयोगी हैं। तथापि प्रत्याहार के अभ्यास के बिना पूर्णतया मन को अन्तर्मुख करना संभव नहीं है। अतः प्रत्याहार विज्ञान नामक अध्याय आरम्भ किया गया है। पतञ्जलि के अनुसार —

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार ।।
(यो.सू. २/५५)

यम, नियम, आसन, प्राणायाम — इन चार बहिरंग साधन एवं धारणा, ध्यान, समाधि — इन तीन अन्तरंग साधन को परस्पर जोड़ने वाली बीच की कड़ी है प्रत्याहार। इसलिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधन है।

प्रत्याहार विज्ञान को यहाँ तीन खण्डों में विचार करेंगे — (क) आत्मनिवेदन अथवा प्रार्थना विज्ञानम्, (ख) जप योग, (ग) अजपाजप।

आत्मनिवेदन अथवा प्रार्थना विज्ञानम्

आप अपने से जिसको ज्येष्ठ-श्रेष्ठ-पूज्य मानते हैं, उनके समक्ष अपने भावों के स्वाभाविक उद्गार प्रकट करने को प्रार्थना कहते हैं। वह ज्येष्ठ-श्रेष्ठ-पूज्य अपने माता-पिता, गुरु, ईश्वर, पति या अन्य कोई चेतन व्यक्ति हो सकता है। सच्ची प्रार्थना का उत्तर सदैव मिलता है।

प्रार्थना लक्ष्य प्राप्ति की अत्यन्त सरल एवं चमत्कारी विधि है। इससे अभाव दूर हो जाते हैं। कायर निडर बनता है। कमजोर शक्तिशाली हो जाता है एवं पापी पुण्यात्मा बनता है। सफल प्रार्थना की मुख्य शर्त यह है कि अपने अस्तित्व को त्यागकर अपने पूज्य के चरणों में पूर्ण समर्पण। ऐसा करने वाले व्यक्ति को अपने में दीनभाव, नम्रता,

सहनशीलता, धैर्य, आज्ञानुकारी आदि महान् गुणों को अपनाना चाहिए। यह प्रार्थना आत्मसमर्पण की अत्यंत सरल विधि है। इसमें हृदय की भावनात्मक शक्ति को स्वतः बहने दिया जाता है। इसको करने के दो तरीके हैं — निरालम्ब एवं सालम्ब प्रार्थना।

निरालम्ब प्रार्थना को मुग्ध प्रार्थना कहते हैं। इसे वे लोग कर सकते हैं जो लोग बिल्कुल अनपढ़ हैं। इसमें भाषा, विधि-विधान आदि नहीं होते। यह केवल भावप्रधान है। जिस किसी भाषा में जैसे भाव हों वैसे अपने पूज्य इष्ट के चरणों में अर्पित कर अपनी प्रार्थना को बोल देना व गा लेना या मौन-पूर्वक पूर्ण समर्पण कर देना ही निरालम्व प्रार्थना है। जिसे भगवान् ने कहा —

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।। गी॰ १८/६६

ईश्वरप्राणिधानाद्वा ।।· पा॰यो॰सू॰१/२३ ।।

सालम्ब प्रार्थना वह है जिसमें शास्त्र अथवा परम्परा का आश्रय लेकर आत्मनिवेदन करते हैं। इसके लिए भाषा-विज्ञान की अपेक्षा है। यह तीन प्रकार का है — वैदिक, स्मार्त, लौकिक।

वैदिक प्रार्थना करने से पहले उन वेदमन्त्रों का उच्चारण सीखकर उनका ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति, कीलक एवं विनियोग को जान लेना होगा। तत्पश्चात् नित्य स्नानादि से निवृत्त होकर शुद्ध आसन पर बैठकर विशुद्ध भावना से ऋष्यादि न्यास, हृदयाद्यङ्गन्यास एवं करन्यास (न्यासत्रय) करके मन्त्र के देवता का ध्यान करना। यदि ध्यान श्लोक हो तो उसके अर्थानुसार अपने हृदय में उसकी मूर्ति की कल्पना कर उसके चरणों में अपने को समर्पित कर देना। तत्पश्चात् उन वेदमन्त्रों का २, ३, ५, ११, २१, ५१, १०८ आदि बार पाठ यथाशक्ति करना चाहिए। अन्त में अपने इष्ट के चरणों में उनकी प्रसन्नता के लिए अर्पण करना चाहिए।

वैदिक प्रार्थना के समान स्मार्त प्रार्थना भी *पुराण, रामायण, महाभारत* आदि धार्मिक वेद अविरुद्ध स्मृति ग्रन्थों में प्रसिद्ध हैं, जिनके प्रयोग से विभिन्न देवता, असुर, भक्त, अवतार पुरुषों ने फल प्राप्त किए थे।

लौकिक प्रार्थना उसे कहते हैं जो वेद या स्मृति में से नहीं है किन्तु पूर्णतया वेदविरुद्ध नहीं है। जैसे कि शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, माध्वाचार्य आदि द्वारा संस्कृत भाषा में लिखे गए स्त्रोत्रादि; सूरदास, तुलसीदास, कबीरदास, मीराबाई आदि द्वारा लौकिक भाषा में गाए सभी भजन आदि और प्रान्तीय भाषाओं में विभिन्न सन्त-साध्वियों के द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए गाए गए भजन को लौकिकी प्रार्थना कहते हैं। इसके प्रयोग में विधि-विधान का निर्णय परम्परा के अनुसार किया जाता है।

जपयोग

चित्त-शुद्धि की यह सर्वोत्तम साधना है। यद्यपि यह प्रार्थना से कठिन है तथापि कुछ तपस्या के साथ करने से यह शीघ्र फलदायी है। जप शब्द का अर्थ है "शब्द की आवृत्ति करना"। एक शब्द को लेकर चित्त में आवृत्ति करते हुए जीव ब्रह्मैक्यानुभूति की ओर आगे बढ़ने का नाम जपयोग है। इसके लिए दो चीजें अत्यन्त आवश्यक हैं — जप का मन्त्र और जपमाला।

मन्त्र कोई साधारण शब्द नहीं होता है बल्कि मन्त्र वह असाधारण शब्द है जिसके नाद से अन्तःकरण में छिपे संस्कार एवं वासनाओं की सफाई होती है और यह किसी ऋषि द्वारा अनुभूत सिद्ध शब्द होता है। इसलिए गुरु से प्राप्त करना अच्छा माना गया है। साधक के लिये वह मन्त्र उचित होगा जिसे उसका मन प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करे और श्रद्धा-भक्ति से युक्त होकर अनुष्ठान करे। प्रत्येक धर्म, पंथ, संप्रदाय में मान्यताओं के अनुसार, देवी-देवता आदि भेद से मन्त्र असंख्य हैं। इसलिए गुरु से अपने लिए योग्य मन्त्र का निर्णय कर दीक्षा द्वारा ग्रहण करना उचित है।

माला धागे में पिरोए गए १०८ मणियों की होती है। प्रत्येक मणि को जगत् बन्धन का प्रतीक ब्रह्मग्रन्थि नामक विशेष प्रकार की गांठ से बाँधा जाता है। इनसे (१०८ से) अतिरिक्त १०६ वीं मणि को माला के क्रम से बाहर लगाया जाता है, जिसे सुमेरु कहते हैं। यह जपते-जपते भटकते हुए मन को वापस जप में लाने व गिनती की सुविधा के लिए है। ११, २१, २७, ३३, ३६, ५४ दानों की माला भी विभिन्न प्रयोजन से बनाई जाती है। रुद्राक्ष, स्फटिक आदि अनेक प्रकार की माला विभिन्न प्रयोजन के लिए उपयोग की जाती हैं।

जप चार प्रकार से किया जाता है — लिखित, वैखरी, उपांशु और मानसिक। अत्यन्त चंचल मन वालों के लिए आरम्भ में लिखित जप करना उचित है। कलम से पुस्तक में अपने मन्त्र को सुन्दर छोटे अक्षरों में श्रद्धा-भक्ति एवं प्रेम भाव से मन्त्र के देवता का स्मरण करते हुए लिखने को लिखित जप कहते हैं। इससे जब इन्द्रियां कुछ शान्त होकर एकाग्र होने लगें तब वैखरी जप आरम्भ होता है। इसमें ध्यान के किसी आसन में बैठकर शरीर एवं मन को शिथिल छोड़ें। नेत्र बन्द कर लें। मन्त्र के देवना को मन से स्मरण करते हुए मन्त्र का स्पष्टतया मुँह से एकान्त में बैठकर उच्चारण करें। आवाज से उत्पन्न गूंज (नाद) पर ध्यान करें। यह वैखरी जप है। उसी प्रकार बैठे हुए मन्त्र का अस्पष्ट (अर्थात् दूसरों को न सुनाई दे) उच्चारण करना। तात्पर्य यह है कि दूसरों को होंठ हिलते हुए दिखने चाहिए किन्तु सुनाई न दे उसे अस्पष्ट उच्चारण कहा गया। अशुद्ध या अधूरे उच्चारण को नहीं। इस प्रकार मन्त्र जप करने का नाम उपांशु जप है। उक्त प्रकार से बैठे हुए मुँह बिल्कुल बन्द और

मुँह के भीतर जिह्वा भी न हिले किन्तु केवल मन से मन्त्र का जप करने को **मानसिक** जप कहते हैं। यह सर्वोत्कृष्ट विधि है।

अधम साधक लिखित जप करें। **मध्यम साधकों** के तीन भेद किए जाते हैं — (१) केवल वैखरी करने योग्य, (२) वैखरी और उपांशु करने योग्य, (३) तीनों को क्रम से १ माला वैखरी, दो माला उपांशु और तीन माला मानसिक। **उत्तम साधक** केवल मानसिक जप कर सकते हैं।

मन्त्र प्राप्ति के दिन से लेकर मरणपर्यन्त गुरु के निर्देशानुसार जपने को **नित्य जप** कहते हैं। गुरु के मार्गदर्शन में निश्चित संख्या को निश्चित अवधि में विधि-विधान से जप करने को **अनुष्ठान** कहते हैं। अनुष्ठान भी अनेक प्रकार के होते हैं। इसमें से **पुरश्चरण** कठिन किन्तु सर्वोत्कृष्ट है।

जप योग के अभ्यास के कुछ आवश्यक नियम यह हैं — (१) माला दूसरों को दिखाई नहीं देनी चाहिए इसलिए कपड़े से ढककर अथवा गोमुखी नाम से प्रसिद्ध झोली में रखकर प्रयोग करें। (२) सुमेरु को लांघना नहीं। (३) तर्जनी और कनिष्ठिका अंगुली से माला का स्पर्श न करें। (४) मन्त्र का उच्चारण स्पष्ट व शुद्ध हो। (५) गति सदा एक हो ताकि जप लयबद्ध रहे। (६) निष्काम भाव से करना है। (७) मन्त्र को गुप्त रखें, किसी को न बताएं। (८) एक स्थान, एक आसन और समय निश्चित हो तो उत्तम है तथापि २४ घण्टे मन से जपते रह सकते हैं। (६) पूर्व यां उत्तर को मुख करके जपना अधिक प्रभावशाली होता है। (१०) जप के अर्थ का चिन्तन व देवता का ध्यान सदा करते रहना चाहिए। पातञ्जल योगसूत्र (१/२७ में) — **तज्जपस्तदर्थभावनञ्च** में ऐसा कहा गया है।

योग मार्ग के मुख्य तीन प्रतिबन्धक चंचलता, मूढ़ता एवं अपवित्रता से युक्त मन है। मन के इन तीनों मैलों को साफ करना ही जप का लक्ष्य होना चाहिए। फलतः चित्तशुद्धि होगी जिससे आत्मानुभूति के योग्य बुद्धि होगी।

अजपाजप

जप-मन्त्र का निरन्तर पुनरुच्चारण करते रहने का नाम जप है। वही अजप हो जाता है जब मन के विशेष प्रयत्न के बिना मन्त्र का स्वतः चित्त में निरंतर स्मरण होता रहे। अतः जप का अजप हृदय से निकलता है जबकि जप मन से होता है।

अजपाजप स्वयं में एक पूर्ण साधना है। यदि यह होने लगे और आप उसके प्रति सजग हों तो निश्चित रूप से व्यक्ति शीघ्र ही उच्च कोटि का ध्यानाभ्यासी हो जाएगा। इससे सुषुप्त वासनाएं, इच्छाएं, भय आदि बाहर निकल आते हैं और चित्तशुद्धि अनायास होती है। जब संस्कार उभर आते हैं तब उनसे प्रेरित होकर कुछ न करके,

उन्हें एक दृश्य के रूप में स्वयं द्रष्टा बनकर देखना होगा, अन्यथा यह पतन का कारण हो सकता है। इससे मन एवं शरीर के अनेकों रोग जड़ से मिट जाते हैं।

इसके अभ्यास में यद्यपि "सोऽहं" मन्त्र का प्रयोग करने की परम्परा है तथापि किसी भी मंत्र का उपयोग कर सकते हैं।

आरम्भ में साधक आते-जाते हुए श्वास को अनुभव करें। इस क्रिया को ध्यान के आसन में बैठकर करें। श्वास लेते हुए अनुभव करें कि उदर में भरते हुए श्वास ऊपर उठ रहा है और श्वास छोड़ते हुए अनुभव करें कि छाती प्रदेश से निकलते हुए नीचे की ओर खाली होता हुआ जा रहा है। कुछ समय केवल श्वास पर जागरूक रहने के बाद दूसरी अवस्था में पूरक के साथ "सो" का और रेचक के साथ "हं" नाद का अनुभव करें। प्रत्येक श्वास में ऐसा अभ्यास करें। एक महीने के अभ्यास के पश्चात् उक्त क्रिया को उल्टा "हं" से रेचक और "सो" से पूरक करें। अर्थात् पहले "सोहं" था अब तीसरी अवस्था में "हंसो" का अभ्यास करना है। चौथी अवस्था में लगातार करना है — सो-हं सो-हं.....। तात्पर्य यह कि सो हं और हं सो में कहीं व्यवधान न रहे, लगातार चलता रहे। पांचवीं अवस्था खेचरी मुद्रा और उज्जयी प्राणायाम के साथ करनी है। छठी अवस्था में प्राण के साथ चेतना को चक्रों पर घुमाइए। हो सके तो प्राण को उसके नाद के साथ रोककर प्रत्येक चक्र पर ध्यान करें। अन्तिम अवस्था में अब जो कर रहे थे और अनुभव हो रहा था उस पूरी क्रिया को आप स्वतः होता हुआ एक दृश्य के रूप में देखते रहें। ध्यान रखें कि सोना नहीं बल्कि पूर्णतया सजग रहकर द्रष्टृभाव में स्थिर रहना है।

जब ऐसे लगातार कुछ समय होने लगेगा, व्यक्ति उच्च कोटि के ध्यान में प्रवेश कर समाधि का अनुभव करेगा।

अध्याय १०

त्राटक विज्ञान

चित्तशुद्धि के लिए इन्द्रियों एवं मन को अन्तर्मुख करना आवश्यक है। अतः इसके लिए स्थूल से सूक्ष्म तथा बाहर से अन्दर की ओर बढ़ने के लिए योगनिद्रा के समान त्राटक भी एक अत्यन्त विलक्षण आवश्यक क्रिया है। यद्यपि योगनिद्रा प्रत्याहार है और त्राटक धारणा है। तथापि यह प्रत्याहार का अन्तिम रूप और धारणा का आरम्भिक रूप होने से एक अन्तराल प्रक्रिया है, दोनों की कड़ी कहा जाता है।

यह दो प्रकार का है — बाह्य एवं अन्तः। त्राटक शब्द का अर्थ है वस्तु को स्थिर दृष्टि से देखना। बाह्य त्राटक में नेत्र खुले रहेंगे किन्तु पलकें स्थिर होंगी, इसी प्रकार अन्तःत्राटक में नेत्र बन्द रहेंगे किन्तु पुतलियां स्थिर होंगी। बाह्य त्राटक में अनेक दृश्य बिन्दु हो सकते हैं — दीपकादि की ज्योति, इष्टदेव व गुरुदेव की मूर्ति या छायाचित्र (फोटो), शीशे पर अपना प्रतिबिम्ब, खिला हुआ अपना प्रिय फूल, किसी पेड़ का पत्ता या फल, कागज पर काला बिन्दु या लाल बिन्दु, ऊँ पर, तत्त्वों के यन्त्र, चक्रों का चित्र, सूर्योदय, चन्द्रोदय, तारा, जल की धारा, स्थिर जल, पहाड़, खुला आकाश, प्राकृतिक दृश्य इत्यादि।

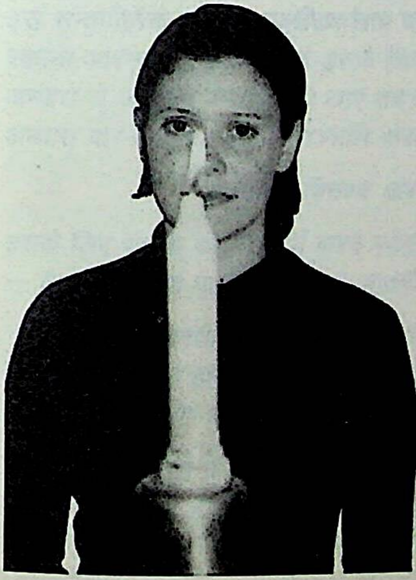

त्राटक

अन्तरंग त्राटक या अन्तःत्राटक थकी आँखों को बन्द करने से अपने आप होने लगता है। इसमें आप जो

बाहर देख रहे थे वही भीतर दीखने लगता है। आरम्भिक स्थिति में यह भी ठीक है। किन्तु अभ्यास बाह्य त्राटक निरपेक्ष होना चाहिए। अन्तः त्राटक का दृग्बिन्दु – चक्र, भृकुटि, पंच तत्त्व, विचार तरंग, श्वास, ऊँ आदि हो सकते हैं।

लाभ

यद्यपि त्राटक सिद्धियों का दाता है तथापि साधक को सिद्धियों के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। चित्तशुद्धि को लक्ष्य बनाकर मुक्तिपर्यन्त जाने के लिये सोचना चाहिए। नेत्र की दृष्टि स्वच्छ, तीव्र एवं दोषरहित होती है। तीसरा नेत्र क्रियाशील होने से दिव्य दृष्टि की उपलब्धि होती है। एकाग्रता, इच्छा शक्ति एवं आत्मबल का विकास होता है। मन के विकार साफ होने लगते हैं तो चित्त के संस्कार सामने आते हैं, जिससे साधना तय करना सुलभ होगा। मस्तिष्क के सुप्तशक्ति केन्द्र जाग्रत् होने से बुद्धि तीव्र होगी। सम्मोहन व आकर्षण शक्ति का उदय होता है। दूसरों के मन को पढ़ने की सामर्थ्य प्राप्त होती है।

ध्यान इस बात का रखना आवश्यक है कि जिस दृश्य पर त्राटक कर रहे हैं वह स्वच्छ एवं निर्विकार हो तथा उसको देखने से राग-द्वेष आदि जाग्रत् न हों अन्यथा उसके समग्र-दोष त्राटक में आएंगे। आँखों पर जोर न पड़े तथा क्रिया समाप्त होने पर कुछ क्षण बाद स्वच्छ ठण्डे जल से धोएं। गर्मी में कम अभ्यास करें किन्तु सर्दी में यथाशक्ति कर सकते हैं। दृष्टि दोष वाले व्यक्ति कम समय करें।

अध्याय ११

धारणा विज्ञान

प्रस्तावना

प्रत्याहार के तीन अध्यायों (योगनिद्रा, प्रार्थनादि और त्राटक) एवं उसके उपयोगी विवेक और वैराग्य सम्बन्धी दो अध्यायों (निष्काम कर्मयोग और युक्ताहार) के पश्चात् अब धारणा सम्बन्धी एक नया अध्याय आरम्भ होता है।

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मन माहि ।
मनुआ तो चहुं दिशि फिरै, यह तो सुमिरन नाहि ।।

इस सन्तोक्ति के अनुसार, जब तक मन को स्थिर नहीं किया जाता है तब तक साधना आरम्भ नहीं होती। अतः इसके लिए विवेक और वैराग्यपूर्वक प्रत्याहार के अभ्यास से जब मन अन्तर्मुख हो जाए तब प्रथमतः मन को एक देश में बाँधने का अभ्यास करना होगा। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं —

देशबन्धः चित्तस्य धारणा ।। ३/२ ।।

इसके लिए साधक को दो कार्य करने पड़ेंगे। जिसे दो खण्डों में हम विचार करेंगे — (क) चिदाकाश धारणा और (ख) अन्तर्मौन।

चिदाकाश धारणा के योग्य मन को बनाने के लिए साधक को बाह्यपंचधारणा का अभ्यास करना होगा। वे हैं — पार्थिव धारणा, जलीय धारणा, आग्नेय धारणा, वायवीय धारणा और ध्वनि धारणा।

पार्थिव धारणा में ऊँ का चित्र अथवा देवता, गुरु, श्रेष्ठ महापुरुष, फूल फल आदि आपको प्रिय लगने वाली वस्तुओं पर आँख को खुली रखते हुए मन को स्थिर करना है।

जलीय धारणा में किसी नदी, झरना, तालाबादि के तट पर बहते हुए जल अथवा स्थिर जल में दृष्टि करके मन को स्थिर करना है।

आग्नेय धारणा त्राटक को ही कहते हैं।

वायवीय धारणा नासिकाग्र दृष्टि करते हुए श्वास पर मन को स्थिर करना है।

ध्वनि धारणा में किसी ध्वनि विशेष पर जैसे ऊँ की ध्वनि, संगीत, इष्ट बाजे की ध्वनि पर मन को स्थिर करना है।

जब इस पंचतत्त्वीय बाह्य धारणा में आप दक्षता पा लेंगे तब आप आन्तरिक धारणा जिसे चिदाकाश धारणा कहते हैं, उसका अभ्यास आरम्भ करें।

चिदाकाश धारणा

जब मन पूर्व में कहे अभ्यासों के द्वारा इन्द्रियों के सहित अन्तर्मुख हो जाता है तब उसे किसी एक वस्तु में बांधने का नाम धारणा है। अन्तर्मुख करना प्रत्याहार है।

पूर्व अध्यायों में कहे योगनिद्रा, प्रार्थना, जप और अजपाजप एवं त्राटक विज्ञान ये सब आरम्भिक अवस्थएं प्रत्याहार की साधना हैं। अन्तिम अवस्था यानी चक्र आदि पर टिकना व द्रष्टृभाव में स्थिर होने की विधि ही धारणा की साधना है। अतः प्रत्याहार और धारणा क्रमशः होते हैं जो कि व्यक्ति को अन्त में ध्यान समाधि के योग्य बनाते हैं।

चिदाकाश धारणा के दो प्रकार हैं — प्रथमः अन्तःदर्शन और दूसरा चिदाकाश धारणा।

अन्तःदर्शन के अभ्यास में आप जिन क्रियाओं को बाहर करते हैं उन्हें भीतर में करते हुए देखना है जैसे कि स्वप्न में। लेकिन यह याद रखना है कि "मैं सोकर स्वप्न नहीं देख रहा हूं, अपितु मैं मानसिक रूप से करता हुआ देख रहा हूँ।" इस अभ्यास में प्रातः उठने से लेकर सोने तक की दैनिक क्रिया को देखना है। मित्रादि के घर जाने का दृश्य उसी प्रकार देखना जैसे हुआ था या फिर मकान, दुकान, वाहन, लोग आदि देखना। मन्दिर और उसकी हर चीज, पूजारी, बर्तनादि, अभिषेक, कर्म, अर्चना क्रिया, आरती, लोग, प्रसाद वितरण आदि दृश्य देखना। किसी यात्रा — बस या ट्रेन द्वारा, रास्ते की सभी चीजें, रुके स्टेशन और वहां का चहल-पहल आदि दृश्य। प्राकृतिक दृश्य व घटनाएं। नक्षत्र, तारा, ग्रह, सूर्य अथवा चन्द्रादि युक्त आकाश मण्डल। विभिन्न रंग एवं आकृतियां जिन्हें आपने अपने जीवन में अनुभव किया हो। स्कूल व कॉलेज का दृश्य, वहां आपकी कक्षा, कक्षा में अध्यापक द्वारा बोर्ड पर लिखे गणितादि विषय को देखना।

इसकी अन्तिम अवस्था में स्वेच्छापूर्वक वस्तुओं का नाम लेकर, उनका पूर्णरूपेण अनुभव करना है। इससे स्मृति शक्ति बढ़ेगी और अग्रिम अभ्यास के योग्य होगा।

चिदाकाश धारणा — आज्ञा-चक्र के स्थान में जो अन्धकारमय काला पर्दा आँख

बन्द करने पर दिखाई देता है उसे चिदाकाश कहते हैं। इस आकाश में मन को स्थिर करके उस स्थान में निम्न प्रकार के दृश्यों को अनुभव करने का नाम चिदाकाश धारणा है।

किसी ध्यान के आसन में बैठिए। आँखें बन्द एवं हाथ ज्ञान व चिन्मुद्रा में हों। आसपास की आवाजों पर ध्यान दें। फिर अपने शरीर को मन से देखें। पूरे शरीर को जमीन पर बैठा हुआ देखें। उस शरीर में चलते हुए श्वास पर चित्त को स्थिर कीजिए। अब चिदाकाश में चित्त को स्थिर करें। उसका कोई आकार नहीं है फिर भी जब लगातार उसे देखने लगोगे तो उसमें विभिन्न प्रकार के रंग दिखाई देंगे, उन्हें देखते रहो। अब चिदाकाश को केवल भ्रूमध्य में नहीं अपितु सर्वत्र व्यापकरूपेण देखने की कोशिश करें। उसमें दिखाई दे रहे रंगों का नाम मन से ले सकते हैं। उसी व्यापक चिदाकाश में अपने शरीर को चैतन्य रूप में देखें। उसमें ॐ की ध्वनि हो रही है, उस पर ध्यान दें। इसी प्रकार दृश्य को देखते रहें। जब समाप्त करना हो तो श्वास, शरीर, चारों तरफ की आवाज पर चित्त को क्रम से लाकर उठना।

अन्तर्मौन

मौन शब्द का अर्थ है बाहर और भीतर से शान्त होना। अपना स्वभाव कितना शान्त है — इसका अनुभव करने के लिए बाहर और भीतर जो मन और इन्द्रियों की खलबली मची हुई है, उससे अलग होना होगा। ऐसे होने का नाम अन्तर्मौन है। इस साधना में व्यक्ति अपने द्रष्टृभाव का अनुभव कर लेता है जो कि ध्यान के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

अन्तर्मौन साधना को तीन चरणों में किया जा सकता है — (१) वाक्संयम, (२) वाङ्मौन और (३) अन्तर्मौन।

अन्तर्मौन का पहला चरण है वाक्संयम। मन की शान्ति को भंग करके अशान्त, तनावयुक्त एवं विक्षेप कर चिन्ताग्रस्त कर देते हैं वाणी, आँख और कान। इन तीनों में से वाणी सबसे ज्यादा अशान्ति का कारण है। इसलिए इसका संयम करने से शेष दो का संयम अपने आप होने लगता है। वाक्संयम का अभ्यास करने के लिए सर्वप्रथम आपको कम बोलने की आदत डालनी पड़ेगी। तत्पश्चात् क्रमशः इनका ध्यान रखें — अपनी बात पर बल न देना, सोच-समझकर कहना, गर्मागर्मी की नौबत न आने देना, आलोचनाओं में विशेषतः निंदापरक बातों में भाग न लेना व स्वयं ऐसे न करना, विकट परिस्थितियों में घबराकर चंचल न होना, दूसरों को चोट व अपमानित करने वाली बात न करना और अन्ततः वाणी को मधुर बनाए रखने की कोशिश करना। अर्थात् सभी के हित एवं मान के योग्य बातों को प्रकट करने के लिए वाणी का प्रयोग करना ही वाक्संयम है।

अन्तर्मौन का दूसरा चरण है **वाङ्मौन**। शास्त्रकार कहते हैं— **मौनं सर्वार्थ-साधनम्**। अतः वाणी को पूर्णतया विश्राम देना वाङ्मौन है। जब जीव मौन होता है तब ईश्वर की वाणी मुखरित होती है। इससे विचारशक्ति, स्मृतिशक्ति, मेधाशक्ति, प्रज्ञाशक्ति आदि को बल मिलता है। वह दूसरों के मन को पढ़ सकता है। वह मौनाभ्यास से अपने मन का आवेग, चित्त के संस्कार एवं वासनाओं को जान लेता है, उन्हें रोक सकता है और शास्त्र में कहे साधनों से बदल भी सकता है। फलतः ज्ञान का अर्जन, शक्ति का सृजन, समस्या-समाधान की क्षमता, वाणी के अत्यंत संयमित प्रयोग से दूसरों पर प्रभाव डालना आदि गुणों की खान बनता है साधक।

अन्तर्मौन के तीसरे चरण को पांच अवस्थाओं में विभक्त कर अभ्यास किया जाता है।

प्रथम अवस्था में आप बाहर में हो रही घटनाओं एवं शब्दों के प्रति सजग रहेंगे, देखते एवं सुनते हुए भी किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं करेंगे। एक अंधा, गूंगा और बहरे के समान मूकद्रष्टा बने रहना है।

दूसरी अवस्था में आप आँख-कान आदि की बहिर्वृत्ति को रोककर अर्थात् बन्द करके केवल मन को देखते रहें। वह क्या सोच रहा है, उसमें हो रही प्रतिक्रियाएं, संस्कारों की वजह से उसमें उत्पन्न दृश्य एवं विचारों की धारा को देखते रहें। आप उनमें रमण कर अपने को भूलें नहीं। मन के समस्त क्रिया-कलापों का द्रष्टा बने रहना है।

तीसरी अवस्था में आप पूर्व में कही दोनों अवस्थाओं को बारी-बारी से करेंगे। अर्थात् बाह्य सजगता और आन्तरिक सजगता का अभ्यास करना।

चौथी अवस्था में निःशब्द और निर्जन स्थान में बैठकर स्वयं मन से बाहर और भीतर दृश्यों को बारी-बारी से पैदा करके उन्हें देखना है। इसे शास्त्रीय भाषा में मनोराज्य कहते हैं। यद्यपि मनोराज्य को ध्यान व समाधि का सबसे बड़ा प्रतिबन्धक माना गया है क्योंकि उसमें व्यक्ति अपनी सुध-बुध खोकर बह जाता है और व्यर्थ में समयादि को गंवाता है तथापि अन्तर्मौन में दृश्य निर्माण करता तो है किन्तु उसमें बहता नहीं। इसी भेद के कारण यह साधना है बाधक नहीं।

पांचवीं अवस्था में मन को पूर्णतया शान्त करना है। उसकी वृत्ति को विचार एवं दृश्य से रहित चैतन्य आकार अर्थात् एक दिव्य प्रकाश के रूप में अनुभव करना। यह मन की स्तब्ध-शून्य अवस्था है। यह बेहोशी के समान है। फर्क इतना है कि बेहोशी में व्यक्ति सजग नहीं रहता है किन्तु अन्तर्मौन में मन स्तब्ध एवं शून्य अवस्था में भी सजगता अनुभव करता है।

जब साधक इस साधना में सफल हो जाए तब उसका मन ध्यान के योग्य होता है।

अध्याय १२

ध्यान विज्ञान

प्रस्तावना

ध्यानं निर्विषयं मनः इस शास्त्रोक्ति के अनुसार संसार के पदार्थों से मन को हटाकर अपने स्वरूप में लगाना ध्यान और स्वरूप में स्थिर होना समाधि है। इसलिए महर्षि पतञ्जलि कहते हैं –

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानं ।। ३/२ ।।

और

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानं ।।

यो.सू. १/२

योगी याज्ञवल्क्य भी कहते हैं –

ध्यानमात्मस्वरूपस्य वेदनं मनसः खलु ।। ६/२ ।।

और

समाधि समतावस्था जीवस्य परमात्मनोः।
ब्रह्मण्येव स्थितिर्या सा समाधिः प्रत्यगात्मनः ।।१०/२ ।।

अतः ध्यानाभ्यास के बिना समाधि नहीं हो सकती और समाधि के बिना मोक्ष नहीं।

यद्यपि पशु, पक्षी, मनुष्य आदि सभी ध्यान करते हैं। इसलिए योगी याज्ञवल्क्य कहते हैं –

ध्यानमेव हि जन्तूनां कारणं बन्धमोक्षयोः ।।१०/२ ।।

और भगवान भी कहते है –

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।।२/६२ ।।

तथापि कठोपनिषद् में कहा है –

कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षद् आवृत्तचक्षुरमृतत्त्वमिच्छन्
।। २/१/१ ।।

अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि इस लोक से लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्त सकल पद, ऐश्वर्यादि भोग्य पदार्थों से विरक्त होकर जब साधक प्रत्याहार के अभ्यास से अन्तर्मुख इन्द्रियों के साथ मन को परमात्म स्वरूप में धारणा द्वारा स्थापित करता है तत्पश्चात् उस परमात्मस्वरूप को अपने से अभिन्नरूप से अनुभव करने के लिये ध्यान का अभ्यास आरम्भ करना चाहिए। इसलिए भगवान् कहते हैं –

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यत्तचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ।। ६/१६ ।।

लेकिन यह आसानी से संभव नहीं। क्योंकि मन अति चंचल है, अर्जुन स्वीकार करता है –

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथी बलवद्दृढम् ।। ७/३४ ।।

तब जवाब में भगवान् कहते हैं –

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।। ६/३५।।

और महर्षि पतञ्जलि भी कहते हैं –

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।। १/१२ ।।

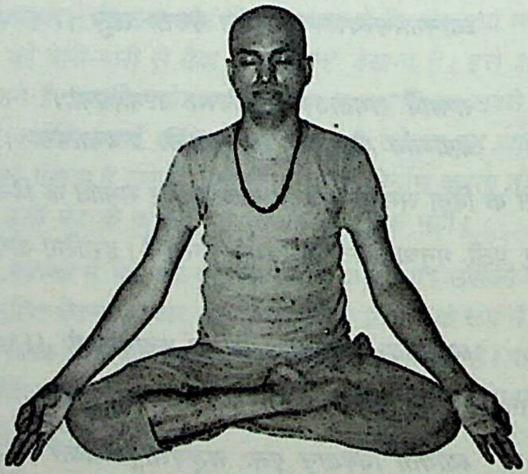

ध्यान विज्ञान

ध्यानाभ्यास आरम्भ करने के लिए आवश्यक निम्न बातों के प्रति पूर्णतया जागरूक रहना होगा –

१. मन का मैल हटाकर विचार तरंगों को शान्त करके मन के आवरण (मोह) को मिटाकर मन को स्थिर करना।

२. श्रद्धा और दृढ़ विश्वास को कायम रखना।

३. समर्पण भाव अर्थात् तत्परता और इन्द्रियों पर पूरा संयम। क्योंकि अन्तरंग साधन ध्यान की सामग्री के विषय में भगवान कहते हैं –

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।। ४/३६ ।।

योग सूत्रकार भी कहते हैं –

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः ।। १/१४ ।।

४. नित्य और निरन्तर करना चाहिए।

५. एक समय, एक स्थान, एक आसन, एक इष्ट, एक मंत्र, एक गुरु, एक विधि में निष्ठा बनाए रखना आवश्यक है।

६. प्राणायाम के पश्चात् ही ध्यान करना चाहिए।

७. बैठते ही ध्यान की प्रक्रिया शुरू न करें। कम-से-कम पांच मिनट शान्त बैठें। शीघ्र सफलता की आकांक्षा छोड़कर धैर्यपूर्वक स्वाभाविक परिणाम की प्रतीक्षा करनी चाहिए। बीच में होने वाली अनुभूतियों का चिन्तन करना व दूसरों के समक्ष बताकर विचार करना अनावश्यक ही नहीं बल्कि प्रगति में बाधक भी है।

८. ध्यान की सफलता के लिए अपनी दिनचर्या को शुद्ध एवं पवित्र रखना चाहिए। काया, वाचा, मनसा किसी तरह के पाप के प्रति सावधान रहना चाहिए।

९. यम, नियम, युक्ताहार एवं संयम ध्यान की आधारशिलाएं हैं।

ध्यान में आने वाली बाधाएं और उनका निदान निम्न प्रकार है –

(क) *निद्रा व आलस्य* – अल्प भोजन करें, रीढ़ सीधी रखें और प्राणायाम बढ़ाएं। भोजन के बाद टहलना उचित होगा।

(ख) *कार्य की अधिकता व चिन्ता* – अनावश्यक कार्य को घटाएं, अन्यों

के साथ बांट लें, नियमित एवं योजनाबद्ध करें और कुछ विषयों में तो भगवान् भरोसे छोड़ें।

(ग) *समय, वस्तु, व्यक्ति आदि का दुरुपयोग* – सावधानी, सतर्कता, सजगता के साथ सदुपयोग की भावना से व्यवहार करना।

(घ) *विषयों का अधिक संग एवं आसक्ति* – विषयों की नश्वरता के चिन्तन के साथ उदासीन भावना से व्यवहार करना।

(ङ) *कुसंग और लोभ* – त्यागना ही उचित है।

(च) *राग-द्वेष वृत्ति* – आसक्ति रहित होकर समदृष्टि रखते हुए व्यवहार करना।

(छ) *तनाव* – शिथिलीकरण क्रियाएं, शुभ विचारना, फलाकांक्षा रहित परोपकार, निश्चित समय पर निश्चित अवधि तक ध्यान करना, मन्दिर आदि में जाकर ईश्वरार्पण करना।

(ज) *परदोष चिन्तन, बदला-निन्दा आदि वृत्ति* – क्षमावृत्ति के साथ सहिष्णुता को बढ़ाना, मौन का अभ्यास और उपेक्षावृत्ति।

(झ) *अस्वस्थ शरीर* – आसन, प्राणायाम, षट्कर्म का अभ्यास।

(ञ) *रुकावट व व्यवधान* – धैर्य एवं संयम रखें ।

ध्यान की कुछ सरल विधियों को आरम्भिक साधक के दृष्टिकोण से लेकर उच्च कोटि तक के साधक के लिए संक्षेप में दर्शाया जा रहा है।

दिनचर्या दर्शन (प्रथम चरण)

रात में सोने से पहले बिस्तर पर ही करना है। ध्यान के किसी आसन में बैठकर दिनभर जो भी कार्य प्रातः से सायं तक आपने किए हैं, उनका क्रमशः चिदाकाश में आँखें बंद करके अवलोकन करें। कार्य की समीक्षा भी करें। गलत हुए कार्यों को दोबारा न करने का अथवा सुधारने का संकल्प करें। सही हुए कार्यों को और अधिक प्रभावशाली ढंग से करने पर विचार करना चाहिए। जैसे कि क्रोध, लोभ, मोह, मात्सर्य, ईर्ष्या, द्वेष, झूठ, छल, कपट, ढोंग, ठगई आदि के बारे में संकल्प करें कि ऐसे नहीं करूंगा। काया, वाचा, मनसा दूसरे से क्षमा-याचना करके बिगड़ी को सुधारने का संकल्प करें। आवश्यकता पड़े तो मौन-व्रत आदि द्वारा अपने को आप स्वयं दण्डित कर लें। इन बातों (सत्संकल्पादि) पर ध्यान दें और उनके (क्रोधादि) त्यागने का संकल्प करें।

स्नानादि से निपटकर दैनिक योगाभ्यास के पश्चात् ध्यानपूर्वक किसी ध्यान के आसन में बैठकर दिनभर आपको जो कुछ भी करना है उन सकल कार्यों को आप कापी में लिखें। अब उन्हें करने का क्रम एवं समय आदि पर विचार कर लें। तत्पश्चात् कार्य की सफलता, सरलता एवं अधिक लाभ आदि गुणवत्ता के अनुसार अपनी पॉकेट डायरी में उन्हें लिख लें। रात्रि में किए संकल्पों को दुहरा लें। उन्हें निश्चय किए क्रम व ढंग से ही कार्यान्वित करें।

आपको अत्यन्त आश्चर्य होगा कि कुछ ही दिन में आप देखेंगे कि हर कार्य में आपको शत-प्रतिशत सफलता मिलेगी और आपका दैनिक जीवन तनाव रहित, सन्तोषमय एवं सुखप्रद होगा। जब ऐसे हो तब आपका मन आध्यात्मिक मार्ग में ध्यान के योग्य हो जाएगा।

विचार दर्शन

इस पर विचार अन्तर्मौन नाम से पूर्व अध्याय में कर चुके हैं। यह ध्यान में प्रवेश पाने की दूसरी सीढ़ी है।

मंत्र योग

इस पर विचार जपयोग एवं अजपाजप नाम से पांचवें अध्याय में किया गया है। यह ध्यान में प्रवेश करने की तीसरी सीढ़ी है।

श्वास ध्यान

प्रथम तीन ध्यान — दिनचर्या दर्शन, विचार दर्शन व मंत्र योग — के पश्चात् श्वास पर ध्यान करें। आँखें बन्द रहें। श्वास को थोड़ा गहरा बनाएं। जोर-जबरदस्ती न करें। आनन्दपूर्वक आते-जाते हुए गहरे श्वास पर अन्तर्दृष्टि बनाए रखें। साक्षीभाव से देखते रहें। श्वास की गति व मात्रा पर सजग होइए। किस नासिका छिद्र से कितना — दाएं से, बाएं से एवं दोनों से अर्थात् इड़ा, पिंगला व सुषुम्ना से — इस पर ध्यान दें। धीरे-धीरे कुछ दिन के उक्त अभ्यास के बाद यह देखें कि नासिका छिद्रों में श्वास कैसे आ व जा रही है। अर्थात् छिद्र के मध्य से, निचले भाग से, ऊपरी भाग से, दाहिने भाग से व बाएं भाग से अथवा घूमते हुआ तिरछी गति से। गति के अनुसार समझना होगा कि क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तत्त्व का संचार हो रहा है। निम्न तालिका के अनुसार अनुभव करें —

श्वास गति	तत्त्व	रसस्वाद	स्वर की लम्बाई	समय क्षणों में	ज्ञानेन्द्रिय पर प्रभाव	कर्मेन्द्रिय पर प्रभाव	बीज मन्त्र
मध्य	पृथ्वी	कस्सा	१२ अंगुल	२०	घ्राण	गुदा	लं
नीचे	जल	मीठा	१६	१६	रसन	लिंग	वं
ऊपर	अग्नि	कड़वा	४	१२	चक्षु	(पैर) नाभि	रं
बगल	वायु	खट्टा	८	८	त्वचा	(हाथ) हृदय	यं
तिरछी	आकाश	तीखा	२६	४	कान	वाक्	हं

इन सबका अनुभव होने व इन पर नियंत्रण पाने तक श्वास ध्यान क्रिया का अभ्यास करें।

सहज ध्यान

ध्यान के किसी आसन में बैठकर आँखें बन्द किए हुए पूर्वोक्त श्वास ध्यान यथासंभव करके ॐ का उच्चारण आरम्भ करें। कुछ समय मानसिक अजपाजप का अभ्यास करें। तत्पश्चात् भ्रूमध्य पर अन्तर्दृष्टि को केन्द्रित करके अपने सहज स्वभाव अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप का चिन्तन करें। अर्थात् अपने प्रशान्त अद्वैत सत् चित् आनन्द व ज्ञान तथा प्रकाशमय कूटस्थ स्वरूप का ध्यान करें। इसके लिए अपने को द्वन्द्वातीत स्वरूप समझें। अर्थात् ऐसे चिन्तन करें कि —

मुझमें कर्तृत्व-भोक्तृत्व नहीं अतः मैं कर्ता-भोक्ता नहीं हूँ। सुख-दुःख, राग-द्वेष, लाभ-हानि, जय-पराजय, यश-अपयश, मान-अपमान, ठण्ड-गरम, भूख-प्यास आदि सकल द्वन्द्व मन आदि भौतिक पदार्थों का धर्म है, मेरा नहीं। अतः मैं इन सबका साक्षी व द्रष्टा हूँ। मैं वह शुद्ध ब्रह्म ही हूं। मैं अमर आत्मा हूं। इसलिए जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि, जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति अवस्थाएं, शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध आदि सकल पदार्थ मन आदि भौतिक वस्तुओं का धर्म है। अतः मैं वस्तु-काल-देश से बन्धन को प्राप्त नहीं हो सकता हूं। मैं नित्य-शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला हूं। यही मेरा सहज स्वरूप है। ऐसी भावना के साथ यथासंभव समय चित्त की वृत्तियों को बनाए रखें तत्पश्चात् ॐ का उच्चारण व शान्तिपाठ करके उठें।

नादयोग

नाद शब्द का अर्थ है ध्वनि। लेकिन वास्तव में नाद चित्त गत चैतन्यता का प्रवाह है। यह सात अवस्थाओं को प्राप्त कर स्थूल रूप से इन्द्रिय का विषय होता है।

पहली अवस्था तो निर्गुण-निराकार विशुद्ध *ब्रह्म* ही है जोकी नादादि सात अवस्थाओं के प्राकट्य का आधारभूत मूल कारण चैतन्य है।

दूसरी अवस्था "ॐ" है जिसके तीन स्वरूप हैं — प्रथम नाद, दूसरा बिन्दु और तीसरा कला। इनमें से नाद ॐ की वह अवस्था है जिसमें सकल अभिधान-अभिधेय (वाच्य-वाचक, नाम-नामी) अभिन्न होकर अविद्यामय स्वरूप में होगा। इसे सगुण निराकार कहा गया है। समष्टि में इस रूप को मायोपाधिक *ईश्वर* एवं व्यष्टि में अविद्योपाधिक *प्राज्ञ* कहते हैं।

तीसरी अवस्था ॐ की बिन्दु अवस्था है। इसमें अभिधान-अभिधेय का अभेद रहते हुए सूक्ष्म रूप को प्राप्त किंया हुआ है। इसे सगुण साकार सूक्ष्म कहा है। समष्टि में इसे समस्त सूक्ष्म शरीरोपाधिक *अन्तर्यामी* (हिरण्यगर्भ) और व्यष्टि में व्यस्त सूक्ष्म शरीरोपाधिक *तैजस* कहते हैं।

चौथी अवस्था ॐ की कला अवस्था है। यही ॐ का स्थूल रूप है। इसे समष्टि में सकल स्थूलशरीरोपाधिक *विराट्* और विकलशरीरोपाधिक *विश्व* कहते हैं।

पाँचवीं अवस्था में ॐ को परा कहते हैं। यह शब्द की सुषुप्त अवस्था है अर्थात् मूलस्वरूप है, जो कि प्रत्येक के ह्रदय में व्याप्त है जिससे मन में प्रथम शब्द का साक्षात्कार होता है। जो क्रमेण बाहर प्रकट होता है।

छठी अवस्था को पश्यन्ति कहा जाता है। मन इसे अनुभव कर लेता है किन्तु श्रोत्रेन्द्रिय का विषय नहीं है। यह स्वप्न के समान शब्द की सूक्ष्म अवस्था है। मानस शब्द रूप है।

सातवीं अवस्था को मध्यमा कहते हैं, क्योंकि मन को स्पष्ट है और इन्द्रिय को अस्पष्ट है। स्वप्न और जाग्रत् की सन्धि के समान यह सूक्ष्म और स्थूल की अन्तराल अवस्था है। इसका अनुभव कान में अत्यन्त धीमी आवाज से फुसफुसाकर बोलने (whispering sound) के समान होता है।

आठवीं अवस्था को वैखरी कहते हैं, क्योंकि यह वाणी आदि से प्रकट हुए शब्द का स्थूल रूप है।

अतः नादयोग का मूल सिद्धान्त है *शब्द ब्रह्म,* जो कि *माण्डूक्योपनिषद्* में स्पष्ट वर्णित है। नादयोग की आरम्भ में विभिन्न शास्त्रीय वाद्ययन्त्रों की ध्वनि पर ध्यान किया जाता है। शास्त्रीय संगीत से युक्त शास्त्रीय-वाद्ययंत्रों से निष्पन्न ध्वनि आपके विभिन्न चक्रों का जागरण करती है। अतः गुरु के मार्गदर्शन में करने से ॐ की ध्वनि पर ध्यान करने की क्षमता एवं उक्त अवस्थाओं को अनुभव करते हुए जीव-ब्रह्मैक्यानुभूति की जा सकती है — यह शास्त्रीय मान्यता है।

दक्ष गुरु के अभाव में आप वीणा व बांसुरी की ध्वनि पर ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं। उसके पश्चात् आप किसी ध्यान के आसन में बैठकर आँखें बंद कर सकते हैं। रूई, अंगुली व अन्य किसी साधन से कानों को इस प्रकार बन्द कर लें कि आपको बाहर का कोई भी शब्द सुनाई न दे। अब भीतर के शब्द, धड़कन व अन्य गूँज पर ध्यान दें।

इस अभ्यास को कुछ समय करने के बाद पूर्ववत् बैठकर ॐ का उच्चारण करें। उसकी ध्वनि से भीतर में उत्पन्न गूँज पर ध्यान करें। कालक्रमेण स्वतः रास्ता खुलेगा।

भाव ध्यान

ध्यान के आसन में बैठकर चिदाकाश में अपने इष्ट, गुरु अथवा अन्य पूज्य आदर्शमय पुरुष के महान् भावों को ध्यान का विषय बनाएं। जैसे — करुणा, मुदित (प्रसन्नता), क्षमा, धैर्य, शान्ति, निर्भयता, वीरता, उदारता, दयालुता इत्यादि। इसके लिए आवश्यक हो तो उस गुण सम्बन्धी लीला व घटना अथवा किसी भक्त की जीवनी के वृत्तांत को स्मृतिपटल पर ला सकते हैं। अपनी कमजोरी एवं दुर्गुण के विपरीत गुणों पर ध्यान करने से वे सद्गुण आपके अन्दर भी विकसित होंगे।

भावातीत ध्यान

ध्यान के किसी आसन में बैठकर कुछ क्षण आँख बन्द करके मौन बैठें। अपने द्रष्टृभाव में स्थित होकर प्रयत्नपूर्वक विचार करें — क्या मैं कुछ विचार कर रहा हूं। यदि कर रहा हूं तो वे विचार क्या हैं। आप अपने को विचारों से अलग रखकर विचारधारा को देखने वाला बनें। विचारधारा के प्रत्येक भाव को देखते रहें। सजग रहते हुए दुहराते रहिए कि — "मैं यह दृश्य नहीं हूं, मैं इसका द्रष्टा हूं। मैं विचारक नहीं हूं, मैं विचारों का द्रष्टा हूं। मैं इन समस्त विचारों, दृश्यों व भावों का आधार हूं। मैं ॐ से लक्षित चैतन्य हूं। मैं ब्रह्म हूं।"

धीरे-धीरे अपनी मन की विचारधारा में दिखाई दे रहे दृश्यों की अन्तराल अवस्था में देदीप्यमान विशुद्ध प्रकाशमय स्वयं ज्योति आत्मा का ध्यान करें। ॐ का उच्चारण करें। श्वास के साथ रीढ़ की हड्डी में ऊपर से नीचे व नीचे से ऊपर सुषुम्ना नाड़ी में चलते प्राण पर ॐ की ध्वनि सहित ध्यान करें। ॐ की ध्वनि सर्वत्र व्यापक होती हुई अनुभव करें। अपनी वृत्तियों को ॐ की ध्वनि के साथ प्रकाशमयी किरणों के समान सर्वत्र व्याप्त होता हुआ अनुभव करें। उस व्यापक प्रकाश में यह ब्रह्माण्ड, उस ब्रह्माण्ड में पृथ्वी पर आपका स्थान, उस स्थान पर बैठे हुए शरीरादि को एक दृश्य के रूप में देखें। अपने आप को इन सबसे अलग, इन सबको सत्ता व चेतनता प्रदान करता हुआ व्यापक तत्त्व के रूप में देखें। ॐ की ध्वनि पर ध्यान लगातार बनाए रखें।

यथासम्भव करने के पश्चात् जब समाप्त करना हो तो आप यह अनुभव करें कि आप वह व्यापक स्वरूप से शरीर में प्रवेश कर रहे हैं। प्रत्येक अंग में चेतनता व श्वास पर ध्यान दें। शान्तिपाठ करके उठें।

उन्मनी क्रिया

ध्यान के किसी आसन में बैठकर कपालभाति प्राणायाम की पांच आवृत्ति का अभ्यास करें। बन्ध-त्रय के साथ अभ्यास करने के पश्चात् आँखें न खोलें। अब उज्जयी प्राणायाम का अभ्यास करें। मूलाधार से आज्ञा तक और आज्ञा से मूलाधार तक प्राण का संचरण ॐ के उच्चारण के साथ करें। आज्ञा से "ओ" (थोड़ा ही उच्चारण करें) निकलकर "म्" (लम्बी उच्चारण क्रिया) की ध्वनि मूलाधार तक पहुँच रही है — ऐसे अनुभव करें। ५२ बार करने के पश्चात् श्वास के साथ "सोऽहं" का प्रयोग करें। प्रत्येक १३ आवृत्ति के पश्चात् कुछ विश्राम ले सकते हैं। सोऽहं मंत्र के साथ भी ५२ बार करें। पुनः ॐ के साथ करें। तत्पश्चात् कुछ समय शान्त बैठे हुए समाप्त की गई ध्यान क्रिया की आन्तरिक प्रतिक्रिया पर सजग होकर प्रसन्नता, प्रफुल्लता एवं आनन्द का अनुभव करें। सोना व मनोरंजन नहीं करना है। सामान्य स्थिति में आने पर शान्तिपाठ करके आँखें खोलें।

प्राणविद्या

प्राण के बारे में प्राणायाम विज्ञान नामक प्रथम प्रकरण के चौथे अध्याय में वर्णन किया गया है। संक्षेप में श्वास के द्वारा शरीर के अन्दर प्रवेश करते हुए जीवन-शक्ति का नाम प्राण है। अतः श्वास द्वारा प्राण पर नियंत्रण पाकर उसका अध्यात्म व शारीरिक लाभ के लिए प्रयोग करने के लिए अनेक प्राणायामों का वर्णन किया गया है। प्राण सम्बन्धी सर्वोत्कृष्ट विज्ञान को प्राणविद्या कहते हैं। इससे स्वयं के ही नहीं बल्कि दूसरों के शारीरिक लाभ व आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रयोग करने की क्षमता प्राप्त करने हेतु विधि बताई जा रही है।

इसे आप बैठकर, पीठ के बल व पेट के बल लेटकर या करवट पर लेटकर भी कर सकते हैं। ध्यान रहे रीढ़ की हड्डी सीध में हो। इसका अभ्यास जब दाहिने नासिका छिद्र से श्वास चलता हो अर्थात् पिंगला नाड़ी विशेषरूप से चलती हो उसी समय करना है। इसका अभ्यास दो भाग में किया जाता है — *प्रथम* श्वास लेते हुए अनुभव करें कि मणिपूर-चक्र से अथवा पूरे शरीर के चर्म के प्रत्येक छिद्र से प्राणशक्ति आज्ञा-चक्र की ओर बह रही है और आज्ञा-चक्र में एकत्रित हो रही है। धीमि गति से श्वास छोड़ें। *दूसरी* बार श्वास लेते हुए अनुभव करें कि प्राणशक्ति नाड़ियों के द्वारा पूरे शरीर में व्याप्त हो रही है अथवा उस स्थान में जाते हुए अनुभव करें

जहाँ विशेष दर्दादि हो, रोग हो या आप ले जाना चाहते हों किसी भी लाभ के लिए। यदि दूसरों में प्रवाहित करना हो तो दाहिने हाथ के अंगूठे व अनामिका से अपेक्षित स्थान में जाते हुए अनुभव करें।

विधि — हल्की आँखें बन्द करके तैयार हो जाइए। आरामदायक स्थिति में रीढ़ को सीधा रखकर स्थिर हो जाइए। अब श्वास की गति के साथ प्राण की गति पर ध्यान दें। प्राण की गति चक्राकार वक्र होती है। यह ध्यान रखें। अतः प्राण मूलाधार से निकलकर दाहिनी ओर से घूमते हुए स्वाधिष्ठान पहुंचती है और स्वाधिष्ठान से निकलकर बाईं ओर से मणिपूर पहुंचती है। इसी प्रकार एक चक्र से दूसरे चक्र में पहुंचते हुए आज्ञा-चक्र में एकत्रित होगी। विपरीत दिशा से मूलाधार में लौटना है। यह प्राणशक्ति की जागरणपूर्वक संचालन क्रिया है।

जब इसके अभ्यास में आप दक्षता प्राप्त करेंगे आप प्राण की ऊर्ध्व गति को ही पूरक में करें और रेचक में अधोगति का अभ्यास न करके सामान्य ढंग से करें। साथ-साथ तरंग रहित विशुद्ध ध्वनि के साथ प्राण का ऊर्ध्वगमन होकर एकत्रित होते हुए क्रिया-कलाप पर सजग रहें। इस तरह आपकी चेतन शक्ति एवं प्राण शक्ति दोनों आज्ञा-चक्र में संचित हो रही हैं, ऐसा दुहराइए।

इसके पश्चात् कुंभक लगाकर बन्ध-त्रय के साथ कुण्डलिनी शक्ति को चेतन एवं प्राणशक्तियों के साथ आज्ञा-चक्र तक पहुंचती हुई अनुभव करें। बन्ध-त्रय को खोलकर कुम्भक छोड़ें, सामान्य रेचक करके शरीर को शिथिल करें। पुनः दुहराइए। आप पूरक और रेचक का अनुभव नाक से करता हुआ न करें। ऐसा अनुभव करें कि पूरे शरीर के प्रत्येक छिद्र से हो रहा है। प्रत्येक पूरक में प्राण की ऊर्ध्वगति के साथ चेतन एवं कुण्डलिनी शक्ति की ऊर्ध्वगति और प्रत्येक रेचक में शरीर के पूर्ण शिथिलीकरण का अनुभव करना है।

इसके बाद पूरक को लम्बा, गहरा व धीमा करें। अनुभव करें कि आप का श्वास पूरे शरीर से प्रवेश कर आज्ञा में प्राणशक्ति को एकत्रित कर, आज्ञा-चक्र से पुनः पूरे शरीर में प्राणशक्ति व्याप्त हो रही है। अब प्राण आज्ञा-चक्र में रीढ़ की हड्डी में स्थित चक्रों से होते हुए नहीं बल्कि सीधे शरीर के प्रत्येक छिद्र से पहुंच रही है। श्वसन-क्रिया उज्जयी प्राणायाम के साथ हो।

इससे और आगे बढ़ते हुए आप अनुभव करें कि आप पूरक आज्ञा-चक्र से कर रहे हैं न कि नासिका छिद्र अथवा शरीर के छिद्रों से। प्रत्येक पूरक में ऊर्जा शक्ति से शरीर परिपूरित होने का तथा प्रत्येक रेचक से शरीर का शिथिलीकरण अनुभव करें। अब इसी अवस्था में चेतन शक्ति और प्राणशक्ति को अनुभव करें। अर्थात् श्वसन-क्रिया, कल्पना शक्ति, दृक्शक्ति, भाव, विचार व संपूर्ण शरीर को चेतन व

प्राणशक्ति में तादात्म्यरूप से अनुभव करें। केवल किसी एक पर जागरूक न रहें। अपने शरीर को उसमें हो रही समस्त क्रिया के साथ एक गुब्बारे के समान अनुभव करें। शरीर का फूलना व सिकुड़ना पूरक एवं रेचक के साथ होगा, साथ ही प्राणशक्ति का वितरण और शिथिलीकरण भी।

इस अभ्यास में परिपक्वता आने पर स्वेच्छापूर्वक विभिन्न अंगों में प्राणशक्ति को प्रवाहित करने का अभ्यास करें। अन्त में पुनः पूरे शरीर में प्राण को पूरक से समवितरण करके रेचक से शिथिलीकरण करना है। तत्पश्चात् आँखें खोलें। प्राणध्यान की क्रिया का सदुपयोग करने व इसके अभ्यास में तीव्रता के लिए दक्ष गुरु की आवश्यकता है। स्वयं प्रयत्न न करें अन्यथा हानि की संभावना है।

कुण्डलिनी विद्या

यह ध्यान का सर्वोत्कृष्ट विज्ञान है। यह सर्वातिशय साधना है। इसका अभ्यास गुरु से दीक्षित होकर करना उचित है। यद्यपि १६ क्रियाओं का स्वतः अभ्यास कर सकते हैं जिनके नामों का उल्लेख यहां किया गया है। लेकिन इनके अतिरिक्त तीन क्रियाएं अत्यन्त गुप्त विद्या होने से उनके नाम को भी प्रकाशित नहीं कर रहा हूँ। इन्हें गुरु सीधे शिष्य से कराता है व अन्तिम अनुभूति में स्थापित करता है। आरम्भिक १६ क्रियाएं इस प्रकार हैं —

१. विपरीतकरणी मुद्रा, २. चक्रानुसन्धान, ३. नाद सञ्चालन, ४. पवन सञ्चालन, ५. शब्द सञ्चालन, ६. महामुद्रा, ७. महाभेदमुद्रा, ८. माण्डूकी क्रिया, ९. ताड़न क्रिया (इतने अभ्यास प्रत्याहार सिद्धि के लिए हैं), १०. नौमुखी मुद्रा, ११. शक्ति सञ्चालन, १२. शाम्भवी क्रिया, १३. अमृत पान, १४. चक्र भेदन, १५. सुषुम्ना दर्शन, १६. प्राणाहुति, १७. उत्थान, १८. स्वरूप दर्शन और १९. लिंग सञ्चालन (इतने अभ्यास धारणा सिद्धि के लिए हैं)। इसके पश्चात् की तीन क्रियाओं द्वारा ध्यान एवं समाधि की सिद्धि होती है।

इस विद्या के बारे में हमारे परम पूज्य गुरुदेव परमहंस स्वामी सत्यानन्द सरस्वतीजी द्वारा लिखे व बिहार योग विद्यालय, मुंगेर से प्रकाशित *कुण्डलिनी क्रिया*, *ध्यान–तंत्र के आलोक में*, इत्यादि ग्रन्थों का अवलोकन करें। विना योग्य कुण्डलिनी योग के प्रशिक्षक के अभ्यास करना उचित नहीं।

ध्यान सम्बन्धी कुछ विशेष बातें एवं ध्यान से लाभ

ध्यान सम्बन्धी कुछ विशेष बातें निम्न प्रकार हैं —

१. सर्वप्रथम बात यह है कि ध्यान कोई करने की चीज नहीं है। जैसे नींद स्वतः

होती है, की नहीं जाती। उसी प्रकार ध्यान को स्वतः होने वाली चीज समझें। फिर भी नींद होने के लिए बिस्तर, रजाई आदि साधन जुटाने के समान उक्त प्रक्रियाएं ध्यान होने के लिए केवल मन को तैयार करना है। अतः वास्तव में ध्यान वर्णनातीत वस्तु है; नींद, मीठा आदि के समान। इसे अनुभव से ही जाना जा सकता है।

२. ध्यान को चित्त की निर्विचार अवस्था या अपने आप का अनुसंधान या स्वयं का निष्पक्ष सचेत निरीक्षण अथवा सविचार से निर्विचार में स्थिर होना या आत्मानुसंधान की पहल इत्यादि रूप से यद्यपि वर्णन किया गया है तथापि वास्तव में ध्यानानुभाव का वर्णन नहीं हो सकता।

३. बाह्य जगत् के अनित्य सुख-शान्ति के साधनों से विरक्त हुए विना अन्तर्ज़गत् की खोज (ध्यान) नहीं हो सकती।

४. वास्तव में मनुष्य के लिए मन वरदान भी है व अभिशाप भी। इसी से वह चाहे तो मुक्त हो सकता है या संसारिक जाल में फंसा रह सकता है। अतः मन को मुक्ति की ओर लगाने के लिए ध्यानाभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। शास्त्रोक्ति है –

मन एव कारणं बन्धमोक्षयोः।

५. ध्यान अत्यन्त व्यावहारिक है। इसके लिए कोई प्रयोगशाला की जरूरत नहीं। शरीर ही प्रयोगशाला है जिसमें इन्द्रियां और मन उपकरण हैं। बहिर्वृत्ति स्वभाव को अन्तर्वृत्ति करना अर्थात् आत्मपरक विज्ञान ही ध्यान है।

६. ध्यान से मस्तिष्क की चार प्रकार की तरंगों में से (अल्फा, बीटा, थीटा और डेल्टा अर्थात् सत्त्व, रजः तमः और मिश्र) सर्वश्रेष्ठ सात्विक (अल्फा) तरंगें चलती हैं। फलतः तनावरहित सुख-शांति व आनन्द का अनुभव होता है।

७. विखण्डित एवं द्वन्द्वात्मक दृष्टि का अतिक्रमण करना ध्यान का लक्ष्य है।

ध्यान का परम लक्ष्य आत्मानुभूति हो या न हो तो भी ध्यानाभ्यासी को निम्न लाभ तो अवश्य प्राप्त होगें।

१. तनावग्रस्त मन, बुद्धि, चित्त एवं शरीर को स्थिरता एवं शांति मिलेगी।

२. सांसारिक घटनाओं से मन उद्विग्न नहीं होगा क्योंकि मन, इन्द्रियां, उनसे उत्पन्न दृश्य तथा समस्त अलौकिक शक्तियां योगी के अधीन होती हैं।

३. **योगः कर्मसु कौशलम्** – इस उक्ति के अनुसार प्रत्येक कार्य में समग्रता के साथ विवेक शक्ति सक्रिय होने से कार्य को पूर्ण सफलतापूर्वक करने की क्षमता प्राप्त होती है।

४. हमारे शरीर की पूरी रासायनिक प्रक्रिया एवं चयापचय सुचारू रूप से संपन्न होने लगते हैं।

५. उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, विक्षिप्तता, मानसिक चिन्ताजन्य रोग, अनिद्रा, स्नायु रोग, तनाव आदि मिट जाते हैं व नियंत्रित रहते हैं।

६. ध्यान द्वारा साधक जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति से परे तुरीयावस्था में पहुंचकर आनन्द व शाश्वत् सुख–शान्ति को प्राप्त कर सकता है।

७. ध्यान से समग्र चेतनता जागती है फलतः वह प्रत्येक कार्य को संयमित, व्यवस्थित, धैर्य एवं सावधानी से करके अत्यधिक लाभ प्राप्त कर लेता है।

८. समस्याओं का समाधान ध्यान के माध्यम से आसानी से प्राप्त होता है। क्रोधादि पर विजय प्राप्त होती है।

६. सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि वह कामवासना पर काबू पा लेता है जिससे उसकी मानसिक, शारीरिक व सांसारिक अनेकों समस्याएं स्वतः समाप्त हो जाती हैं।

१०. निर्लिप्तता एवं अल्पभोगिता आदि गुण आने से वह रसास्वाद (जिह्वा) पर विजय प्राप्त कर लेता है जो कि मोक्षमार्ग का प्रमुख द्वार है।

११. संक्षेप में कहा जा सकता है कि पवित्रता, प्रसन्नता, शान्ति, भक्ति, तृप्ति, श्रद्धा, सौम्यता, पूर्णता, समग्रता, दिव्यता, कर्त्तव्य परायणता, कार्यदक्षता, स्फूर्ति, उत्साह, अचंचलता, विवेक, प्रज्ञा-मेधा आदि उत्कृष्ट शक्ति, आत्म-बोध आदि सभी उत्कृष्ट गुणों का विकास होता है।

सूचना

हमने समाधि एवं उसके विभिन्न स्तर व प्रभेद और फल का वर्णन करने हेतु एक अध्याय और नहीं जोड़ा है। इसलिये शंका होगी की सभी अङ्ग का वर्णन के विना यह "पूर्ण योग" कैसे? समाधान साधना से साध्य स्वतः प्राप्त होता है। समाधि साध्य है। जगह-जगह पर उसका उल्लेख किया है, अतः साध्य का पृथक् वर्णन नहीं किया गया। समाधि साक्षात् स्वरूप का अनुभव ही है। ऊपर में कहे अनुसार जब ध्यान का

वर्णन करना असम्भव है तो समाधि का वर्णन कैसे करें? अच्छा होगा पाठक स्वयं साधक बनकर साधना द्वारा अनुभव कर लें और मुक्त हों।

तृतीय प्रकरण

तत्त्वविज्ञान प्रकरण

प्रस्तावना

साधक को शरीर एवं चित्त की शुद्धि पूर्वोक्त अभ्यासों से कर लेने के लिए व अभ्यास में उन्नति के साथ सफलता प्राप्त करने के लिए एवं अभ्यास को सही ढंग से क्रियान्वित करने के लिए कुछ यौगिक तत्त्वों का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। अन्यथा योग से रोग हो सकते हैं। तत्त्वविज्ञान का ज्ञान रहे तो अभ्यास से उत्पन्न विपरीत प्रतिक्रियाओं को समझ सकते हैं एवं तत्काल सुधार लिया जा सकता है। इसलिए शारीरिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण से यह प्रकरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

इस प्रकरण में तीन अध्याय हैं। वे इस प्रकार हैं – (१३) नाड़ी विज्ञान, (१४) चक्र विज्ञान और (१५) कुण्डलिनी विज्ञान।

इन तीनों अध्यायों की रचना *योगकुण्डलिन्युपनिषद्, जबालदर्शनोपनिषद्, योगचूड़ामण्युपनिषद्, योगशिखोपनिषद्, शाण्डिल्योपनिषद्, योगी याज्ञवल्क्य-संहिता,* आचार्य शंकरकृत *षट्चक्रनिरुपणं, पादुका पञ्चकं* और गोरक्षनाथ कृत *गोरक्षाष्टकम्,* इनके अतिरिक्त इस आधुनिक वैज्ञानिक युग के महान् योगी पूज्य गुरुदेव परमहंस स्वामी सत्यानन्द सरस्वतीजी और विश्व के सर्वश्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक व योगी हिरोशी मोटोयामा तथा व्यक्तिगत अनुभव से गूंथ कर की गई है।

प्रत्येक वस्तु के दो स्वरूप हैं। एक स्थूल अथवा व्यक्त और दूसरा सूक्ष्म अथवा अव्यक्त। इसी प्रकार नाड़ी, चक्र एवं कुण्डलिनी के भी व्यक्त स्वरूप स्नायु विशेष, ग्रन्थि विशेष एवं शक्ति विशेष हैं और इनका अव्यक्त स्वरूप सूक्ष्म, अदृश्य एवं आध्यात्मिक है। इन दोनों स्थूल-सूक्ष्म स्वरूपों का प्रमाण एवं अनुभव के आधार पर विचार को प्रकट किया जा रहा है। इन तीनों (नाड़ी, चक्र एवं कुण्डलिनी) का स्वरूप एवं इन्हें जाग्रत् कर प्रयोग करने की विधि पर भी संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

अध्याय १३

नाड़ी विज्ञान

हमारे स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीरों के परस्पर सम्बन्ध का कारण प्राण है। प्रत्येक शरीर में जो शक्ति केन्द्र हैं, उन्हें चक्र कहते हैं। इन शक्ति केन्द्रों से प्राण-प्रवाह के साधन को नाड़ी कहते हैं। सूक्ष्म शरीर में स्थित चक्रों के द्वारा स्थूल शरीर एवं कारण शरीर के बीच प्राण का आदान-प्रदान एवं परिवर्तन का साधन नाड़ी है अथवा धारा या प्रवाह को ही नाड़ी कहते हैं। स्थूल शरीर में स्नायु नलिकाएं, सूक्ष्म शरीर में सूक्ष्म अव्यक्त नाड़ियां एवं कारण शरीर में ओज के रूप में नाड़ी व्याप्त हैं। यद्यपि नाड़ियों की संख्या विभिन्न शास्त्रों में विभिन्न दृष्टिकोण से अलग-अलग कही गई है तथापि सर्वाधिक संख्या — ७२, ७२, १०, १०८; ३, ४०,०००; ७२,०००; १०१; ३६ और १८ / १८ नाड़ियों में भी ३ नाड़ी सुषुम्ना, इड़ा और पिंगला मुख्य हैं। आत्मदृष्टि के उपरान्त समस्त नाड़ियां प्रकाशधारा जैसे दिखती हैं।

नाड़ी प्रवाह के केन्द्र के बारे में दो सिद्धान्त हैं — एक कन्द स्थान और दूसरा नाभि चक्र।

जाबालदर्शनोपनिषद् के अनुसार वह केन्द्र मूलाधार से नौ अंगुल ऊपर है और उसका केन्द्र बिन्दु नाभि है। किन्तु योगी *याज्ञवल्क्य- संहिता* (जिसमें केवल १४ नाड़ियों की चर्चा की गई है) में कहा है —

कन्दस्थानं मनुष्याणां देहमध्यान्नवाङ्गुलम् ।
चतुरङ्गुलमुत्सेध आयामं च तथाविधम् ।।
अण्डाकृतिवदाकारं भूषितं चासृगादिभिः ।
चतुष्पदां च हृन्मध्यं द्विजानां तुन्दमध्यमम् ।। ४/१६-१७ ।।

अर्थात् मनुष्यादि दो पैर वालों में देह के मध्यम भाग नाभि से और चार पैर वाले पशु आदि में हृदय के मध्य भाग से नौ अंगुल ऊपर कन्द का स्थान है। वह चार अंगुल ऊँचा व चार अंगुल चौड़ा अण्डे की आकृति का है। यहीं से नाड़ियां ऊपर और नीचे की ओर जाती हैं।

नाड़ी स्थान तालिका

नाड़ी का नाम	जाबालदर्शनोपनिषद् और योगी याज्ञवल्क्य संहिता	योगचूड़ामन्युपनिषद्	योगशिखोपनिषद्	शाण्डिल्योपनिषद	गोरक्षाष्टकम्	षट्चक्रनिरूपणं	सिद्धसिद्धान्त पद्धतिः
१. सुषुम्ना	कन्दस्थान से ऊपर सिर के अग्रभाग तक	रीढ़ के मध्य में	मध्य में (इसे ब्रह्मनाड़ी कहा है)	मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक	मध्य	कन्द से शिरोअग्र तक	तालु से ब्रह्मरन्ध्र
२. इड़ा	सुषुम्ना के बाईं तरफ, बाईं नासिका तक	बाईं तरफ	नाभि चक्र से सुषुम्ना के बाएं तरफ विलम्बा में अन्त तक	सुषुम्ना के बाईं ओर बाईं नासिका तक	बायां	बायां	बाईं नासिका
३. पिंगला	सुषुम्ना के दाईं तरफ, दाईं नासिका तक	दाहिनी तरफ	नाभिचक्र से सुषुम्ना के दाएं तरफ, विलम्बा में अन्त तक	सुषुम्ना के दाईं ओर दाईं नासिका तक	दायां	दायां	दाईं नासिका
४. गान्धारी	इड़ा के पीछे, बाईं आँख के कोने में अन्त तक	बाईं आँख	नाभि चक्र से बाईं आँख तक	इड़ा के पीछे, बाईं आँख में अन्त	बाईं आँख	—	बायां कान
५. हस्तिजिह्व	इड़ा के पीछे, बाएं पैर के अंगूठाग्र तक	दाईं आँख	नाभि चक्र से दाईं आँख तक	—	दाईं आँख	—	दायां कान
६. पूषा	पिंगला के पीछे, दाईं आँख के कोने में अन्त तक	दायां कान	नाभि चक्र से दाएं कान तक	पिंगला के पीछे, दाईं आँख तक	दायां कान	—	दाईं आँख
७. यशस्विनी	पिंगला के पीछे, दाएं पैर के अंगुष्ठाग्र तक	बायां कान	—	दायां कान व बाएं पैर के अंगुष्ठाग्र तक	बायां कान	—	बाईं आँख
८. अलम्बुसा	कन्दस्थान और गुदा स्थान से ऊपर की ओर	मुँह	नाभि चक्र से बाएं कान तक	गुदा के ऊपर व नीचे की ओर	मुँह	—	—

९. कुहू	नीचे की ओर जाकर पुनः ऊपर दाहिनी नासिकाग्र तक	जननेन्द्रिय	जननेन्द्रिय दाईं नासिकाग्र तक	जननेन्द्रिय तक व दाईं नासिकाग्र तक	जननेन्द्रिय	—	गुदा
१०. शङ्खिनी	बाएं कान तक	मूलाधार	गले में रसनेन्द्रिय	दाएं कान तक	गुदा	सहस्रार के नीचे	जननेन्द्रिय
११. सरस्वती	जिह्वा तक	—	जिह्वाग्र तक	जिह्वाग्र तक	मुहँ के कोने में	—	मुँह के कोने में
१२. वारुणी	कुण्डलिनी के चारों तरफ	—	गुदा तक	कुण्डलिनी के चारों तरफ	—	—	—
१३. पयस्विनी	दाएं कान तक	—	—	बाएं कान तक	—	—	—
१४. विश्वोदरी	कन्द के मध्य में	—	चतुर्विध अन्नारस प्रवाहिका	—	—	—	—
१५. शूरा	—	—	भ्रूमध्य तक	—	—	—	—
१६. सौम्य	—	—	—	दाएं पैर का अंगुष्ठाग्र	—	—	—
१७. वज्र	—	—	—	—	—	—	—
१८. चित्रिणी	—	—	चित्रा—वीर्य प्रवाहिका	—	—	—	—
१९. अन्य	जिह्वा नामकी है, ऊपर की ओर व्यापक है	—	राका—प्यास व कफ कारक	—	—	—	—

योगशिखोपनिषद् में विलम्बा नामक नाड़ी से आवृत्त नाभि को ही नाभि-चक्र कहा है जोकि अण्डाकार है और यहीं से नाड़ियां ऊपर और नीचे की ओर जाती हैं।

प्रमुख नाड़ियों का नाम व उनका स्थान विभिन्न ग्रन्थों के अनुसार पूर्व तालिका में दिखाया गया है—

ये नाड़ियां सूक्ष्म व स्थूल शक्ति स्वरूप प्राण (अथवा स्वर) का वाहक हैं। अतः नाड़ियों का प्रभाव व नियंत्रण शारीरिक एवं मानसिक रूप से किया जा सकता है। फलतः आसन और प्राणायाम एवं प्रत्याहार, धारणा और ध्यान द्वारा नाड़ियों के संचालन में संयम लाया जा सकता है जिससे शारीरिक दृष्टि से रोगरहित स्वस्थ शरीर एवं आध्यात्मिक दृष्टि से मुक्ति की प्राप्ति की जा सकती है।

इसलिए प्रमुख नाड़ियों पर संक्षिप्त विचार करें।

सुषुम्ना

इसे ब्रह्म नाड़ी और वैष्णवी नाड़ी भी कहा गया है। इसके आरम्भ स्थान में मतभेद हैं — *शाण्डिल्योपनिषद्* में मूलाधार, *छान्दोग्योनिषद्* में हृदय और *षट्चक्रनिरूपणादि* में कन्दस्थान। लेकिन अधिकतम वैदिक साहित्य एवं अन्य योग सम्बन्धित ग्रन्थों में मूलाधार से आरम्भ होना माना गया है। सभी ने इसके अन्त को ब्रह्मरन्ध्र माना है। सर्वत्र व्यापक प्राण एवं कुण्डलिनी शक्ति का प्रवेश ब्रह्मरन्ध्र से होकर सुषुम्ना नाड़ी से नीचे की ओर प्रवाहित होकर अपने स्थान में स्थित होते हैं, इसके पश्चात् संपूर्ण शरीर में व्याप्त होते हैं। उसी के फलस्वरूप यह शरीर व इन्द्रियां कार्य करते हैं एवं वीर्यशक्ति का निर्माण होता है। पुनः उस वीर्यशक्ति को ओजःशक्ति के रूप में योगाभ्यास द्वारा परिणत करके ओजःशक्ति द्वारा सुषुम्ना नाड़ी से कुण्डलिनी शक्ति का ऊर्ध्वगमनं द्वारा पुनः चैतन्य शक्ति में मिलना ही मुक्ति है। इसलिए साधक के लिए इस नाड़ी को अपने अन्दर पहचान लेना अत्यन्त आवश्यक है। इस नाड़ी का शरीर की समस्त प्रणालियों पर प्रभाव है।

इड़ा और पिंगला

ये दोनों नाड़ियां मूलाधार से निकलकर सुषुम्ना के दोनों तरफ चक्राकार (वक्राकार) में घूमते हुए प्रत्येक चक्र के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हुए आज्ञा-चक्र तक जाकर सुषुम्ना में लीन होती हैं। यह दोनों अनुकम्पी व परानुकम्पी स्नायु संस्थान की आधार हैं। इड़ा बाईं ओर से और पिंगला दाईं ओर से निकलती हैं। यद्यपि प्रसिद्धि के अनुसार वक्रगति कहा है किन्तु शास्त्रीय सिद्धांत के अनुसार यह सुषुम्ना की दोनों बगल में नलिकाओं के समान सीधे हैं जिसमें प्राणशक्ति का ऊर्ध्व-गमन वक्राकार अनुभव होता है।

इन तीन प्रमुख नाड़ियों की गुणतालिका साधकों की सुविधा के लिए दी जा रही है जिसकी मदद से वे अपने अन्दर इन्हें पहचान सकें।

नाड़ी गुण तालिका

	गुण	इड़ा	पिंगला	सुषुम्ना
१.	श्वसन	बाईं नासिका	दाईं नासिका	उभय समान
२.	ताप	ठण्डा	गरम	न गरम न ठंडा
३.	लिंग	स्त्री	पुं.	न उभय न अनुभय
४.	प्रभाव	मानसिक	शारीरिक	आध्यात्मिक
५.	रंग	नीला	लाल	चमकीली सफेद
६.	धातु	चाँदी	सोना	हीरा (वज्र)
७.	शक्ति	ऋणात्मक	धनात्मक	उभयसम
८.	नस	परानुकम्पी	अनुकम्पी	उभयस्रोतः
९.	नदी	गंगा	यमुना	सरस्वती
१०.	ग्रह	चन्द्र	सूर्य	उभयप्रकाशक
११.	अवधि	८ घंटा	८ घंटा	८ घंटा

स्वरयोग नामक ग्रन्थ में इनका विस्तृत विचार किया गया है। समस्त योग साधनाएं इड़ा और पिंगला के संतुलन द्वारा सुषुम्ना को जाग्रत् करने के लिए हैं। स्वभाव से मनुष्य में १२ घण्टे इड़ा और १२ घण्टे पिंगला नाड़ी प्रधान श्वसन-क्रिया होती है। कभी-कभी अल्पतम क्षण सुषुम्ना चलती है। इसमें परिवर्तन लाना ही साधना है। जब इड़ा नाड़ी चलती है तो ज्ञान शक्ति अर्थात् विचारशक्ति क्रियाशील होती है। फलतः चिंतन, एकाग्रता अथवा चंचलता रहेगी। जब पिंगला नाड़ी चलती है तो प्राणशक्ति अर्थात् क्रियाशक्ति क्रियाशील होती है। फलतः पाचनादि शारीरिक कार्य होते हैं। जब सुषुम्ना नाड़ी चलेगी तब वास्तव में अन्तर्मुखतापूर्वक उच्च आध्यात्मिक साधना होती है।

गान्धारी

इस नाड़ी के बारे में बहुमत है कि बाईं आँख के अन्त में होती है किन्तु *सिद्धसिद्धान्तपद्धति* में बाएं कान के अन्त में बताया गया है। इड़ा, पिंगला दोनों जिस प्रकार शारीरिक

व मानसिक क्रियाओं पर प्रभाव डालती हैं सामान्यरूप से ठीक उसी प्रकार गान्धारी नाड़ी का विशेष प्रभाव विसर्जन प्रणाली पर होता है। अतः इसके सम्यक् संचार से विसर्जन क्रिया ठीक रहती है।

हस्तिजिह्वा

इसके अन्त के संबंध में तीन मत हैं। बाएं पैर का अंगूठा, दाईं आँख और दायां कान। शरीर के बाएं हिस्से में इसका प्रवाह है। गान्धारी पूषा के साथ एवं हस्तिजिह्वा यशस्विनी के साथ मिलकर कार्य करती हैं। इन चारों नाड़ियों का सम्बन्ध विसर्जन प्रणाली से है। अतः इनके संयमित संचार से पूरी विसर्जन क्रिया ठीक रहती है।

यशस्विनी

हस्तिजिह्वा के समान यह नाड़ी कार्य करती है किन्तु यह शरीर के दाहिने भाग से प्रवाहित होती है।

अलम्बुसा

यह नाड़ी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसी से सकल इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किए हुए विषयों को मस्तिष्क में सुषुम्ना के माध्यम से पहुंचाया जाता है। इसका विशेष प्रभाव शरीर के चयापचय एवं मन पर पड़ता है। अतः योग साधना में यह महत्त्वपूर्ण है।

कुहू

इस नाड़ी का विशेष प्रभाव जिगर (liver) पर पड़ता है। इसके संयमित संचार से पेट एवं रक्त के कार्य ठीक रहते हैं।

शङ्खिनी

इसका केन्द्र यद्यपि गले में है तथापि यह गुदा, गुप्तेन्द्रिय, मूलाधार-चक्र और कान तक प्रवाहित होती है। इसका प्रभाव गुर्दों पर पड़ता है। यह रक्तशोधन एवं मूत्रविसर्जन कार्य को नियंत्रित करती है।

सरस्वती

इस नाड़ी का अन्त मुँह में होता है। इसलिए इसका सीधा प्रभाव प्लीहा (नरवट/तापतिल्ली) पर पड़ता है। इससे पेट के ताप पर नियंत्रण रहता है।

वारुणी

यह नाड़ी स्थूलमल के निष्कासन की प्रक्रिया पर नियंत्रण रखती है। कुछ के मत में यह रक्तप्रणाली द्वारा संपूर्ण शरीर के समस्त क्रिया-कलाप को नियंत्रित करती है।

पयस्विनी

इसका साक्षात् सम्बन्ध पित्ताशय (पित्त की थैली) के साथ है। यह शरीर में पित्त नियंत्रण द्वारा पाचन क्रिया पर प्रभाव डालती है।

शूरा

कुछ के मत में इसका केन्द्र बिन्दु भ्रूमध्य होने के कारण ज्ञान व क्रिया शक्तियों के साथ इसका सम्बन्ध है किन्तु ऐसे अनुभव में आता है कि इसका सम्बन्ध व प्रभाव अग्नाशय (पाचक) ग्रंथि से है। इसके सक्रिय रहने से मधुमेह आदि नहीं होते।

विश्वोदरी

नाम से ही स्पष्ट है कि यह आमाशय (पक्वाशय/जठर) पर प्रभाव डालती है। चयापचय को नियंत्रित करती है।

अन्य

वज्र और चित्रिणी पुरुष के वीर्य व स्त्री के रज पर प्रभाव डालती हैं। राका नाड़ी प्यास व कफ का कारण है। जिह्वा नाड़ी तो नाम के अनुसार रसनेन्द्रिय पर प्रभाव डालती है और रसास्वाद का कारण है।

इन समस्त नाड़ियों के स्थूल शरीर पर प्रभाव की चर्चा की गई है। लेकिन इनके आध्यात्मिक प्रभाव पर भी ध्यान देना चाहिए। इन्हीं नाड़ियों से ज्ञानशक्ति एवं प्राण (क्रिया) शक्ति भी संचालित होती हैं। वास्तव में ये सब सूक्ष्म हैं और स्थूल-सूक्ष्म शरीर में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करती हैं। साधक इन्हें नाड़िशोधनप्राणायाम आदि द्वारा सक्रिय करके अपने दोनों शरीरों की शोधन पूर्वक आध्यात्मिक उन्नति शीघ्र प्राप्त कर सकता है।

अध्याय १४

चक्र विज्ञान

कुण्डलिनी शक्ति का सिद्धान्त "चक्र विज्ञान" पर आधारित है। यद्यपि चक्र शब्द का अर्थ है गोलाकार अथवा गाड़ी का पहिया तथापि योग शास्त्र में चक्र प्राण संचरण केन्द्र को कहते हैं। प्रत्येक शरीर में इनकी संख्या असंख्य है फिर भी आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से सात चक्र माने गए हैं।

चक्रों पर विस्तृत विचार करने से पूर्व अपने शरीर में संचारित वायु के सूक्ष्म स्वरूप प्राण के भेदों पर विचार कर लेना उचित होगा क्योंकि चक्रों के जागरण व भेदनपूर्वक कुण्डलिनी का जागरण एवं उत्थान प्राण पर निर्भर है।

स्थान सम्बन्धी विचार

सं.	नाम	जाबालदर्शनोपनिषद	योगचूड़ामणि उपनिषद	षट्चक्रनिरुपणं पादुकापञ्चकं
१.	प्राण	नाक, मुँह, नाभि एवं हृदय में संचार	हृदय	हृदय
२.	अपान	बड़ी आँत, जननेन्द्रिय, पेट, जांघ व नितम्ब	मूलाधार	जननेन्द्रिय व गुदा
३.	व्यान	कान एवं आँख से एड़ी तक	संपूर्ण शरीर	संपूर्ण शरीर
४.	समान	संपूर्ण शरीर	नाभि	नाभि
५.	उदान	हाथ व पांव	छाती	गला
६.	नाग	चर्म व हड्डी	—	—
७.	कूर्म	— —	—	—

८.	कृकरा	— " —	—	—
९.	देवदत्त	— " —	—	—
१०.	धनञ्जय	— " —	—	—

कार्य संबन्धी विचार

सं.	नाम	जाबालदर्शनोपनिषद्	योगचूड़ामणि उपनिषद्	षट्चक्रनिरूपणं पादुकापञ्चकं
१.	प्राण	श्वसन-प्रश्वसन व खाँसी	—	निःश्वास
२.	अपान	मूत्रमलादि का विसर्जन	—	विसर्जन कार्य
३.	व्यान	तत्त्व-अन्नादि का पृथक्करण	—	विभाजनपूर्वक फैलाव, बिखरने से रोकना।
४.	समान	अंगों को जोड़कर रखना	पाचन क्रिया	—
५.	उदान	ऊर्ध्वगति	—	अधो गति
६.	नाग	हिचकी	थूकना	—
७.	कूर्म	पलक गिरना	पलक गिरना	—
८.	कृकरा	भूख	छींकना	—
९.	देवदत्त	नींद	जम्भाई	—
१०.	धनञ्जय	चमकना (चौंधाना)	मृत्योपरान्त शरीर को फुलाकर सड़ाना	—

इन दो तालिकाओं से प्राणों के स्थान व कार्य स्पष्ट हैं। इन प्राणों को आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध, प्रत्याहार, धारणा एवं ध्यान की उक्त विधियों के अभ्यास द्वारा संयमित व नियंत्रित करने के पश्चात् स्वेच्छापूर्वक संचालन करने की क्षमता प्राप्त होने पर चक्रों पर ध्यान करते हुए कुण्डलिनी जागरण किया जाता है। अतः अब चक्रों पर विशेष प्रकाश डाला जा रहा है। चक्रों का सीधा सम्बन्ध गुप्त मस्तिष्क केन्द्रों से है जो आम आदमी में निष्क्रिय होते हैं। इस तालिका द्वारा सामान्य जानकारी दी गई है —

सं	विषय	मूलाधार	स्वाधिष्ठान	मणिपूर	अनाहत	विशुद्धि	आज्ञा	सहस्रार
१.	स्थान	गुदा व योनि मध्य	पेडू	नाभि के पीछे	हृदय के पीछे	कण्ठ के पीछे	भ्रूमध्य के पीछे	मस्तिष्क
२.	पद्मदल	४	६	१०	१२	१६	२	१०००
३.	दलवर्ण	रक्त	सिंदूरी	नील	अरुण	धूम्र	श्वेत	अवर्ण
४.	दलअक्षर	वं शं षं सं	बं से लं	डं से फं	कं से ठं	अं से अः	हं क्षं	अं से क्षं
५.	तत्त्व	पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु	आकाश	महत्	तत्त्वातीत
६.	बीज	लं	वं	रं	यं	हं	ॐ	विसर्ग
७.	बीजवाहक	ऐरावत	मकर	मेष	मृग	हाथी	नाद	बिंदु
८.	देवता	ब्रह्मा	विष्णु	वृद्ध-रुद्र	ईशानरुद्र	पंचवक्त्र	लिंग	परब्रह्म
९.	देवी	डाकिनी सावित्री	राकिनी सरस्वती	लाकिनी लक्ष्मी	काकिनी काली	साकिनी —	हाकिनी —	शक्ति —
१०.	लोक	भूः	भुवः	स्वः	महः	जनः	तपः	सत्यं
११.	गुण	गन्ध	रस	रूप	स्पर्श	शब्द	सभी	गुणातीत
१२.	यन्त्र	चौकोर	अर्धचन्द्राकार	त्रिकोण	षट्कोण	गोल	अण्ड/ लिंग	पूर्णचन्द्र/ निराकार
१३.	यन्त्र का रंग	पीला	चाँदी सफेद	लाल	धूम्र	सफेद	भूरा	वर्णातीत
१४.	ज्ञानेन्द्रिय	घ्राण	रसना	नेत्र	त्वचा	कर्ण	सभी	इन्द्रियातीत
१५.	कर्मेन्द्रिय	गुदा	शिश्न	चरण	हस्त	वाक्	सभी	इन्द्रियातीत
१६.	स्वभाव	आधार	सुख—शांति	ऐश्वर्य	नाद	अमृत	सर्ववश	मुक्ति
१७.	धातु	हड्डी	चर्बी	मांस	खून	चर्म	मज्जा	वीर्य
१९.	प्राण	अपान	व्यान	समान	प्राण	उदान	सभी	प्राणातीत
२०.	कोश	अन्नमय	प्राणमय	प्राणमय	मनोमय	विज्ञान—मय	विज्ञान मय	आनन्द—मय
२१.	योनि	त्रिपुर	—	—	त्रिकोण	—	त्रिकोण	—
२२.	लिंग	धूम्र	—	—	बान	—	इतरक्य	—
२३.	ग्रन्थि	ब्रह्म	—	—	विष्णु	—	रुद्र	ज्योतिर्मय

२४.	क्षेत्र	गुदा	पेडू	नाभि	हृदय	कण्ठकूप	भ्रूमध्य	मस्तिष्क
२५.	अनुभव	उल्टा त्रिकोण व ३½ कुण्डली वाली सर्प	पूर्ण अंध-कार व बेहोशी	तेजस्वी पीले रंग का कमल	नीलकमल व शांत तालाब अथवा दीपक सहित गुफा	ठंड व अमृत बिन्दु	उन्मनी व स्वर्णमय अण्डाकार ज्योति	पूर्ण प्रकाश व अनन्त पद्म दल
२६.	फल	विद्या, नीरोग, लघिमा–सिद्धि, कुण्डलिनी पर विजय	कवित्व शक्ति, योग, जल–भय निवृत्ति, सूक्ष्मज्ञान	गुप्तैश्वर्य प्राप्ति, नीरोगता, अग्नि भयाभाव, शरीर का पूर्ण ज्ञान	प्राणविद्या की सिद्धि, दिव्य प्रेम, वाक्सिद्धि, जितेन्द्रियः	अमरत्व, वेद ज्ञान, त्रिका–लज्ञः, निराहारी, परमज्ञाता	परकाय प्रवेश, सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, सर्वसिद्धि, वेदान्त ज्ञान	समाधि, पूर्ण कुण्ड–लिनी जागरण व मोक्ष प्राप्ति

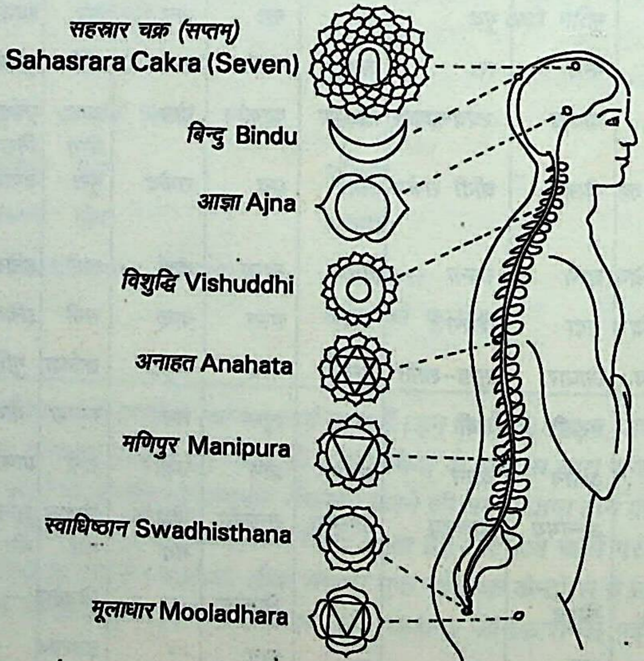

Location of the Chakras

(चक्रों की स्थिति)

मूलाधार-चक्र

नाम के अनुसार यह हमारे अस्तित्व का कारण है क्योंकि इसमें कुण्डलिनी शक्ति है। समस्त चक्रों का आधार होने से इसे मूलाधार कहते हैं। सांख्य एवं योग दर्शन में इसे मूल प्रकृति एवं वेदान्त में माया अथवा मूला विद्या कहते हैं। अतः नाम-रूपात्मक इस जगत् के कारण का स्थान ही मूलाधार-चक्र है।

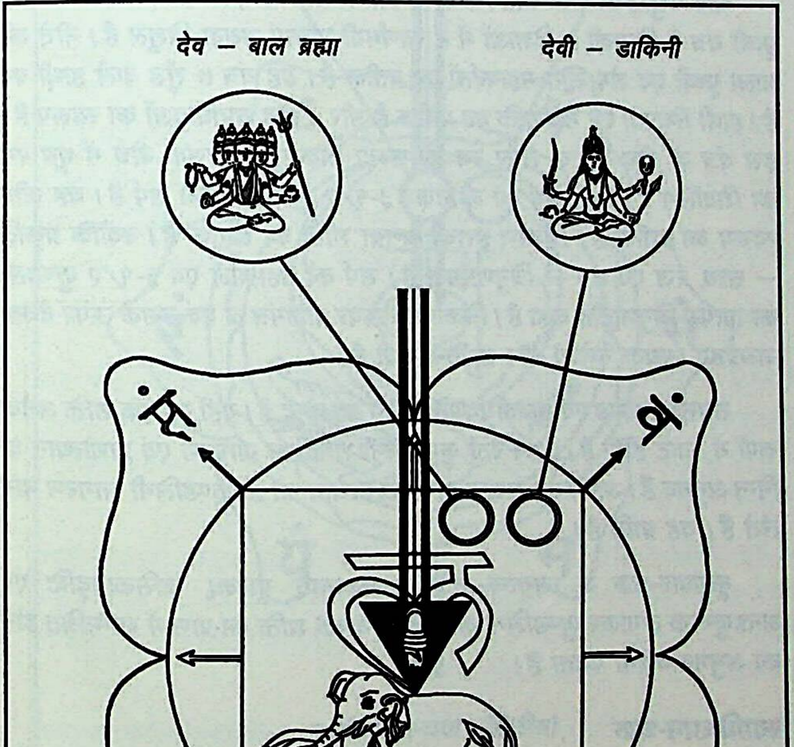

मूलाधार चक्र (प्रथम)

तंत्र शास्त्रों में कुण्डलिनी शक्ति जिसे जीव भाव का मूल कारण कहा है, उसका आधार होने से इसे मूलाधार कहते हैं। इसे ३-१/२ कुण्डली आकार के सुप्त सर्प के समान माना गया है। उसकी पूँछ मुँह में है और उसके जीवित रहकर प्रश्वसन क्रिया करते रहने से मनुष्य इतना कार्य कर रहा है तो, सोचें, यदि वह पूर्णरूपेण जाग्रत् हो जाए तो अवश्य मनुष्य पूर्णत्व को प्राप्त कर सकता है। अतः कुण्डलिनी योग में यह चक्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

चार पंखुड़ियों वाले रक्तवर्ण के कमल के बीच में एक चौकोर पीले रंग का पृथ्वी यंत्र है जिसकी ८ दिशाओं में ८ स्वर्णमयी भालाएं अथवा त्रिशूल हैं। नीचे की भाला पृथ्वी एवं शेष सप्त महापर्वतों का प्रतीक हैं। यह यंत्र ७ सूँड वाले हाथी पर है। हाथी स्थिरता एवं महाशक्ति का प्रतीक है और ७ सूँड सप्तधातुओं का स्वरूप है। इस यंत्र के बीच में एक लाल रंग का उल्टा त्रिकोण है जिसके बीच में धूम्र रंग का शिवलिंग है। उस लिंग को लपेटकर ३-१/२ कुण्डली वाला सर्प है। यह जीव स्वरूप का प्रतीक है। त्रिकोण इसकी अनन्त शक्ति का द्योतक है। क्योंकि प्रकृति — सत्त्व, रज एवं तम — त्रिगुणात्मक है। सर्प को महाकाल एवं ३-१/२ कुण्डली का तात्पर्य त्रिगुणातीत कहा है। त्रिकोण के ऊपर बीजमंत्र लं एवं उसके ऊपर देवता बालब्रह्मा (अथवा गणेश) और डाकिनी देवी हैं।

समस्त ब्रह्माण्ड एवं मानवीय शक्तियों का यह केन्द्र है। यहीं वह एक शक्ति अनेक रूपों में प्रकट होती है। ध्यान रखें कुण्डलिनी शक्ति का जागरण एवं प्राणोत्थान दो भिन्न अनुभव हैं। अधिकतर साधक प्राणों के उत्थान को ही कुण्डलिनी जागरण मान लेते हैं। यह भ्रांति है।

मूलाधार-चक्र के जागरण के लिए चक्रध्यान, मूलबंध, नासिकाग्रदृष्टि एवं अन्तःकुम्भक लगाकर कुण्डलिनी का उत्थान करके शक्ति का प्राण में सम्मिश्रित होने का अनुभव करना पड़ता है।

स्वाधिष्ठान-चक्र

नाम के अनुसार स्व = अपना, अधिष्ठान = निवास स्थान। यह तूला—अविद्या का स्थान है।

छः पंखुड़ियों वाले केसरी रंग के कमल के भीतर चौथ के चन्द्र के आकारवाला सफेद रंग का जल यंत्र है। इस यन्त्र की बाहरी रेखा पर ८ पंखुड़ी बाहर की ओर मुख किए हुए हैं और यंत्र की भीतरी रेखा पर ८ पंखुड़ी भीतर की ओर मुख किए हुए हैं। ये चेतन व अचेतन प्रवृत्तियों का प्रतीक हैं। चन्द्राकार यन्त्र के भीतर एक मगरमच्छ है, जो कि कर्म की सूक्ष्म गति एवं अचेतन जीवन का वाहक है। भीतरी

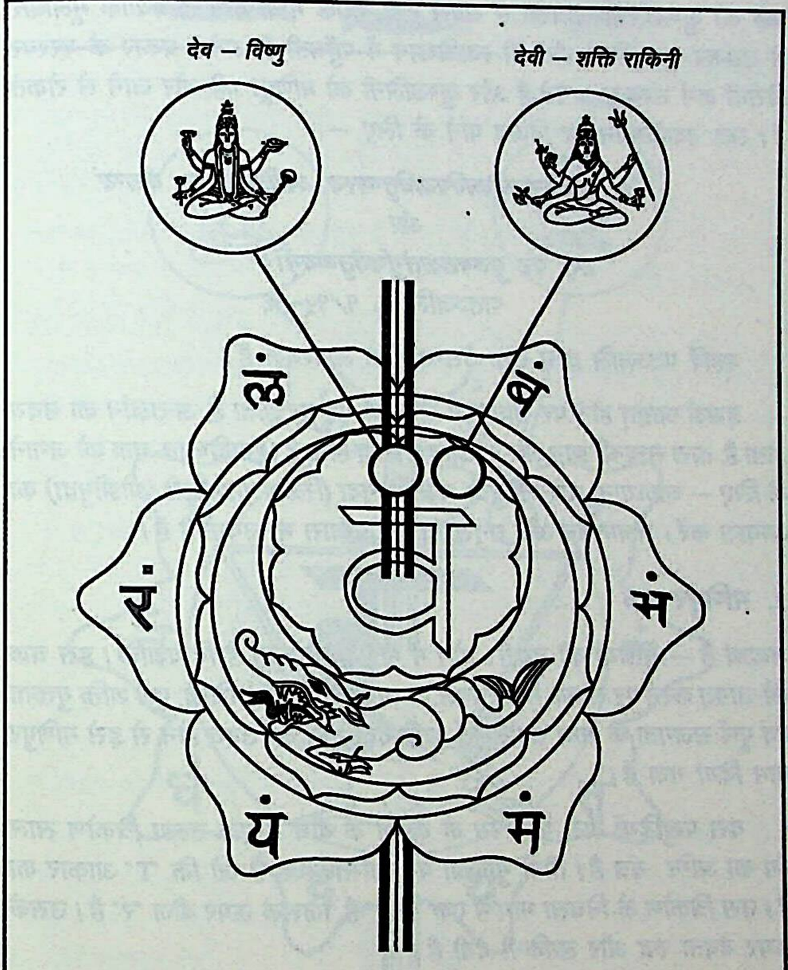

स्वाधिष्ठान-चक्र (द्वितीय)

कमल के बीच में बीजमन्त्र "वं" है। उसके ऊपर देवता विष्णु एवं राकिनी देवी हैं।

इसके जाग्रत् होने पर तूला–अविद्या का नाश होने से लोभ–क्रोधादि शत्रु नष्ट होते हैं और सूर्य के समान साधक तेजस्वी तथा कवित्व शक्ति वाला होता है। यह चक्र संचित एवं क्रियमाण कर्मों का भण्डार है। अतः जीव का जन्म-मरण इस चक्र का कारण है। इसे वेदान्तानुसार हिरण्यगर्भ कह सकते हैं। यहां कर्म की सुप्त अवस्था है, जबकि मूलाधार में कर्म की जाग्रत्-सक्रिय अवस्था है। कुण्डलिनी योग में इस

चक्र को कुण्डलिनी जागरण में सबसे बड़ा बाधक माना गया है, क्योंकि मूलाधार से उठकर कुण्डलिनी जैसे ही स्वाधिष्ठान में पहुँचती है, अनेक प्रकार के परस्पर विरोधी कर्म संस्कार जगते हैं और कुण्डलिनी को मणिपूर की ओर जाने से रोकते हैं। अतः स्वाधिष्ठान पर विजय पाने के लिए —

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यं
और
तत् पर पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्।।
पातञ्जलि सू. १/१५–१६

महर्षि पतञ्जलि द्वारा उक्त वैराग्य होना आवश्यक है।

इसके जाग्रत् होने पर साधक में जल का भय दूर होता है, अन्तर्ज्ञान का उदय होता है, तारा सम्बन्धी ज्ञान और रसज्ञान में सिद्ध होता है। स्वाधिष्ठान-चक्र को जगाने के लिए — चक्रध्यान, अश्विनी मुद्रा, वज्रोलि गुदा (स्त्रियां सहजोली/ओझीमुद्रा) का अभ्यास करें। शलभासन और धनुरासन का अभ्यास भी उपयोगी है।

३. मणिपुर-चक्र

शब्दार्थ है — मणियों की नगरी। योग में मणि का तात्पर्य है दिव्यशक्ति। इस चक्र को जाग्रत् करने पर साधक में आत्मबल, आत्मविश्वास, कार्य-सिद्धि, पूर्ण शक्ति युक्तता एवं पूर्ण सजगता के साथ सद्यस्फूर्ति आदि दैवी गुणों का उदय होने से इसे मणिपुर नाम दिया गया है।

दस पंखुड़ियों वाले पीले रंग के कमल के बीच में एक उल्टा त्रिकोण लाल रंग का अग्नि यंत्र है। तीनों भुजाओं पर स्वस्तिकचिह्न है जो कि "T" आकार का है। उस त्रिकोण के निचला भाग में एक "भेड़ा" है, जिसके ऊपर बीज "रं" है। उसके ऊपर देवता रुद्र और लाकिनी देवी हैं।

इस चक्र के कारण व्यक्ति रोग, बुढ़ापा, मृत्यु आदि शरीर की विकृतियों का अनुभव करता है। इसका कारण है बिन्दु चक्र से निकला अमृत, इस चक्र में आकर भस्म होता है, परिणामतः शरीर विकृत होता है। अतः अधिकतर तांत्रिक ग्रन्थों में कहा गया है कि कुण्डलिनी का स्थान मूलाधार है, विहार स्थली स्वाधिष्ठान एवं आध्यात्मिक जागृति का केन्द्र मणिपुर है। यहां तक कुण्डलिनी जागरण होने पर भी वह वापस लौटती है किन्तु यहां से आगे चलने पर पूर्णत्वानुभूति के बाद ही लौटती है। यह प्राण–अपान का मिलन स्थान है। यद्यपि सामान्यतः श्वास लेने पर प्राण नाभि से कण्ठ की ओर उठता है और अपान मूलाधार से नाभि की ओर उठता है एवं श्वास

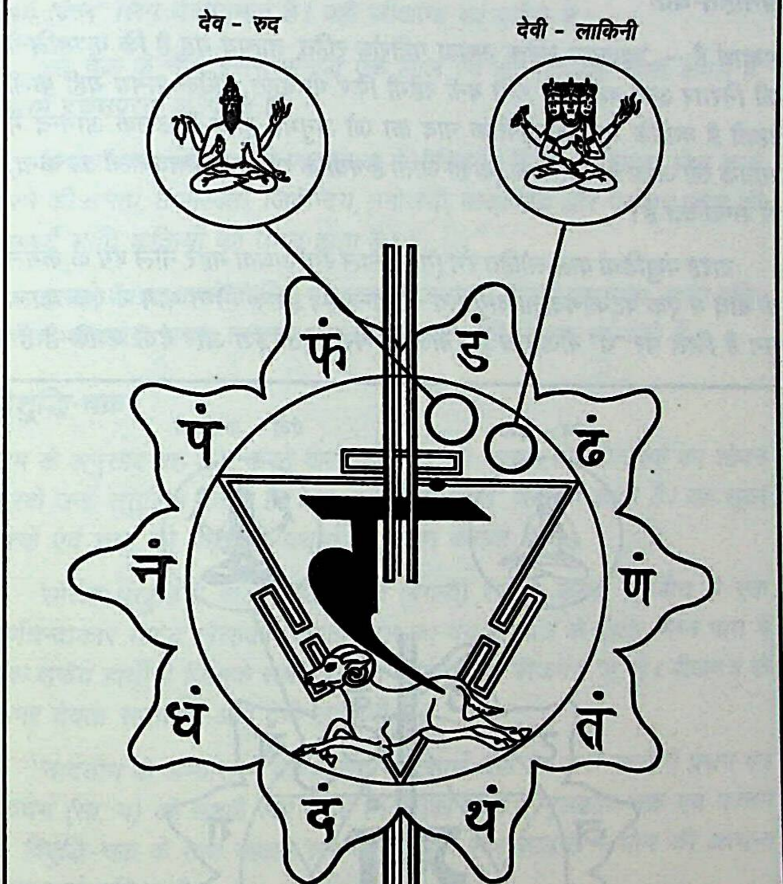

मणिपुर-चक्र (तृतीय)

छोड़ने पर विपरीत होता है। इस सामान्य गति को बदलना ही मणिपुर-चक्र का जागरण है।

इस चक्र को जगाने पर साधक में उत्पत्ति और विनाश करने की शक्ति, स्वरक्षा, गुप्त-ऐश्वर्य ज्ञान, अग्नि भय का अभाव, अपने शरीर का पूर्ण ज्ञान, नीरोगता एवं स्वेच्छापूर्वक शक्तिचालन करने की क्षमता का उदय होता है।

इसकी जागृति के लिए चक्रध्यान, अग्निसार क्रिया, उड्डियान बन्ध, नौलि क्रिया, प्राणापानयोग, त्राटक, विपरीतकरणी मुद्रा अत्यन्त उपयोगी हैं।

अनाहत-चक्र

शब्दार्थ है — "व्यवधान-रहित" अथवा गतिरोध रहित, तात्पर्य यह है कि कुण्डलिनी की निरंतर आगे बढ़ने की गति बनी रहेगी फिर भी बहुत अधिक समय यहीं फंसी रहती है क्योंकि यहां अप्राकृतिक नाद का जो अनुभव होता है उसके आनन्द में साधक खो जाता है। व्यक्ति भावुक हो जाता है क्योंकि यह हृदय (भावनाओं का केन्द्र) से सम्बन्धित है।

बारह पंखुड़ियों वाले लोहित रंग (गहरे लाल रंग) अथवा गहरे नीले रंग के कमल के बीच में एक षट्कोणवाला वायुतत्त्व का यन्त्र है। इसके निम्न भाग में एक काला मृग है जिस पर "यं" बीजमन्त्र है। बीजमंत्र पर देवता ईश और देवी काकिनी हैं।

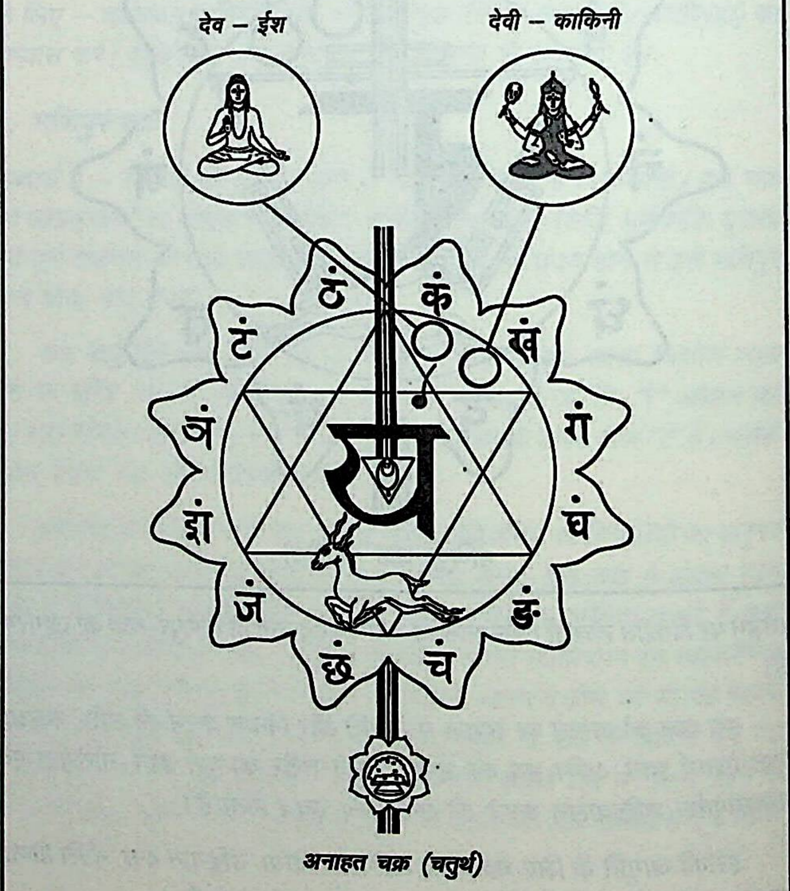

अनाहत चक्र (चतुर्थ)

इस चक्र के बीच में एक उल्टा त्रिकोण है जिसमें अखण्ड ज्योति प्रज्वलित है। इसमें "बान" लिंग देदीप्यमान है। यही जीवात्मा का प्रतीक है।

इस चक्र के नीचे इससे सम्बद्ध एक लाल रंग की पंखुड़ियों वाला कमल है, जिसमें इच्छापूरक कल्पवृक्ष है।

अनाहत-चक्र जाग्रत् होने पर साधक में नीतिज्ञान, विवेक, पाण्डित्य, श्रेष्ठ कार्य करने की क्षमता, तेजस्विता, जितेन्द्रिय, मनोजयी, वाक्‌सिद्धि और परकाय प्रवेश की सामर्थ्य आदि शक्तियों का उदय होता है।

इसको जाग्रत् करने के लिए चक्रध्यान, अजपाजप, भ्रामरी प्राणायाम, नवधा भक्ति, प्रार्थना, जपयोग, हृदय सम्बन्धी भावनात्मक ध्यान की क्रियाएं उपयोगी हैं।

विशुद्धि-चक्र

नाम के अनुसार यह शुद्ध करने वाला चक्र है। यह परस्पर विरोधी तत्त्वों का शोधन करके उन्हें संतुलित करता है। अतः इसे "विष-अमृत" चक्र भी कहते हैं। यह सूक्ष्म तत्त्वों एवं ज्ञान को परख के यथार्थ को ग्रहण कराता है।

सोलह पंखुड़ियों वाला नीललोहित (बैंगनी) रंग के कमल के बीच में एक पूर्णचन्द्राकार सफेद गोलाकार आकाशतल का यंत्र है। यंत्र के भीतर निम्न भाग में एक सफेद हाथी है जिसके सात सूँड हैं। उसके ऊपर बीजमंत्र "हं" है। बीजमंत्र के ऊपर देवता सदाशिव और देवी साकिनी हैं।

नादयोग के अभ्यास में यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण चक्र है। सप्त स्वरों में प्रथम एवं पञ्चम (सा, प) को स्थायी स्वर कहते हैं। उनका प्रथम = मूलाधार-चक्र एवं पञ्चम = विशुद्धि-चक्र के साथ साक्षात् सम्बन्ध है। अतः स्वर साधना में योग की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

इस चक्र के जाग्रत् होने पर अन्तः एवं बाह्य सब प्रकार के विषैले पदार्थ को पचाकर अथवा निष्कासित कर शारीरिक संतुलन, नीरोगता, दीर्घायु आदि प्राप्त होती है। दूसरे के मन एवं विचारों को ग्रहण कराता है। भूख-प्यास की निवृत्ति होती है। काया-कल्प हो जाता है। दीर्घ यौवन प्राप्त होता है। त्रिकालज्ञ होता है। समस्त वेद-शास्त्रों का ज्ञान उदय होता है। निर्भयता, निष्काम भाव आदि सद्‌गुणों का उदय होता है।

इसे जाग्रत् करने के लिए भुजंगासन, सर्वांगासन, गुप्तवज्रासन, शीर्षासन और मत्स्यासन उपयोगी हैं। जालन्धर-बन्ध, खेचरी-मुद्रा, उज्जयी प्राणायाम, चक्रध्यान,

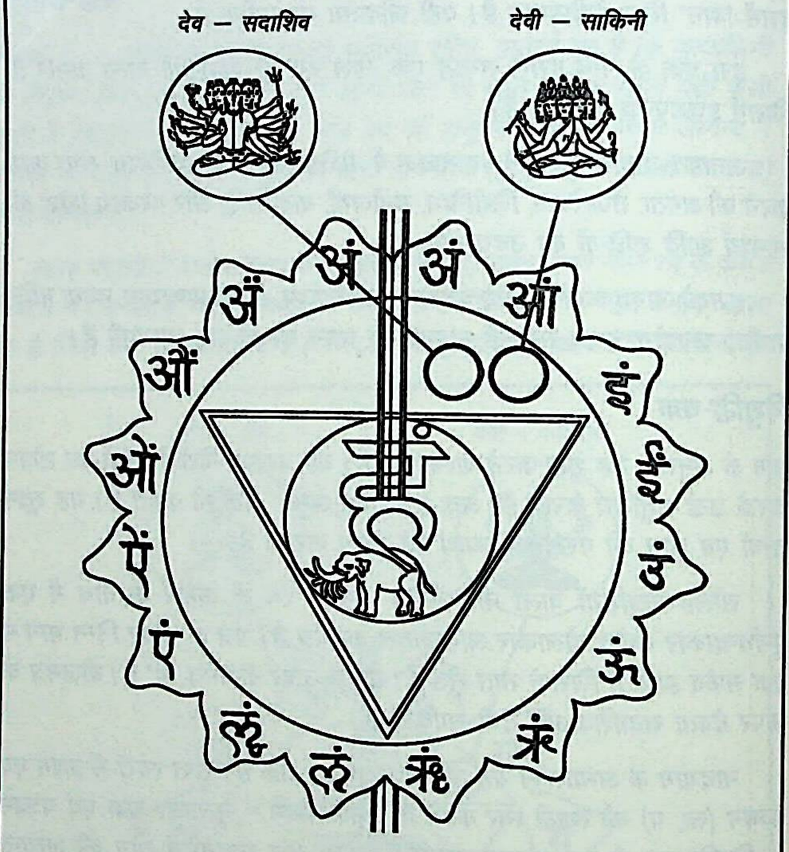

विशुद्धि-चक्र (पंचमम्)

विपरीतकरणी मुद्रा, शवासन में कण्ठगत प्राणस्पर्श का ध्यान इत्यादि का अभ्यास लाभदायक है।

आज्ञा-चक्र

आज्ञा शब्द का अर्थ है पूर्णज्ञान, आदेश करना अर्थात् अधिकार और अनुकरण करना। इसे गुरुचक्र भी कहते हैं। इस स्थान पर तीनों नाड़ी (इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना) एक हो जाती हैं। यहां व्यष्टि अहंकार समष्टि अहंकार में लीन होता है। अन्य चक्रों में विभिन्न प्रकार के द्वन्द्व रहते हैं किन्तु यहां सभी द्वन्द्व विलीन हो जाते हैं। इस

चक्र के जागरण काल में प्रथमतः मृत्युतुल्य स्तब्ध अवस्था का अनुभव होता है किन्तु धैर्य से ध्यान को होते रहने दें तो आन्तरिक गुरु का उपदेश सुनाई देगा, जिससे आप आत्मानुभूति की ओर आगे बढ़ेंगे। अतः इस चक्र को दिव्यचक्षु, ज्ञानचक्षु, ज्ञाननेत्र और तीसरा नेत्र भी कहा गया है।

दो पंखुड़ियों वाले हल्के भूरे रंग के कमल के बीच में एक गोलाकार वृत्त है जो शुद्धता एवं शून्यता का प्रतीक है। उस वृत्त के बीच में एक उल्टा त्रिकोण है। उसके बीच में एक काले रंग का शिवलिंग है। इसको "इतरक्य" नाम से शास्त्रों में वर्णन किया गया है। जब आज्ञा-चक्र का भेदन होता है तब यहीं काला शिवलिंग एक ज्योतिर्मयलिंग के रूप में अनुभव होता है। उस लिंग पर बीज मन्त्र ॐ है। उस पर देवता परमशिव और देवी हाकिनी हैं। इसकी इन्द्रिय है मन। त्रिकोणान्तर्गत शिवलिंग अर्धनारीश्वर का प्रतीक है अर्थात् प्रकृति-पुरुष का अनादि संयोग, जो संसार का कारण है। अतः इसके भेदन से मुक्ति होगी।

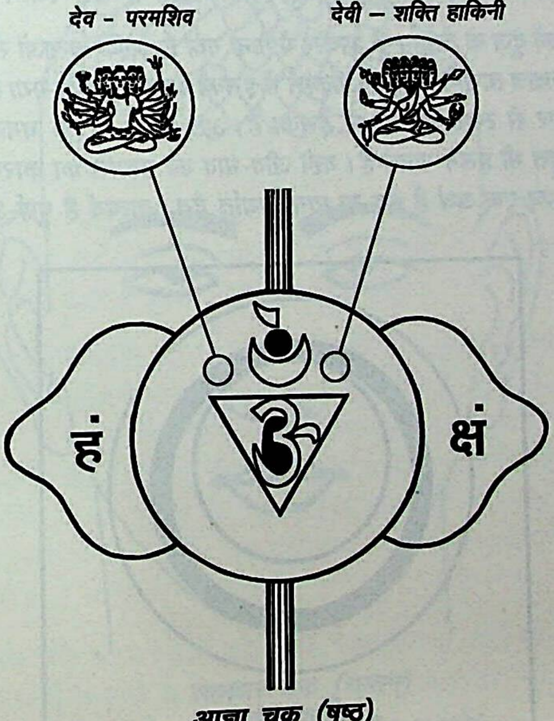

आज्ञा चक्र (षष्ठ)

इसके जाग्रत् होने से मन एकाग्र होता है। बुद्धि कुशाग्र होती है। साधक सत्यसंकल्प होता है। दृश्य से अत्यंत पृथक् अपने द्रष्ट्रभाव (साक्षी भाव) का अनुभव करता है। कार्यकारण भाव, सत्यासत्य आदि अभ्यास का विवेक जाग्रत् होता है।

इसको जाग्रत् करने के लिए नासिकाग्र दृष्टि, त्राटक, अनुलोम-विलोम प्राणायाम, शाम्भवी मुद्रा आदि का अभ्यास उपयोगी है।

बिन्दुविसर्ग-चक्र

यह सृष्टि का मूल कारण है। कर्म यहां वासना और स्मृति के रूप में निहित हैं। शब्दार्थ है "बूँद का गिरना"। यहीं से अमृत बिन्दु टपकते हैं। इसी से सकल पदार्थ निष्पन्न होते हैं और इसी में लीन होते हैं।

कामकला विलास में लिखा है कि बिन्दु से ही शब्द और अर्थ एवं आकाशादि तत्त्व उत्पन्न होते हैं। अतः सांख्य एवं योग दर्शनों का महत्तत्त्व है और वेदान्त का ईश्वर तत्त्व है। बिन्दु-चक्र का विशुद्धि चक्र के साथ ललना-चक्र द्वारा विशुद्ध सम्बन्ध है। यह हिन्दुओं में द्विज जहां चोटी रखते हैं उस स्थान पर है।

बिन्दु को दूज के चन्द्रमा के आकार में माना गया है, जोकि कलाओं से सम्बन्ध को बताता है। नक्षत्र तारादि से युक्त आकाश में इसका अनुभव बताया गया है। अनन्तता रूपी सहस्रार से स्पष्ट सम्बन्ध भी इसका है। अतः ऊपर में एक चमकीला सफेद गोलाकार वृत्त भी इसमें मानते हैं। यही जीव-भाव की उत्पत्ति का कारण है क्योंकि बिन्दु शब्द का एक अर्थ है भेद या भाग, अर्थात् द्वैत। तात्पर्य है पूर्ण-अद्वैत में द्वैत

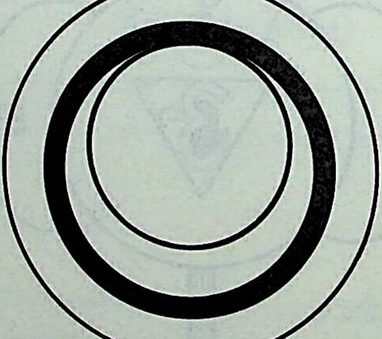

बिन्दु चक्रम

होना अर्थात् प्रतीत होना ही जीवन है। प्रवृत्ति और निवृत्ति — इन दोनों ही मार्गों से साधक यहां पहुंचकर ही अपने अहंभाव को त्यागकर सहस्रार की ओर आगे बढ़ सकता है।

इस चक्र को जाग्रत् करने के लिए मूर्छा-प्राणायाम और वज्रोलि-मुद्रा अथवा भ्रामरी प्राणायाम और योनि मुद्रा का अभ्यास करना होगा।

सहस्रार-चक्र

वास्तव में सहस्रार कोई चक्र नहीं है क्योंकि वह परात्पर अर्थात् निराकार होते हुए साकार जैसे प्रतीत होता है। शब्दार्थ है "एक हजार अरायें" अर्थात् अनन्त प्रवृत्ति का स्रोत = पूर्ण ब्रह्म।

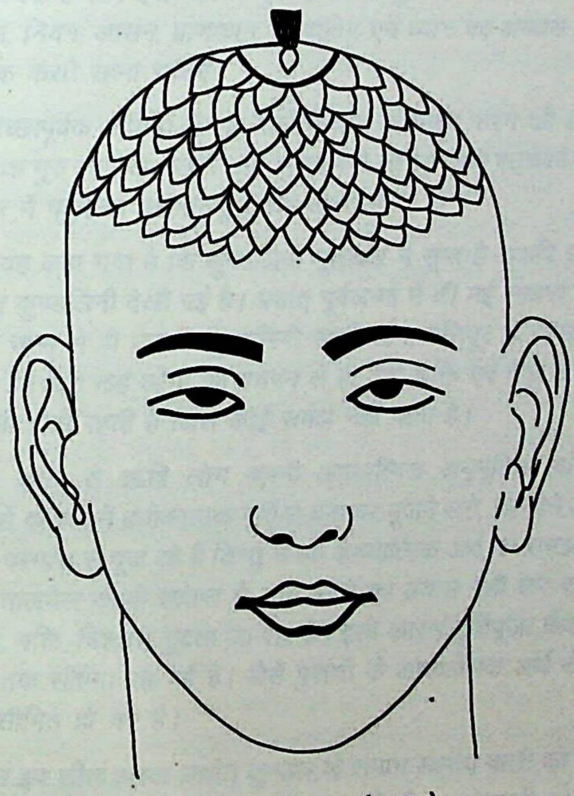

सहस्रार चक्र (सप्तम्)
Sahasrara Cakra (Seventh)

अतः इसे हजारों पंखुड़ियों वाले कमल के रूप में दिखाया व माना गया है। इसके बीच में उगता सूर्य और सूर्य के बीच में एक ज्योतिर्मय शिवलिंग को ब्रह्म, तथा उसका आवरण माया और विक्षेप को प्रतीक रूप से दिखाया गया है।

जब कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार में पहुंचती है तो शिव-शक्ति अर्थात् जीव-ब्रह्म का ऐक्य होता है। यहीं पर समाधि आरम्भ होती है। इसी को *योगसूत्र* में धर्ममेघ समाधि कहा गया है। इसी को शास्त्रों में मोक्ष, कैवल्य, आत्मानुभूति, ब्राह्मी स्थिति, साक्षात्कार, स्वर्ग आदि शब्दों से वर्णन किया गया है। अतः सहस्रार चेतनता की पराकाष्ठा है। राजयोग में समाधि और तन्त्र में सहस्रार प्राप्ति दोनों समान हैं। साधन में फर्क यह है कि राजयोग में अष्टांगों का प्रयोग होता है जबकि तन्त्र में क्रियाओं का अभ्यास करना पड़ता है जिसे क्रियायोग कहते हैं अथवा कुण्डलिनी योग कहते हैं।

अध्याय १५

कुण्डलिनी विज्ञान

कुण्डलिनी उस महान् सुषुप्त गुप्त शक्ति का नाम है जो कि मूलाधार-चक्र में निहित है, जिसे सर्पाकार में दर्शाया गया है। इस महान् शक्ति को जगाने के लिए पूर्वाभ्यास अत्यन्त आवश्यक है और इस मार्ग में गुरु के बिना कुछ भी नहीं करना चाहिए। तैयारी में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, क्रियायोग एवं ध्यान का अभ्यास लगातार दीर्घकाल तक करते रहना चाहिए।

जब स्वेच्छापूर्वक नाड़ियों में एवं चक्रों में प्राण संचालन करने की क्षमता आ जाएगी तब दक्ष गुरु की देख-रेख में आप कुण्डलिनी जागरण कर षट्चक्रों का भेदन द्वारा सहस्रार में पहुंचकर आत्मानुभूति कर सकते हैं।

यद्यपि यह कहा गया है कि कुण्डलिनी मूलाधार में सुप्त है तथापि साधकों में पार्श्व उत्थित कुण्डलिनी देखी गई है। अर्थात् पूर्वजन्मों में की गई साधना के कारण इस जन्म में जन्म से ही उनकी कुण्डलिनी स्वाधिष्ठान, मणिपूर या अनाहतादि में स्थित रहती है। अतः कई लोगों को बचपन से ही दैवी शक्ति एवं कुछ आध्यात्मिक अनुभूतियां भी होती रहती हैं जिसे कोई समझ नहीं पाता है।

अनादि काल से ऋषि लोग अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों को विभिन्न देवी-देवताओं के रूप में प्रतीकात्मक मूर्तियां बनाकर पूजने लगे, जिनको आज लोग केवल अन्ध-परम्परा से पूज रहे हैं किन्तु उनके आध्यात्मिक अर्थ को समझकर अपने अनुभवों से तालमेल करके साधना में आगे बढ़ने का प्रयास नहीं कर रहे हैं। इस कारण श्रद्धा, भक्ति, विश्वास टूटता जा रहा है। इसी कारण मूर्तिपूजा केवल भौतिक सुख-शांति तक सीमित रह गई है। जैसे पुराणों के आध्यात्मिक अर्थ केवल कथा के रूप में सीमित हो गए हैं।

कुण्डलं इव शीलं अस्या अर्थात् कुण्डल के समान स्वभाव वाली को कुण्डलिनी कहते हैं अथवा कुण्डे लाद्यते या सा अर्थात् कुण्ड में लीन रहने वाली को कुण्डलिनी

कहते हैं। अर्थात् गेंडुरी या चक्राकार में रहने का स्वभाव अथवा कुण्ड = मूलाधार में लीन = सुप्त रहने वाली को कुण्डलिनी कहा गया है। यह शक्ति जब विशिष्ट रूप से प्रकट होती है तो उसे काली, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती आदि नाम से व प्रतीकात्मक मूर्तियों के रूप में माना जाता है। काली मूलाधार में जाग्रत् कुण्डलिनी का स्वरूप है और दुर्गा सहस्रार में पहुंची हुई कुण्डलिनी का स्वरूप है। शेष देवियां अन्य चक्रों में पहुंची हुई कुण्डलिनी के ही विभिन्न स्वरूप हैं। अतः योग के अनुसार काली कुण्डलिनी की अज्ञानात्मक शक्ति का प्रतीक है और दुर्गा ज्ञानात्मक शक्ति का प्रतीक है।

इस कुण्डलिनी शक्ति को सर्प के आकार में समस्त विश्व की संस्कृतियों में स्वीकारा गया है। अतः विश्व भर की सभी संस्कृतियों की पुरातत्त्व की कलाकृतियों में सर्प को बहुत महत्त्व दिया गया है। यद्यपि इस शक्ति का कोई एक निश्चित रूप नहीं है क्योंकि वह निगुर्ण-निराकार है तथापि उसे कार्य के अनुसार अनन्त रूप माना गया है। वह बाह्य जगत् में सर्वत्र व्याप्त होने पर भी प्रत्येक शरीर में मूलाधार-चक्र में सर्पाकार के समान कुण्डली लगाए मुँह में पूँछ को दबाए प्रसुप्त कहा गया है।

इस महान् शक्ति को कुण्डलिनी योग के अभ्यासों से जाग्रत् करने से जो अनुभव होता है उसे विभिन्न शास्त्रों में इस प्रकार वर्णन किया गया है – "प्रकाशमय स्तम्भ के समान देदीप्यमान सुषुम्ना नाड़ी में अंगारे के समान लाल आँखों से युक्त करीब १० इंच लम्बा स्वर्णमयी सर्प जिसकी जिह्वा बिजली के समान चंचल है, वह तीव्र गति से सब चक्रों का भेदन करते हुए शिव के साथ ऐक्य होता है।"

इस कुण्डलिनी जागरण के अधिकारी सभी हो सकते हैं। यह वर्ण, जाति, धर्म, आदि से परे है और निष्ठापूर्वक निरंतर अभ्यास की अपेक्षा है। कुण्डलिनी जागरण से व्यक्ति में पूर्ण परिवर्तन हो जाता है। व्यक्तिगत संस्कार, प्रवृत्ति और रुचि के अनुसार व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास एवं परिवर्तन हो जाता है। वह कवि, गायक, वैज्ञानिक, किसी क्षेत्र अथवा विषय का विशेषज्ञ, त्रिकालज्ञ आदि कुछ भी बन जाएगा। थोड़ी भी असावधानी हो तो वह पागल, नास्तिक, विद्रोही आदि भी बन सकता है।

बिना योगाभ्यास के किसी विशेष घटना, दुर्घटना, तीव्र एकाग्रतापूर्वक किसी कार्य या विषय पर लगे रहना इत्यादि अनेकों कारणों से कुण्डलिनी जागरण हो सकता है किन्तु उसके नतीजे का कोई भरोसा नहीं, क्योंकि उस पर व्यक्ति का नियंत्रण नहीं रहता है। अधिकतर ऐसे लोगों का जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है और किसी मार्ग में या व्यक्ति में निष्ठा न होने से उनका जीवन व्यर्थ भटकते हुए व्यतीत हो जाता है। इसलिए गुरु के मार्गदर्शन में एक निश्चित मार्ग को अपनाकर जीवन को साधना के लिए अर्पित करने वाले साधक ही सफल होते हैं।

ध्यान रहे यदि ऋद्धि-सिद्धियों की प्राप्ति के लिए आप कुण्डलिनी जागरण करना चाहते हों तो अवश्य आप खतरे से बाहर नहीं। आप यदि शिव-शक्ति का मिलन अर्थात् ब्रह्मानुभूति के लिये प्रवृत्त हों तो अवश्य आपको कोई बाधा नहीं आएगी। क्योंकि आप शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक परिवर्तन के साथ आध्यात्मिक प्रगति के लिए जब साधना करने लगेंगे तब साधक के अन्दर वैराग्य रहेगा और निष्ठापूर्वक अभ्यास करेगा। यही दो अभ्यास और वैराग्य सफलता की कुंजी हैं। जैसे कि *भगवद्गीता* में स्पष्ट शब्दों से कहा है –

अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते ।। ६/३५ ।।

और

पातञ्जल योगसूत्र में –

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।। १/१२।।

कुण्डलिनी शक्ति वास्तव में स्थूल अथवा सूक्ष्म शरीर में नहीं अपितु कारण शरीर का विषय है। फिर भी वह आविद्यक चेतना रूपी महाशक्ति तीनों शरीर से सम्बद्ध होकर उत्थान करती है और ब्रह्मचेतना के साथ ऐक्य को प्राप्त करती है। यही मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है। इसी को वेदान्त में जीव-ब्रह्म ऐक्य कहा गया है। शैव एवं शाक्त इसी को शिव-शक्ति का मिलन कहते हैं। सांख्य एवं योग में इसे प्रकृति का दर्शितविषया होना और पुरुष का अपवर्ग माना गया है। न्याय-वैशेषिक इसे तत्त्व ज्ञान प्राप्ति कहते हैं। पौराणिक इसे मोक्ष प्राप्ति कहते हैं और मीमांसक स्वर्ग कहते हैं।

इस मस्तिष्क में $१२,००,०००^{५००}$ अर्थात् १२ लाख को १२ लाख संख्या से ५०० बार गुणा करें तो जितनी संख्या होगी उतने शक्ति केन्द्र हैं। कुण्डलिनी समस्त शक्ति केन्द्रों को जाग्रत् कर सक्रिय होती है। सामान्य मनुष्य में १ से ३ प्रतिशत, विशेष बुद्धिजीवी में ५ प्रतिशत, स्वविषय में पराकाष्ठा प्राप्त करने वाले मनुष्य में ७ प्रतिशत और तथाकथित सिद्ध योगियों में १० प्रतिशत शक्ति केंद्र ही सक्रिय होता है। केवल ब्रह्मज्ञानी में शत-प्रतिशत जाग्रत् होता है। देवता आदि ब्रह्मा, विष्णु, महेश पर्यन्त जीवों में १० से ६० प्रतिशत तारतम्य माना गया है। तदनुसार उन्हें सुख-शांति-आनन्द की प्राप्ति होती है। इस संदर्भ में *तैत्तिरीय* एवं *बृहदारण्यक* उपनिषद् में की गई आनंद मीमांसा प्रकरण प्रमाण है।

प्राण शक्ति और चेतना शक्ति ये दो कुण्डलिनी–शक्ति का मुख्य स्वरूप हैं। प्राण-शक्ति क्रियाशीलता का कारण है और चेतना शक्ति ज्ञान का कारण है। इन दोनों शक्तियों का मस्तिष्क के संपूर्ण केन्द्रों में पूर्णतया सक्रिय होना ही कुण्डलिनी जागरण

का फल है — अर्थात् ज्ञान-क्रिया शक्ति का पूर्ण उदय।

इसलिए *हठयोग प्रदीपिका* में कहा गया है कि — जो कुण्डलिनी को जानता है वही योग को जानता है ।। ५/११० ।। अतः इस कुण्डलिनी को जानकर उसको जाग्रत् करने का प्रयास अवश्य करना चाहिए।

कुण्डलिनी जागरण अनेक प्रकार से हो सकता है । वे हैं — १. जन्म, २. मंत्र, ३.तपस्या, ४. जड़ी–बूटियाँ, ५. राजयोग, ६. प्राणायाम, ७. क्रियायोग, ८. शक्तिपात, ९. तंत्र, १०. शरणागति, ११. कर्मयोग, १२. भक्तियोग, १३. और ज्ञानयोग से।

व्यक्ति की सामर्थ्य के अनुसार २ से १३ में से किसी एक को चुनकर उस मार्ग के दक्ष गुरु से दीक्षा लेकर साधक को आगे बढ़ना चाहिए। कुण्डलिनी जागरण यद्यपि क्षण मात्र का विषय है फिर भी उसकी तैयारी के लिए अनेकों जन्म लगाने पड़ते हैं। अतः दृढ़ निश्चय होना चाहिए कि — "इस जन्म में हो या न हो फिर भी आमरण तक मैं निष्ठापूर्वक अभ्यास करूंगा"। नाड़ी, चक्र और तत्त्वों की शुद्धि अति आवश्यक है। इसके लिए आसन, प्राणायाम, नेति आदि षट्कर्म, मुद्रा एवं बन्धों के अभ्यास में दक्ष होना होगा। एकान्तवास, आश्रम जीवन, अनुशासन, निष्काम कर्मयोग और सात्त्विक आहार कुण्डलिनी जागरण की तैयारी में सहयोगी हैं।

कुण्डलिनी जागरण में बाधाएं भी अनेक हैं। जैसे भय, भ्रांति, गलत क्रिया का अभ्यास, क्रिया को गलत ढंग से करना, अनेक रोग, अशुद्धि, असंयमित आहार-विहार, सिद्धि और अहंकार।

अतः कुण्डलिनी जागरण को चार भागों में क्रमशः करना चाहिए — (१) इड़ा एवं पिंगला नाड़ी जागरण, (२) चक्रों का जागरण, (३) सुषुम्ना नाड़ी जागरण और (४) कुण्डलिनी जागरण।

प्रथम नाड़ी शोधन प्राणायाम के द्वारा आप इड़ा और पिंगला नाड़ियों को शुद्ध, संयमित एवं संतुलित कर लें। तत्पश्चात् चक्र जागरण को ७ प्रकार से किया जा सकता है। वे हैं १. चक्रों के स्वरूप पर बाह्य एवं अन्तःध्यान, २. संगीत के स्वरों द्वारा चक्र ध्यान, ३. चतुर्थ प्राणायाम; (प्राणायाम के साथ मंत्र और चक्रध्यान करने को चतुर्थ प्राणायाम कहते हैं), ४. योगनिद्रा, ५. उन्मनी (क्रिया) मुद्रा, ६. बीज मंत्र संचालन और ७. चक्रों के चित्र बनाना। इसके साथ ही शाम्भवी-मुद्रा, नासिकाग्र के साथ मूलबंध, व्रजोलि-मुद्रा, उड्डियान-बन्ध, अजपाजप, जालन्धर-बंध के साथ विपरीत करणी-मुद्रा और योनि-मुद्रा का नित्य अभ्यास चक्रों को क्रमशः जागरण करने में उपयोगी है। हठयोग और प्राणायाम के अभ्यास से सुषुम्ना नाड़ी जाग्रत् की जाती

है। अन्त में कुण्डलिनी क्रियाओं के अभ्यास से कुण्डलिनी जागरण करना उचित क्रम होगा।

क्रिया योग में १६ कुण्डलिनी क्रियाओं का वर्णन है। क्रियाओं को करने से पूर्व इनमें दक्ष होना है — १. सर्वाङ्गासन, २. उज्जयी प्राणायाम, ३. सिद्धासन, ४. उन्मनी-मुद्रा (क्रिया), ५. खेचरी-मुद्रा, ६. अजपाजप, ७. उत्तानपादासन, ८. शाम्भवी-मुद्रा, ६. मूलबंध, १०. नासिकाग्रदृष्टि, ११. उड्डियान-बन्ध, १२. जालन्धर-बन्ध, १३. भद्रासन, १४. पद्मासन, १५. योनि-मुद्रा और १६. वज्रोलि-मुद्रा।

इस पूर्व तैयारी के बाद १६ क्रियाओं का अभ्यास आरम्भ करना है। वे हैं — १. विपरीत करणी-मुद्रा, २. चक्रानुसंधान, ३. नाद संचालन, ४. पवन संचालन, ५. शब्द संचालन, ६. महामुद्रा, ७. महाभेद-मुद्रा, ८. माण्डुकी-क्रिया, ६. ताड़न-क्रिया, १०. नौमुखी-मुद्रा, ११. शक्तिचालिनी, १२. शाम्भवी, १३. अमृतपान, १४. चक्रभेदन, १५. सुषुम्ना दर्शन, १६. प्राणाहुति, १७. उत्थान, १८. स्वरूपदर्शन, और १६. लिंग सञ्चालन।

अन्ततः ध्यानपूर्वक समाधि होगी।

चतुर्थ प्रकरण

योग द्वारा रोगोपचार

जैसे कि पूर्व में वर्णन किया गया है कि योग मुक्ति का साधन है और ऋषियों ने योगासनादि की रचना शरीर एवं चित्तशुद्धि पूर्वक परम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति के लिए ही की थी। फिर भी जब हम रुग्ण शरीर से दुनिया का काम चला नहीं सकते तो धर्म की साधना कैसे कर सकते हैं। इसलिए योग साधना से पहले हम शरीर को नीरोग बनाएं, तत्पश्चात् शुद्धिकरण करें तो अच्छा होगा। इसलिए इस अध्याय में योग द्वारा रोगोपचार का वर्णन है।

सब रोगों का मूल कारण पेट है, इसलिए पेट के रोगों से इस अध्याय को शुरू किया जाता है।

अपचन (बदहजमी/अजीर्ण/गैस)

आसन (आ.) — पवनमुक्तासन का वातनिरोधक अभ्यास समूह, सुप्तवज्रासन, उष्ट्रासन, त्रिकोणासन, मत्स्यासन, हलासन, सूर्य नमस्कार, पश्चिमोत्तानासन, शशांकासन और ताड़ासन।

प्राणायाम (प्रा.) — नाड़ी शोधन प्राणायाम।

मुद्रा एवं बन्ध (मु.ब.) — उड्डियान-बन्ध, अश्विनी-मुद्रा, अग्निसार-क्रिया।

हठ योग (ह.यो.) — लघु शंख-प्रक्षालन, कुंजल, नेति। योग्य शिक्षक की देख-रेख में नौलि, बस्ति किया जा सकता है।

शिथिलीकरण (शि.) — योगनिद्रा, रं बीज के साथ मणिपुर चक्र का ध्यान।

अल्सर

आ. = शशांकासन, शवासन। *प्रा.* = शीतली, शीतकारी, भ्रामरी। *मु.ब.* =

आकाशी-मुद्रा, योनि-मुद्रा, कोई बन्ध का अभ्यास नहीं। *ह.यो.* = अत्यन्त वर्जित है। *शि.* = त्राटक, अजप जप, योगनिद्रा एवं अन्तर्मौन। सुपाच्य आहार ही ग्रहण करें।

उदर रोग (आँत, आमाशय, अम्लीयता, ज्वर इत्यादि)

आ. = वातनिरोधक अभ्यास, शक्तिबन्ध समूह, मत्स्यासन, तोलांगुलासन, हलासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, पश्चिमोत्तानासन, ब्रह्मचर्यासन, वज्रासन। *प्रा.* = नाड़ी शोधन, भस्त्रिका, उज्जयी। *मु.ब.* = सभी मुद्रा एवं बन्ध। *ह.यो.* = कुंजल, लघु शंख–प्रक्षालन। *शि.* = त्राटक एवं ध्यान।

आँव गिरना

लघु शंख–प्रक्षालन से दोनों प्रकार की आँव दूर हो जाती है।

पेट में कृमि

आ. = नौकासन। *ह.यो.* = लघु शंख–प्रक्षालन, अग्निसार–क्रिया।

पांडु रोग

आ. = सूर्य नमस्कार, भुजंगासन, शलभासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, हलासन, पश्चिमोत्तानासन, शीर्षासन। *प्रा.* = नाड़ी शोधन, शीतली, शीतकारी, खेचरी सहित उज्जयी। *ह.यो.* = लघु-शंख–प्रक्षालन।

पीलिया

आ. = पश्चिमोत्तानासन, उदरखण्ड में कहे सभी योग। सुपाच्य, सरल आहार ग्रहण करें। घी, तेल, मसाला अत्यंत वर्जित है।

पेचिश

आँव खण्ड में कहे योग करें। उपवास अत्युत्तम साधन है।

मधुमेह (डायबिटीज़, क्लोम ग्रंथि)

आ. = सूर्य नमस्कार, ताड़ासन, पश्चिमोत्तानासन, योगमुद्रा, सुप्तवज्रासन, भुजंगासन, हलासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, अर्धमत्यसेन्द्रासन, उष्ट्रासन, गोमुखासन, वातायनासन, शवासन। *प्रा.* = नाड़ी शोधन, भ्रामरी, उज्जयी, भस्त्रिका। *ह.यो.* = लघु शंख–प्रक्षालन। *मु.ब.* = सभी कर सकते हैं। *शि.* = अजपाजप, योगनिद्रा, ध्यान।

वायुनिकास (आँत से)

आ॰ = वातनिरोधकाभ्यास समूह, शशांकासन, सुप्तवज्रासन, भुजंगासन, कटिचक्रासन, मत्स्यासन, हलासन एवं सामने झुककर किए जाने वाले आसन। *प्रा॰* = भस्त्रिका, कपालभाति। *मु॰ब॰* = ताड़गी मुद्रा और सभी बन्ध। *ह॰यो॰* = कुंजल, लघु एवं पूर्ण शंख-प्रक्षालन। *शि॰* = योगनिद्रा, ध्यान।

दमा एवं फेफड़ों का सामान्य दोष (कास रोग)

आ॰ = सूर्य नमस्कार (मंद गति से), सर्वांगासन, सुप्तवज्रासन, मार्जार्यासन, उष्ट्रासन, लोलासन, मत्स्यासन, बद्धपद्मासन, शवासन। *प्रा॰* = सभी। मु॰ब॰ = सभी। ह॰यो॰ = कुंजल, वस्त्रधौति, शंख-प्रक्षालन। *शि॰* = योगनिद्रा, अजपाजप, अन्तर्मौन एवं ध्यान।

छाती (फेफड़ा, प्लूरसी, न्यूमोनिया)

आ॰ = सूर्य नमस्कार, पवनमुक्तासन – गठिया निरोधक अभ्यास समूह, खड़े होकर किए जाने वाले सभी आसन, मत्स्यासन, लोलासन, कुक्कुटासन, चक्रासन, धनुरासन, वृश्चिकासन एवं अष्टावक्रासन। *प्रा॰* = सभी। *मु॰ब॰* = सभी। *ह॰यो॰* = कुंजल। *शि॰* = योगनिद्रा (विशेषतः श्वास गिनती का) अजपाजप, ध्यान।

कमर व पीठ दर्द

आ॰ = सूर्य नमस्कार, पवनमुक्तासन – तीनों समूह, शशांकासन, मार्जार्यासन, लोलासन, ताड़ासन, कटिचक्रासन, सुप्तवज्रासन, भुजंगासन, पृष्ठासन, त्रिकोणासन, हलासन, धनुरासन, चक्रासन। *प्रा॰* = भस्त्रिका, नाड़ी शोधन। *मु॰ब॰* = सभी। *ह॰यो॰* = लघु शंख-प्रक्षालन। *शि॰* = ध्यान, योगनिद्रा।

अशुद्धरक्त (वृक्क, उपवृक्क, अधिवृक्क ग्रंथि)

आ॰ = सूर्य नमस्कार (थकने तक), सुप्तवज्रासन, शशांकासन, मार्जार्यासन, त्रिकोणासन, मत्स्यासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, हलासन, उष्ट्रासन, मयूरासन। *प्रा॰* = भस्त्रिका। *मु॰ब॰* = उड्डियान-बन्ध, सभी मुद्रा विशेषतः नासिकाग्रदृष्टि। *ह॰यो॰* = अग्निसार-क्रिया, शंख–प्रक्षालन। *शि॰* = योगनिद्रा, मणिपुर चक्र का ध्यान। नमक एवं फल का त्याग करें। जल अधिक पीजिए।

रक्तचाप (अधिकतम तनाव, हृदय रोग)

उच्च रक्तचाप – आ॰ = पवनमुक्तासन (प्रथम दो समूह), आनन्दमदिरासन,

शिथिलीकरण के सभी अभ्यास। *प्रा.* = नाड़ी शोधन प्राणायाम, शीतली, शीतकारी, उज्जयी और भ्रामरी। *मु.ब.* = अश्विनी, शाम्भवी, नासिकाग्र। कोई बन्ध नहीं। *ह.यो.* = नेति। *शि.* = शवासन, योगनिद्रा, अजपाजप, ध्यानाभ्यास।

निम्न रक्तचाप — *आ.* = सूर्य नमस्कार आदि सभी योगासन। *प्रा.* = सभी, विशेषतः भस्त्रिका। *मु.ब.* = सभी। *ह.यो.* = कुंजल, लघु शंख–प्रक्षालन। *शि.* = ध्यान।

अनिद्रा एवं चिन्ता (अपस्मार, असामर्थ्य, उन्माद, घबराहट, मूर्छा)

आ. = सूर्य नमस्कार, सर्वांगासन, मत्स्यासन, शीर्षासन, सुप्तवज्रासन, कूर्मासन, शशांकासन, भुजंगासन, पश्चिमोत्तानासन, शलभासन, शवासन। *प्रा.* = नाड़ी शोधन, कपालभाति, भ्रामरी, शीतली, शीतकारी। *मु.ब.* = शाम्भवी, मांडूकी, योनि, सभी बन्ध (थोड़े क्षण)। *शि.* = त्राटक, योगनिद्रा, ध्यान।

गठिया रोग

आ. = पवनमुक्तासन (प्रथम दो समूह)। मांसाहार को त्यागें। पानी खूब पीएं।

चर्बी (मोटापा)

आ. = सूर्य नमस्कार (तीव्र गति से), द्रुत हलासन, पादहस्तासन, शीर्षासन।

जोड़ों में सूजन

आ. = पवनमुक्तासन। उदरश्वसन। शिथिलीकरण एवं ध्यान। आसन आरम्भ करने से पहले नमक मिलाए हुए गरम पानी में हाथ डालकर कुछ समय रखें।

खाज-खुजली (चर्म रोग)

आ. = पवनमुक्तासन, मकरासन, "अशुद्धरक्त" शीर्षक देखें।

कंधे (भुजा)

आ. = मकरासन, पवनमुक्तासन (प्रथम समूह), उष्ट्रासन, बद्धपद्मासन, सूर्य नमस्कार एवं पीछे झुकने वाले आसन, भुजंगासन, गोमुखासन, वृश्चिकासन। *प्राणायाम, मु.ब.* = सभी। *ह.यो.* = कुंजल, नेति। *शि.* = ध्यान।

ग्रीवा

आ. = सुप्तवज्रासन, मत्स्यासन, ग्रीवासन, कंधरासन, मेरुदंड को मोड़ने वाले सभी

आसन। *प्रा* = नाड़ी शोधन। मु.ब. = जालन्धर बंध। *शि.* = शवासन।

गंजापन

सिर के बल किए जाने वाले सभी आसन, विशेषतः शीर्षासन।

चेहरा (मुंहासे, झुर्रियां)

आ. = सूर्य नमस्कार, सर्वांगासन, हलासन, सिंहासन। उपवास अवश्य करें। *प्रा.* = सभी, विशेषतः भस्त्रिका। *मु.ब.* = योगमुद्रा, अश्विनी-मुद्रा, आकाशी, विपरीतकरणी, जालन्धर। *ह.यो.* = नेति, कुंजल। *शि.* = योगनिद्रा।

टॉंसिल (खरखराहट, जुकाम)

आ. = पवनमुक्तासन, सिंहासन, मत्स्यासन, सुप्तवज्रासन। *प्रा.* = उज्जयी, शीतली, शीतकारी। *ह.यो.* = नेति, कुंजल। *शि.* = त्राटक, शवासन।

दीर्घकालीन बदहजमी

"चिन्ता एवं अनिद्रा" और "उदर" शीर्षक देखें। अशुद्ध, भारी, अधिक एवं बासी भोजन और अनुचित विधि से पकाए भोजन को त्यागें। प्रतिदिन एक समय उपवास करें। नित्य कुंजल का अभ्यास करें।

पायरिया एवं मसूढ़ा

सिर के बल किए जाने वाले आसन। शीतली व शीतकारी प्राणायाम। प्रत्येक, दो या तीन घंटे में अंगुलियों से दांतों व मसूढ़ों की मालिश।

पैर

आ. = सूर्य नमस्कार, पवनमुक्तासन, उदराकर्षणासन, शलभासन, धनुरासन, अर्द्धचन्द्रासन, गरुड़ासन, वातायनासन, कूर्मासन, प्रणमासन इत्यादि। *प्रा.*, *मु.ब.* = सभी। *शि.* = योगनिद्रा।

जननांग (प्रोस्टेट ग्रंथि, गर्भ सम्बंधी रोग एवं लैंगिक समस्याएं)

आ. = सूर्य नमस्कार, शक्तिबन्ध समूह, शशांकासन, उष्ट्रासन, कटिचक्रासन, ताड़ासन, त्रिकोणासन, मत्स्यासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, गरुड़ासन, भुजंगासन। *शि.* = योगनिद्रा, अजपाजप, ध्यान। ब्रह्मचर्यासन श्रेष्ठ है।

पोलियो (लकवा आदि, विकलांगता)

आ॰ = भुजंगासन, पद्मासन, कन्धरासन, धनुरासन, त्रिकोणासन, शीर्षासन, अश्वसंचालनासन। प्रा॰ = नाड़ी शोधन। शि॰ = नासिकाग्र दृष्टि।

बहरापन (कान सम्बन्धी रोग)

सिर के बल किए जाने वाले आसन और नेति का अभ्यास करें।

बवासीर (गुदा सम्बन्धी रोग)

आ॰ =शशांकासन, सर्वांगासन (लम्बी अवधि तक), अश्विनी-मुद्रा। मूलबन्ध और योगनिद्रा।

मासिक धर्म (स्त्रियों की यौन समस्याएं)

आ॰ = सूर्य नमस्कार, शीर्षासन, भुजंगासन, पश्चिमोत्तानासन। उड्डियान एवं मूलबन्ध। अश्विनी एवं सहजोली मुद्रा। योगनिद्रा, अजपाजप और ध्यान।

साइटिका

आ॰ = पवनमुक्तासन, मत्स्यक्रीड़ासन, मकरासन, पीछे झुककर किए जाने वाले आसन। सामने झुककर किए जाने वाले आसन न करें।

स्लिपडिस्क

आ॰ = अद्वासन, ज्येष्टिकासन, मकरासन (लम्बी अवधि तक), भुजंगासन, मेरु को घुमाने वाले सभी आसन, नमस्कारासन, शवासन एवं योगनिद्रा अति आवश्यक है।

पञ्चम प्रकरण

उपसंहार

इस ग्रंथ का उद्‌देश्य लोगों को योग में प्रवृत्त होने के लिए एक प्रेरणा का स्रोत होना एवं उन्हें अपनी सांसारिक दयनीय परिस्थितियों से ऊपर उठाकर जीवभाव से निकलकर ब्रह्मभाव की ओर ले जाना है।

योग एक अच्छा स्वास्थ्य और शान्त मन ही नहीं बल्कि संसार से मुक्ति देने वाला मार्ग है। **ज्ञानादेव तु कैवल्यं** इस वेदोक्ति के अनुरुप आपके शरीर एवं मन को उस ज्ञानानुभूति के योग्य बनाना ही योग का लक्ष्य है। अतः योग सांसारिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के सुख का सर्वोत्कृष्ट साधन है।

लेकिन गुरु के बिना स्वयं पुस्तक पढ़कर योगाभ्यास शुरु नहीं करना चाहिए अन्यथा योग से रोग उत्पन्न हो सकते हैं; जिसका इलाज संसार में किसी भी विधि से नहीं किया जा सकेगा। अतः अवश्य योग के लिए गुरु अथवा योग शिक्षक को ग्रहण कर लेना चाहिए।

आरम्भ करने के लिए किसी योग्य योग-प्रशिक्षक को गुरु बना सकते हैं किन्तु उच्च कोटि का अभ्यास आरंभ करने के लिए एक सिद्ध योगी संन्यासी को ही गुरु बनाना होगा।

किसी योगाश्रम में कुछ समय रहकर आश्रम के सादगी भरे जीवन, सरल सुपाच्य भोजन पद्धति एवं कर्म, भक्ति और योग का समन्वयात्मक दिनचर्या का संस्कार ग्रहण कर लेना आध्यात्मिक लाभ के लिए एवं सांसारिक सुख-शांति के लिए आवश्यक है।

आशा करता हूं इस ग्रंथ से सब प्रकार के साधकों एवं पाठकों को उचित प्रेरणा एवं योग सम्बन्धी सामान्य ज्ञान प्राप्त होगा। त्रुटियों के लिए क्षमा चाहते हुए योगियों के कृपाकांक्षी, सबका शुभेच्छु —

आपका आत्मा

स्वामी शान्तिधर्मानन्द सरस्वती

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

अनुक्रमणिका

अजपाजप, १७६
अपानवायुमुद्रा, १४७
अद्वासन, ७५
अनाहत चक्र, २१८
अन्तःदर्शन, १८२
अन्तर्मौन, १८३
अन्य नेति, ३६
अलम्बुसा नाड़ी, २०६
अर्धचन्द्रासन, १०४
अर्धतितली, ५६
अर्धमत्स्येन्द्रासन, ६३
अर्धशलभासन, ११२
अष्टवक्रासन, १०८
अष्टांगनमस्कारासन, १०२
अश्वसंचालनासन, १०१
अश्विनी मुद्रा, १४६
आज्ञा-चक्र, २२०
आत्मनिवेदन (प्रार्थना विज्ञान), १७३
आँखों के लिये अभ्यास, ६८
आँखों पर हथेलियाँ रखना, ६८
आसन लक्षणम्, ४
आसन विज्ञान, ५१
इड़ा और पिंगला नाड़ी, २०४
उज्जयी प्राणायाम, १३७
उड्डियान बन्ध, १५८
उत्तानपृष्ठासन, १११
उन्मनी क्रिया, १६३
उदराकर्षणासन, ७४
उदर श्वसन, १३१
उपक्रम (अष्टांगयोग), १
उपसंहार, २३७
उरःश्वसन, १३२
उष्ट्रासन, ८३
ऊर्ध्वपद्मासन, १२५
एकपादासन, १०६
कटि चक्रासन, ६७
कन्धों को घुमाना, ६३
कपाल धौति, ३८
कपालभाति क्रिया, ४८
कपालभाति प्राणायाम, १३५
कपाल्यासन, १२५
कलाई मोड़ना, ६१
कलाई घुमाना, ६२
कर्ण धौति, ३८
कुक्कुटासन, ८७
कुंजल क्रिया, ४१
कुण्डलिनी विज्ञान, २२५
कुण्डलिनी विद्या, १६५
कुहू नाड़ी, २०६
कूर्मासन, ६५
कोहनियाँ मोड़ना, ६२
कौआ चाल, ६०

खड़े होकर किए जाने वाले आसन, ६७
खेचरी-मुद्रा, १५०
गठिया निरोधक पवनमुक्तासन, ५५
गर्भासन, ८८
गरुड़ासन, १०६
गर्दन झुकाना, ६३
गर्दन मोड़ना, ६४
गर्दन घुमाना, ६४
गान्धारी नाड़ी, २०५
गोमुखासन, ६०
गोरक्षासन, ६६
ग्रन्थि प्रणाली, १७
घुटने को उसकी धुरी पर घुमाना, ५८
घुटने को घुमाना, ५६
घुटने को मोड़ना, ५७
चक्की चलाना, ७१
चक्रासन, ११६
चक्र विज्ञान, २०६
चन्द्रभेदी प्राणायाम, १३७
चिदाकाश धारणा, १८२
चित्तशुद्धि प्रकरणम्, १६१
चिन्मुद्रा, १४८
जपयोग, १७५
जल-नेति, ३५
जल-बस्ति, ४७
जल-मुद्रा, १४६
जलीय धारणा, १८१
जानुशिरासन, ६२
जालन्धर बन्ध, १५६
जिह्वामूल धौति, ३७
टखने को उसकी धुरी पर घुमाना, ५७
टखने को वृत्ताकार घुमाना, ५६
तत्त्वविज्ञान प्रकरणम्, १६६
ताड़ासन, ६७
तिर्यक् ताड़ासन, ६८
तिर्यक् भुजंगासन, ११०
तोलांगुलासन, ८६
त्राटक (आग्नेय धारणा), ४६, १७६, १८२
त्रिकोणासन, ६६
दन्त धौति, ३७
दाएँ—बाएँ देखना, ६८
दिनचर्या दर्शन, १८८
दूध नेति, ३६
दृष्टि को ऊपर-नीचे करना, ७०
दृष्टि को पास-दूर करना, ७०
दृष्टि को वृत्ताकार घुमाना, ६६
दृष्टिवर्धक पवनमुक्तासन, ६८
धनुरासन, ११३
धारणा लक्षणम्, ६
धारणा विज्ञान, १८१
धौति, ३७
ध्यान लक्षणम्, ६
ध्यान विज्ञान, १८५
ध्यान के आसन, ७६
ध्यान के पूर्व आसन समूह, ७६
ध्वनि धारणा, १८२
नमस्कारासन, ७३
नवमुखी मुद्रा, १५४
नाड़ी शोधन प्राणायाम, १४२
नाड़ी विज्ञान, २०१
नादयोग, १६०
नासिकाग्र (दृष्टि) मुद्रा, १४८
नियमलक्षणम्, ३
निष्काम कर्मयोग, १६३
नेति, ३४
नेत्र धौति, ३७
नौकासन, ६७

नौकासंचालन, ७१
नौलि, ४५
पयस्विनी नाड़ी, २०७
पद्मासन, ७६
पर्वतासन, १०२
पश्चिमोत्तानासन, ६०
पाचन प्रणाली, २८
पादांगुष्ठासन, ६४
पादपवनमुक्तासन, ५५
पाद हस्तासन, १००
पार्थिव धारणा, १८१
प्रत्याहार लक्षणम्, ५
प्रत्याहार विज्ञान, १७३
प्राणमुद्रा, १५०
प्राणवायुमुद्रा, १४७
प्राणविद्या, १६३
प्राणायाम लक्षणम्, ५
प्राणायाम विज्ञान, १२७
प्राणायाम के पूर्व के अभ्यास, १३३
प्रारम्भिक अभ्यास, ५५
प्रार्थनासन, १००
प्लाविनी प्राणायाम, १३४
पीठ के बल किए जाने वाले आसन, ११५
पूर्ण तितली, ६०
पूर्ण भुजंगासन, ११०
पूर्ण मत्स्येन्द्रासन, ६४
पूर्ण शङ्खप्रक्षालन, ४१
पूर्ण शलभासन, ११३
पूर्ण श्वसन (यौगिक श्वसन), १३३
पृथ्वी मुद्रा, १४६
पृष्ठासन, १०५
पेट के बल किए जाने वाले आसन, १०६
पैर घुमाना, ६५
पैर मोड़ना, ६६
पैरों की अँगुलियाँ मोड़ना, ५५
पैरों के टखने मोड़ना, ५६
बकध्यानासन, १०७
बद्धपद्मासन, ८६
बन्ध विज्ञान, १५६
बस्ति, ४७
बिन्दुविसर्ग चक्र, २२२
बैठकर किए जाने वाले आसन, ८०
भद्रासन, ८२
भस्त्रिका प्राणायाम, १३६
भाव ध्यान, १६२
भावातीत ध्यान, १६२
भ्रामरी प्राणायाम, १३८
भुजंगासन, १०३,
१०६
मकरासन I, ७६
मकरासन II, ११५
मणिपुर चक्र, २१६
मत्स्यासन, ८७
मन्त्रयोग, १८६
मयूरासन, ११३
महामुद्रा, १५४
महाबन्ध, १५६
महाबेधमुद्रा, १५५
मुट्ठी कसकर बाँधना, ६१
मुद्रा विज्ञान, १४५
मूर्च्छा प्राणायाम, १४१
मूर्धासन, १२०
मूलबन्ध, १५७
मूल धौति, ४४
मूलाधार चक्र, २१३
मेरुदण्ड को (दाएँ-बाएँ) घुमाना, ५८

यम लक्षणम्, २
यशस्विनी नाड़ी, २०६
युक्ताहारः, १६७
योग निद्रा, १७१
योग मुद्रा, ८५
योग द्वारा रोगोपचार, २३१
योनि मुद्रा, १५३
रक्त संचार प्रणाली, २५
रस्सी खींचना, ७२
लकड़ी काटना, ७२
लघु शंखप्रक्षालन, ४३
वज्रासन, ८०
वज्रोलि मुद्रा, १५३
वमन धौति, ३६
वह्निसार धौति (अग्निसार क्रिया), ४४
वस्त्र धौति, ३८
वाक् संयम, १८३
वाङ् मौन, १८४
वातक्रम कपालभाति, ४६
वातनिरोधक पवनमुक्तासन, ६५
वातसार धौति, ४४
वातायनासन, १०८
वायवीय धारणा, १८२
वायुनिष्कासनासन, ७३
वायु मुद्रा, १४६
वारिसार धौति, ४१
वारुणी नाड़ी, २०७
विचार दर्शन, १८६
विपरीतकरणी मुद्रा, ११८
विशुद्धि चक्र, २१६
विश्वोदरी नाड़ी, २०७
विसर्जन प्रणाली, ३०
वीरासन, ८१
व्याघ्र क्रिया, ४१
व्युत्क्रम कपालभाति, ४८
वृश्चिकासन, १२६
शलभासन, ११२
शवासन, ७५
शक्तिबन्ध आसन समूह, ७०
शङ्ख प्रक्षालन, ४१
शङ्खिनी नाड़ी, २०६
शरीरशुद्धि प्रकरणम्, ६
शशांकासन, ८४
शाम्भवी मुद्रा, १४६
शारीरिक विज्ञान, ११
शिथिलीकरण के अभ्यास, ७५
शिरः पवनमुक्तासन, ६३
शीतकारी प्राणायाम, १४१
शीतक्रम कपालभाति, ४८
शीतली प्राणायाम, १४०
शीर्षासन, १२१
शून्य मुद्रा, १४७
शूरा नाड़ी, २०७
शोधन विज्ञान, ३३
श्वसन प्रणाली, २२
श्वास ध्यान, १८६
समाधि लक्षणम्, ७
सरस्वती नाड़ी, २०६
सर्पासन, ११०
सर्वाङ्गासन, ११७
सहज ध्यान, १६०
सहस्रार चक्र, २२३
सुषुम्ना नाड़ी, २०४
स्थल बस्ति, ४८
स्नायु प्रणाली, १२
स्वस्तिकासन, ७८
स्वाधिष्ठान चक्र, २१४
साईकिल चलाना, ६५

सामने और दाएँ-बाएँ देखना, ६६
सिद्धासन, ७७
स्फिंक्स की आकृति, ११०
सिर के बल किए जाने वाले आसन,
सिंहासन, ८१
सुखासन, ७६
सूत्र नेति, ३४
सूर्यनमस्कार,
सूर्यभेदी प्राणायाम, १३६
हलासन, ११६
हस्त उत्तानासन, १००
हस्त पवनमुक्तासन, ६१
हस्तिजिह्वा नाड़ी, २०६
हिलना-डुलना अकौर लुढ़कना, ६६
ह्रदय धौति, ३८
ज्ञान मुद्रा, १४८

'योग' एक गहन एवं व्यापक विषय है जिसमें 'पूर्णत्व' लाना अत्यन्त कठिन है। फिर भी स्वामीजी ने रोगी, आरम्भिक अभ्यासी व साधक के लिए योगसम्बंधी संपूर्ण जानकारी इस छोटे से ग्रन्थ में भरने का प्रयत्न किया है। ऋषियों, गुरुपरम्परा एवं स्वयं की अनुभूति के आधार पर ही नहीं, बल्कि उपनिषदादि ठोस शास्त्रीय प्रमाणों के साथ-साथ वैज्ञानिक शोध पर आधारित योग-रसायन का संकलन इस पुस्तक में नीहित है।

यद्यपि इसका लेखन अष्ठांग-योग को आधार मानकर किया गया है तथापि योग के सकल प्रभेदों को साधना की विभिन्न सीढ़ियों के रूप मे स्वीकार कर समावेश किया गया है। हठयोग, राजयोग, क्रियायोग, जपयोग, लययोग, कुण्डलिनी योग, नादयोग, स्वरयोग आदि भेदों का विभिन्न अंगों के अन्तर्गत संक्षेप मे विवेचन किया गया है। इसलिये इस ग्रन्थ का नाम 'पूर्णयोग' रखा गया है। योग सम्बन्धी समस्त विषयों को पन्द्रह अध्यायों में विभक्त कर विचार किया गया है, इसलिये इसको 'योग पञ्चदशी' नाम भी दिया गया है।

समाज के प्रत्येक व्यक्ति के दैनिक जीवन में अत्यन्त उपयोगी एवं सुखमय जीवन का मार्गदर्शक ग्रन्थ है यह **'पूर्णयोग'**।

पुणे में जन्मे **स्वामी शान्तिधर्मानन्द सरस्वती** बाल्यावस्था से ही विलक्षण प्रतिभा

संपन्न थे। इन्जीनियरिंग की शिक्षा पाकर तथा अल्प समय मे ही सरकारी प्रतिष्ठान मे सेवा कर सेवा से स्वयं निवृत्त होकर आपने वर्तमान वैज्ञानिक युग के योगी परमहंस स्वामी सत्यानंद सरस्वती, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर से योग शिक्षा एवं संन्यास दीक्षा ग्रहण की। ऋषिकेश, ओंकारेश्वर, बनारस आदि तीर्थ स्थलों में रहकर शास्त्रों का गुरुकुल पद्धति से अध्ययन करके वर्तमान में अपने ही आश्रम में आप स्वाध्याय करते हैं तथा शास्त्रों के निःशुल्क अध्यापन कार्य में रत्त हैं।

ISBN 818265009-7
9788182650091

ISBN 81-8265-009-7
2nd Edition, 2005, xii, 243 p.; 22 cm.
मूल्य रू. 125 मात्र

प्रकाशक –
श्रीकुंज सद्‌भावना मंच
'श्रीकुंज', एफ-52 बाली नगर
रमेश नगर मेट्रो स्टेशन
नई दिल्ली - 110 015

वितरक –
डी. के. प्रिंटवर्ल्ड (प्रा.) लि.
'श्रीकुंज', एफ-52 बाली नगर, रमेश नगर मेट्रो स्टेशन
नई दिल्ली - 110 015
दूरभाष : (011) 2545 3975, 2546 6019
फैक्स : (011) 2545 5926 ई-मेल : dkprintworld@vsnl.net